झीनी-झीनी बीनी चदरिया

झीनी-झीनी बीनी चदरिया

अब्दुल बिस्मिल्लाह

भाई काशीनाथ सिंह के लिए

ताना खण्ड

जाड़े की धूप इस छत से उस छत तक पीले कनात[1] की तरह फैली हुई है। इस छत पर असीमुन एक ओर बने हुए बावर्चीखाने में आग सुलगाने जा रही है और उस छत पर कमरुन कनात फेरने की तैयारी में व्यस्त है। अचानक दोनों छतें बोल उठती हैं, "का हो असीमुन अभइन तक आग नाँही बारेव का ?"

"नाँहीं हो देखो अब जाइला बारे। एतना-सा काम रहा करे के ऐही से एतनी अबेर हो गयी हो। तूँ का करे तू ?"

"हम जाइला कतान फेरे, बड़ी जल्दी की है।"

और तभी हम्मुन खट-खट सीढ़ियाँ चढ़कर इस छत पर पहुँचती है और असीमुन के पास बैठ जाती है।

"चलो हो हमरे साथ तइसा हुआँ जाये के है, हमरी खाला किये !" बैठते ही वह अपने आने का मकसद बताती है तो असीमुन जल उठती है। इ अल्ताफ़ की बीवी को और कोई काम तो है नहीं, कभी खाला किये तो कभी भउजी किये··· घूमने में ही इसका दिन बीतता है। वह इनकार कर देती है, "भक हो हम नाँही जइया, तूँ जातू काहे ने।"

"का हो तइसा हम कहो ता जाये खातिर तो सफा इनकार कर दीयेन।"

"देखो अइसा ने है कि हम्मे तनिकको मोका नहिने, नाँहीं तो हम जरूर जाते।"

और अल्ताफ़ की बीवी अपनी चादर उठाकर मुँह बनाती हुई चल देती है। असीमुन फुँकनी उठाकर चूल्हा फूँकने लगती है। और जब अच्छी तरह आग जल जाती है तो वह पतीली में बकरे का गोश्त चढ़ा देती है। भीतर कमरे में बैठा-बैठा इकबाल न जाने क्या-क्या बना-बिगाड़ रहा है और पूरे घर को गन्दा किये दे रहा है। उसकी खटर-पटर से जैसे ही असीमुन की निगाह उधर घूमती है, वह अपने

---

1. रेशम

जनारसी बेटे पर चीखने लगती है, "अरे माटी-मिले तैं का बानावेते रे ! हट ओज्जन से···ई हरमिया बड़ा कोपाये रहेते, कउनो दिना तोरी नटइये दवा देब हो हरामी···" और चीखते-चीखते अलीमुन को खाँसी आ जाती है । खाँसते-खाँसते खून !

अलीमुन को टी. बी. हो गयी है । मतीन को मालूम है । लेकिन वह कुछ नहीं कर सकता । घर का जो काम है, वह बीवी को करना ही होगा । फेराई-भराई, नरी-छोटा, हाँड़ी-चूनी···सभी कुछ करना होगा । बिन किये काम चलेगा नहीं । और रहना भी होगा पर्दे में । खुली हवा में घूमने का सवाल नहीं । समाज के नियम सत्य हैं, उन्हें तोड़ना गुनाह है । मतीन जानता है ।

छित्तनपुरा से लेकर मदनपुरा तक, कहीं भी इस नियम में अन्तर नहीं है । सब रसूले-पाक की उम्मत हैं । सब अंसारी हैं, जिन्होंने हुजूर को शरण दी थी । हजरत अय्यूब अंसारी के वंशज···मतीन को यही बताया गया है । सच क्या है, वह नहीं जानता । पर समाज का जो नियम है, उसे मानता है । जैसे सब मानते हैं ।

कहते हैं कि बनारस में बिनकारी का काम छित्तन बाबा ने शुरू किया था । वे इजारबन्द (पैजामा का नाड़ा) बुना करते थे । उन दिनों मफलर की तरह के इजारबन्द होते थे । एक बार उनका बिना हुआ इजारबन्द लखनऊ के किसी नवाब की नजर से गुजरा तो उन्होंने उस सेठ को तलब किया जिसके माध्यम से वह इजारबन्द उन्हें मिला था । सेठ डर गया कि कहीं कोई सजा न मिले और वह नहीं गया । उसने छित्तन बाबा की पिटाई की और उन्हें नवाब के पास भेज दिया । वे डरते-डरते वहाँ पहुँचे तो नवाब साहब ने उनकी बड़ी खातिर की और बनारस में पाँच मुहल्ले आबाद करने की इजाजत दी । तब छित्तन बाबा ने मऊ से कुछ लोगों को लाकर तथा बनारस के कुछ लोगों को मिलाकर पाँच मुहल्ले बसाये और इस प्रकार वे 'पाँचों' के सरदार बने ।

एक समाज दुनिया का है । एक समाज भारत का है । एक समाज हिन्दुओं का है । एक समाज मुसलमानों का है । और एक समाज बनारस के जुलाहों का है । यह समाज कई अर्थों में दुनिया के हर समाज से अलग है । इस समाज के कई खण्ड हैं । पाँचो हैं, चौदहो हैं, बाइसी और बावनो हैं । अब एक नयी बाइसी भी बन गयी है । हर खण्ड का अपना सरदार है, अपना महतो है । लेकिन पाँचो का सरदार सबसे बड़ा माना जाता है । चौदहो, बाइसी या बावनो का जब सरदार चुना जाता है तो उसके सिर पर पगड़ी पाँचो का सरदार ही रखता है । लेकिन पाँचो का सरदार प्रायः वंशगत होता है और वह खुद अपने सिर पर पगड़ी रखता है । यही स्थिति महतो की भी है । फिर यहाँ कुछ लोग बनरसिया हैं, कुछ लोग मऊवाले हैं । मऊवाले वे हैं जो आजमगढ़ जिले के मऊनाथ भंजन से आकर बस गये हैं । पढ़े-

लिखे लड़के उन्हें 'एम पुर' कहते हैं। जवाब में उधर के पढ़े-लिखे लड़के इन्हें 'बी पुर' कहते हैं। 'एम पुर' और 'बी पुर' में नोंक-झोंक चलती रहती है।

फिर अलईपुरिया अलग है और मदनपुरिया अलग। खण्ड में से खण्ड। जैसे रेशम की सतरंगी गिरी में से कई-कई धागे निकले आ रहे हों। हर धागा दूसरे धागे से थोड़ा अलग दिखता है, पर ऐसा है नहीं। चाहे बनरसिया हों या मऊवाले, अलईपुरिया हों या मदनपुरिया, हैं सब एक।

यह बिरादरी छित्तनपुरा से लेकर इधर पठानी टोला, अंमारावाद, औरार-सिस्वर, सुग्गा गड़ही, सोनवीजी का बाड़ा, नरफटिया की गड़ही, चन्द्रपुरा, आलम-पुरा, हसनपुरा, कुतुबन शहीद, बड़ेनिया टोला, सलेमपुरा, मेहनिया तले, कोयला बाजार और पीह्ट्टा तक तथा उधर दुल्ली गड़ही, मोहम्मद शहीद, नीम तले, ऊगोपुरा, बाकरगावाद, रसूलपुरा, जैतपुरा, कमालपुरा, सद्दनपुरा, छोहरा, कच्ची बाग, ओरीपुरा, फुलवरिया, तेलियाना, बड़ी बाजार, जलालीपुरा, बकरिया कुण्ड, दोसीपुरा और काजी सादुल्लापुरा तक फैली हुई है। गोदौलिया से आगे मदनपुरा शिवरकुण्डा और बजरडीहा की ओर भी इनका फैलाव है, पर उनकी रीति-नीति कुछ अलग है। बोली-भाषा भी थोड़ी भिन्न है। लेकिन हैं सब एक। मर्दों के पाँव करघे में और स्त्रियों के हाथ चरखे में।

अलीमुन का खून टी. बी. के रूप में बह रहा है। इकबाल खून देखकर घबरा जाता है। वह पास आकर अम्माँ को देखना चाहता है, पर अलीमुन उसे झिड़क देती है, "भागते कि बतावें हम तुवें!"

और इकबाल सहम जाता है। वह धीरे-धीरे वहाँ से चलकर अपने टूटे-फूटे खिलौनों के पास पहुँचता है और उन्हें एक पुराने-से झोले में भरकर खटिया के नीचे सरका देता है। फिर दबे पाँव बाहर निकलता है और आहिस्ता-आहिस्ता सीढ़ियाँ उतर जाता है।

मतीन सुबह से ही निकला है। कतान घट गयी है। हाजी साहब के यहाँ से लाना है। जब से होश सँभाला है, मतीन बानी पर ही बिन रहा है। उसके बाप भी बानी पर बिनते थे। इतनी हैसियत कभी नहीं हुई कि अपना कतान खरीद सकें, जबकि कमरून का आदमी सतीक अपना कतान खरीदकर लाता है और बिनता है। फिर अपनी साड़ी गोलघर में जाकर अच्छे दामों में बेच देता है। यहाँ तो ये हाल है कि हाजी अमीरुल्ला साहब दें तो खाओ वरना भूखे रहो। करघा अपना, जाँगर अपनी, सिर्फ कतान हाजी साहब का, लेकिन हाजी साहब की कोठियाँ तन गयीं और मतीन उसी ईंट की कच्ची दीवारोंवाले दरबे में गुजर कर रहा है। पेट को ही नहीं भेंटता, क्या करें? कितनी भी सफ़ाई से बिनो, सत्तर रुपया से ज्यादा मजदूरी नहीं

मिलने की। हफ्ते-भर में सिर्फ नब्बे रुपया ! उसमें से भी कभी पाँच रुपया 'दाग' का तो कभी तीन रुपया 'मत्ती' का और कभी 'रफू' का तो कभी 'तीरी' का कट जाता है। महँगाई की हालत यह है कि दिन-दूनी रात-चौगुनी बढ़ती ही जा रही है। वाह रे अल्ला मियाँ वाह, खूब इन्साफ है तेरा भी !

मतीन सूरज की ओर ताककर छींकता है और फिर अपने खयालों में गुम हो जाता है।

अब्बा उसके बचपन में ही मर गये थे। अम्माँ को टी. बी. थी। उसका इलाज भी करना था और जिन्दा भी रहना था। अतः अंसारी स्कूल को गोली मार दी। नवाब मास्टर साहब थे वहाँ प्राइमरी सेक्शन में ! बिरादरी के थे। उन्होंने बहुत समझाया कि पढ़ लो बेटा, पर कैसे पढ़ता ? जिन्दगी की गाड़ी अंसारी स्कूल के बल पर नहीं चल सकती थी। वह लतीफ के अब्बा के पास बिनकारी सीखने जाने लगा। लतीफ भी बिनता था, लेकिन लतीफ़ उनका लड़का था और वह 'जोड़िया'। वह काम सीख रहा था और बदले में पेट भरने-भर को कमा भी रहा था। पचास रुपया महीना। जब कभी माँ की बीमारी की वजह से वह न पहुँच पाता काम पर, उसका पैसा काट लिया जाता था। देर से पहुँचने पर 'सकाड़'[1] से पिटाई होती थी और अगर कभी कोई गलती हो जाती तो जिस हाथ से गलती होती उसी हाथ पर 'ढरकी'[2] से मारा जाता। गाली ऊपर से, 'साले ! भोसड़ियावाले···'

मतीन को याद है कि लतीफ का बाप बहुत क्रोधी था। और काइयाँ भी। जैसे ही वह पहुँचता, उसकी डपटती हुई आवाज सुनायी पड़ती, 'चल बे चल, काम में चल।' और जैसे ही 'फल्ली'[3] तैयार होती, खड़ा हो जाता। बोलता, 'चल बे, फल्ली छोड़ दे अउर ताग भराव, अउर 'फू'[4] दे। हम आइते।' और चला जाता सड़क पर पान खाने।

वह खटता रहता।

अपने विचारों में खोया हुआ मतीन कब पहुँच गया हाजी साहब के यहाँ, उसे मालूम

---

1. बाँस की छड़ी। इसका इस्तेमाल बिनकारी में भी होता है।
2. ढरकी बिनकारी का मूल यन्त्र है। यह दो तरह की होती है : तीरीदार और माकोदार। तीरीदार में से कलाबत्तू पास होता है और माकोदार में से धागा।
3. थोड़ा-सा बिना हुआ भाग।
4. मुँह में पानी भरकर बिने हुए वस्त्र पर फुहारा मारने की क्रिया 'फू' कहलाती है।

नही। वह चौंका, जब उसे देखते ही हाजी साहब ऊपर चले गये और अपने लड़के को जोर-जोर से जगाने लगे, "कबे कमरवा, अभइन नाँही उट्ठे ? अभइन तक काहे सुते है ? उठ जल्दी।"

मतीन सुनता है। उसे लगता है कि कमरुद्दीन शायद देरी कर रहा है। हाजी साहब की आवाज फिर गूँजने लगती है, "कबे अभइन तक का करेते बे ? अभइन तक काम-धन्दा में हाथ काहे नाँही लगा ? देख कारीगर कब्बे से आके तोरी आस मे बइठा है। ओकी कतान घट गयी है। ओके पास एद्दम कतान नइने कि ऊ रेजा[1] पुजावे। कतनिया केतनी ओंके दिये रहे कि घट गयी। चल ओके काम-भर कतान दे दे, अउर तइसा तार[2] भी ओके दे देवे।"

और मतीन देखता है कि कमरुद्दीन सीढ़ियाँ उतरकर आँगन में आ गया है। वह एक किनारे खिसक जाता है। कमरुद्दीन गद्दी पर जम जाता है।

"का म्याँ कब आएव ?"

"हम्में तो आये देरी भो वा, कब्बे से तोरी आस मे बइठे हैं।"

"अरे तो सुबहूँ तो एतना सबेरवे आके बइठ गएव। जनतो नाँही कि आजकल केतना जल्दी आठ बज जाते ?" फिर वह रेशम तौलकर मतीन को देता है और साथ ही हिदायत भी—

"अच्छा लो, कतान ले जाओ। देखो रेजा मजे का बिनियो। अच्छा उतरे। तनिक्को कोई बात का उन्नईस न रहे।"

"नाईं नाईं, उन्नईस काहें के होइए। अल्ला चहये तो रेजा बहुत बढ़ियाँ उतरिये।" मतीन अपना रटा हुआ वाक्य बोलता है और कतान लेकर बाहर आ जाता है।

घर आकर अलीमुन को वह लस्त-पस्त हालत मे देखता है तो दहल जाता है। उसे अपनी अम्माँ की याद आ जाती है कि किस तरह वह भी खून की उल्टियाँ करती हुई चल बसी थी और वह घबरा उठता है।

मतीन दौड़कर डाक्टर अंसारी के यहाँ पहुँचता है और दवाई ले आता है।

बिरादरी में अब डाक्टर-वकील सब हो गये हैं। कालेज अलग, अस्पताल अलग। बैंक अलग, अखबार अलग। पुराने जमाने में कोई कबीर नाम का कवि हुआ था इस बिरादरी में तो इस जमाने में नज़ीर बनारसी नाम के शायर भी हैं, जो अब हज भी कर आये हैं। बुनकर मार्केट अलग है और बुनकर

---

1. निर्माणाधीन साड़ी।
2. सुनहरा धागा, जिसे कलाबत्तू भी कहते हैं

कालोनी अलग। बुनकरों के लिए एक स्पेशल सिनेमा हाल भी है, यमुना टाकीज़। बी. ए., एम. ए. तो न जाने कितने हो गये बिरादरी में।

लेकिन मतीन अभी तक बानी पर ही बिन रहा है।

मतीन चाहता है कि वह भी एक छोटा-मोटा गिरस्ता बन जाय। कम-से-कम इतनी हैसियत तो हो ही जाय कि अपना रेशम-धागा ख़रीदकर केवल अपनी मेहनत के बल पर कमाये-खाये। तब बड़े गिरस्तों[1] का मुँह तो नहीं जोहना पड़ेगा।

मतीन ख़ास पढ़ा-लिखा नहीं है तो क्या हुआ, समझदार है। युवा है। तरक्की करने का जज़्बा है उसमें। इसीलिए वह निडर है। एक दिन वह शहर उत्तरी के एम. एल. ए. अल्ताफुर्रहमान अंसारी साहब के यहाँ गया था। वहाँ उसे मालूम हुआ कि सरकार ने तो बुनकरों के लिए काफ़ी सहूलियतें दे रखी हैं। उनके लिए शेयर कैपिटल, आर. बी. आई. है। लोन लेकर वे अपना काम ज़्यादा बढ़िया ढंग से कर सकते हैं। कई लोग मिलकर एक कोआपरेटिव सोसाइटी बना सकते हैं जिसके ज़रिए लोन भी ले सकते हैं और अपना माल सरकार को तथा बाहर के मुल्कों को अच्छे दामों में बेच सकते हैं। तब से वह इसी फिराक में है कि किसी दिन रथयात्रा[2] जाकर बैंक में पता लगावे कि किस तरह उसे लोन का रुपया मिल सकता है? मगर फुर्सत ही नहीं मिलती।

मतीन अपनी बीवी के पास बैठा है और सोच रहा है। इकबाल कहीं खेलने चला गया है।

अचानक अलीमुन को फिर खाँसी आती है और ख़ून का एक छोटा-सा थक्का फर्श पर गिर पड़ता है। मतीन उसे कपड़े से पोंछकर नीचे गली में गिरा देता है। 'वाह रे अल्ला मियाँ'···वह बुदबुदाता है और सिर थामकर बैठ जाता है।

2

गरइया के आगे, बरना पुल के उस पार ताड़ के बागों में शाम कुछ जल्दी ही पहुँच जाती है। और उन बागों में जो बुनकर जल्दी पहुँचता है उसे सबसे अच्छी ताड़ी

1. बड़े सेठों को 'गिरस्ता' या 'कोठीवाल' कहा जाता है। 'गिरस्ता' लोग बुनकर ही होते हैं, पर 'कोठीवाल' प्रायः हिन्दू सेठ होते हैं।
2. बनारस का एक मुहल्ला।

मिलती है। हालांकि बढ़िया ताड़ी तो सुबह ही मिल सकती है—एकदम फ्रेश नीरा, पर वह जवानों के लिए होती है; जिनके लिए गुनाह करना कोई गुनाह नहीं है। लेकिन जो लोग गुनाह को गुनाह की तरह नहीं करना चाहते वे शाम के झुट-पुटे में इन बगीचों की ओर आते हैं। लुंगी पहने, एक हाथ से उसका टोंका उठाये, टोपी लगाये, अल्ला-रसूल की बातों में मशगूल, पाकिस्तान की तारीफ़ करते हुए और हिन्दुस्तान को गालियाँ बकते हुए ऐसे लोग शाम होते ही सारसों की तरह इस क्षेत्र में मँडराने लगते हैं।

लतीफ ने थोड़ी ज्यादा ही पी है आज, पर नशा का कहीं पता नहीं है। 'बुरचोदी के पानी बहुत जादा मिलाइसे बे।' वह बुदबुदाता है और आरा मशीन की बगल से निकलकर अंसाराबादवाली मस्जिद के सामने पहुँच जाता है। मस्जिद अभी निर्माणाधीन है। वहाँ चन्दा उतर रहा है और लाउडस्पीकर पर एलान हो रहा है:

'हाजी मतिउल्ला गिरस ग्यारा सौ रुपिया !'

'हाजी वलिउल्ला पान सौ एक रुपिया !'

'हाजी अमीरुल्ला यक्कइस सौ रुपिया !'

"हाजी अमीरुल्ला केतना दियेन म्याँ ?" लाउडस्पीकर से छनकर यह सवाल बाहर आता है।

"यक्कइस सौ, तोरा केतना लिखयँ हाजी साहब ?"

"हमरा पाँच हजार रुपये। लिखौ।"

लतीफ उदास हो जाता है। उदास इसलिए हो जाता है कि वह अपना चन्दा और आगे बढ़कर नहीं लिखवा सकता। यहाँ तो होड़ है। इस होड़ में वह नहीं शामिल हो सकता।

कमरुन कल शाम को जाकर अपना छागल दे आयी थी। बता रही थी कि रात में बहुत सारी औरतों ने ताँबे-पीतल के बर्तन से लेकर अपने सोने के जेवर भी दे दिये हैं। मस्जिद के लिए। आखिर अल्ला ताला का घर बन रहा है, क्यों न कोई सवाब ले ?

पर उसके पास क्या है कि वह बढ़-चढ़कर चन्दा लिखवाये और उस जहान में जन्नत और इस जहान में नाम कमाये ?

नहीं ! वह चाहे तो कमा सकता है जन्नत। आज रात अगर रेजा उतर जाता है तो साड़ी कल बिक ही जायेगी। वह मतीन की तरह बानी पर थोड़े बिनता है कि गिरस्ता का मुँह जोहेगा। अपना कतान है, अपना करघा है। मेहनत भी अपनी है।

और वह जल्दी-जल्दी घर की ओर बढ़ने लगता है। आज रेजा पूरा ही करना

है, चाहे जैसे हो; ताकि कल वह भी मस्जिद में कुछ दे सके। कल आखिरी दिन है। कल असिरवाद से चन्दा-वसूली बन्द हो जायेगी।

लतीफ घर पहुँचकर सीधे करघे पर बैठ जाता है और शुरू हो जाता है—खटा-खुट ! खटा-खुट !

लतीफ रात-भर बिनता रहता है। भोर होते-होते रेजा पूरा हो जाता है।

बस, चार सौ का काम हो गया। रेजा अब की बढ़िया उतरा है। चार सौ में बिक जायगी साड़ी। तीन सौ के करीब निकल जायेंगे कतान-वतान के। सौ बचेंगे। काम चल जायेगा। इक्यावन दे देंगे मस्जिद में, बाकी से घर का खर्च चलायेंगे।

लतीफ मन-ही-मन हिसाब लगाता है और चाय के साथ बासी रोटी खाकर, साड़ी की पेटी बगल में दबाकर, बीड़ी सुलगाते हुए गोलघर की तरफ निकल जाता है।

गोलघर में बड़ी रौनक है। अन्दर दिन में भी रात जैसा समा है। दूकानों में बिजली के कई-कई लट्टू जल रहे हैं और दूकानदार अपनी-अपनी गद्दी पर बैठे गाहकों को ताड़ रहे हैं। गद्दियों पर तरह-तरह की जरीदार साड़ियाँ बिखरी हुई हैं और लग रहा है जैसे पूरा-का-पूरा बाजार किसी अनन्त विवाह के लग्न के लिए सुहाग-वेश सजाये बैठा हुआ है।

अलईपुर इलाके के अनेकानेक बुनकर लुंगी पहने, टोपी लगाये, 'रीको' और 'सीको' घड़ियाँ बाँधे, बगल में साड़ी की पेटी दबाये पूरे गोलघर में घूम रहे हैं। वहीं, सामान्य वेश में भी असामान्य-से नजर आनेवाले भाँति-भाँति के दलाल भी घूम रहे हैं, जो एक ओर तो बुनकरों पर अपना ध्यान लगाये हुए हैं और दूसरी ओर बनारसी साड़ी के खरीददारों पर अपनी बगुला नजर जमाये हुए हैं।

लतीफ एक दूकान के सामने खड़ा हो जाता है। वह चाहता है कि अपने माल का सौदा करे, लेकिन वहाँ कोई बड़ा खरीददार पहुँचा हुआ है। साथ में रामभजन दलाल भी है। लतीफ दलाली की भाषा समझता है, इसलिए रुचि लेकर सुन रहा है। दलाल दूकानदार से पूछता है, "कहिए, मंगलदासजी हैं या नहीं ?"

लतीफ समझ जाता है कि यह रुपया पीछे दो आने दलाली पर माल दिखाने के लिए कह रहा है!

दूकानदार कहता है, "बैठो भइ, मंगलदास तो नहीं हैं, लेकिन हमारा-तुम्हारा व्यवहार तो चलता है।"

अर्थात् दूकानदार छः पैसे रुपये की दलाली पर माल बेचना चाहता है।

दलाल निराश हो जाता है, लेकिन हिम्मत नहीं हारता। कहता है, "आप

कांगड़ा। ठीक दलचिए तो गिलौड़ी हो। बाड़ा पलना अभी। गाउली फिर। सलाय जोलाय चहिए।"

अर्थात ग्राहक धनी है। ठीक से बेचिए तो बात हो। भुगतान अभी हो जायेगा। दलाली फिर दे दीजियेगा। दस-बारह साड़ियाँ चाहिए !

दूकानदार कहता है, "दूसरा होता तो खरे में बात होती, पर आपसे व्यवहार चलता है, इसीलिए।"

अर्थात, दूसरा होता तो एक आना प्रति रुपया ही देता, आप को छः पैसे दे रहे हैं।

खैर···दलाल मान जाता है और माल दिखाने के लिए कहता है। दूकानदार नौकर को आदेश देता है, "दमोड़ा लल् मे उक्तो।"

अर्थात दाम गुप्त भाषा में बोलो।

और व्यापार शुरू हो जाता है। लतीफ बगल मे अपनी पेटी दबाये खड़ा रहता है।

अचानक वह अपने कन्धे पर दबाव महसूस करता है और घूमकर देखता है तो हाजी अमीरुल्ला साहब के लड़के कमरुद्दीन को देखकर सहम जाता है। कमरुद्दीन से वह हमेशा सहमता है। हाजी अमीरुल्ला अगर दाढ़ीवाला बड़ा जोंक लगता है तो कमरुद्दीन बिना दाढ़ीवाला छोटा जोंक मालूम पड़ता है। वह घबराने लगता है।

"बेचिहो ?" कमरुद्दीन पूछता है तो लतीफ थर्रा उठता है। लगता है आज यह फिर उसकी साड़ी ले लेगा। इस गोलघर मे तो छोटे-मोटे कारीगरों की कोई गिनती ही नहीं है। सेठ-महाजन ध्यान ही नही देते। जहाँ लाट-का-लाट माल आ रहा हो वहाँ एक-दो साड़ियों की क्या बिसात ? और अगर मेहरबानी करके ले भी लें तो पैसा देंगे हफ्ता-भर बाद। तब तक तो कतानवाले गोश्त नोंच डालेंगे। अतः नकद पैसे के लोभ मे लतीफ-जैसे टुटपुंजिए कारीगर कमरुद्दीन-जैसे जोंकों के हाथ कम पैसे में ही अपना माल बेच देते हैं।

लतीफ साढ़े तीन सौ में अपनी साड़ी कमरुद्दीन के हाथ बेच देता है।

तीन सौ निकल जाते हैं कर्ज के। बाकी बचते हैं पचास। इसी मे चाहिए कम-से-कम दस दिनों के लिए आटा, चावल, गोश (भैंस का) और दूसरी चीजें। उनमे से एक चीज मस्जिद भी है। अल्ला मियाँ का घर।

उसका क्या होगा ?

लतीफ मस्जिद के सामने पहुँचता है और लिखवाता है : अब्दुल लतीफ ग्यारा रुपिया। लिखनेवाले सज्जन उसे घूरकर देखते हैं और लाउडस्पीकर पर बगैर एलान किये ही उसके हाथ से दस का नोट और एक का सिक्का लेकर सामने रखे बॉक्स में डाल लेते हैं !

वह अंसाराबाद की सड़क पर आता है तो लगता है, रास्ता यकबयक काफी लम्बा हो गया है।

3

हाजी अमीरुल्ला साहब अलईपुर के अनेक बड़े गिरस्तों में से एक हैं। कच्ची बाग में उनकी भव्य कोठी है। तिमंजिली। नीचेवाली मंजिल में पचीस करघे गड़े हैं। इमारत में घुसते ही एक पक्का आंगन है, जिसके तीन ओर बड़े-बड़े कमरे हैं। सामने की ओर सिर्फ गलियारा है—प्रवेश के लिए। और एक ओर फ्लश-सिस्टम पाखाना, जिसमें वही पुराने जमाने का अलमुनियमवाला एक बँधना नल के नीचे रखा है और दूसरी ओर ऊपर जाने के लिए सीढ़ियाँ हैं। सामने और दाहिनेवाले कमरे में करघे गड़े हैं, जिन पर ऐसे मजूर बुनकर बन्दरों की तरह झुके हुए साड़ियां बुनने में सदैव व्यस्त रहते हैं, जो न तो अपने करघा-कतान का जुगाड़ कर सकते और न ही बानी पर चिन सकने की हिम्मत जुटा सकते। बायीं ओर गद्दी है, जिस पर बैठने के लिए आंगन में ही अपने जूते उतार देने होते हैं। गद्दी पर एक बड़ी-सी पेटी रखी है और पास में ही फोन का चोंगा रखा हुआ है।

मतीन जिस वक्त अपनी साड़ी लेकर गद्दी पर पहुँचा, हाजी साहब फोन पर बातें कर रहे थे, "हलो! हां! हम बोलीले, अमीरुल्ला। हलो! का भोवा ओहिन? सही? हलो! म्यां तूं का कहे तो···"

मतीन बैठ जाता है। हाजी साहब इतमीनान से फोन करते रहते हैं और चोंगा जब रख दिया जाता है तो वह गिरस्त के सामने साड़ी सरका देता है।

हाजी साहब साड़ी खोलकर खूब बारीक निगाह से चेक करते हैं और शुरू हो जाते हैं, "का म्यां, देखो कइसी साड़ी बीने हो? केतना-सा ऐब है। एकदम चउपट करके रख दीये हो। पूरी सड़िया चउपट है। कइसे ई बिकिए?"

"का ऐब है गिरस्त?" मतीन सहमते-सहमते पूछता है तो हाजी साहब और बिफर पड़ते हैं—

"अगइन पूछे तो कि का ऐब है? साड़ी पुजेतो तो चेक नाहीं करतो? उल्टे हमईं से पूछे तो कि का ऐब है? देखो, एज्जन ताग मइला है, एज्जन दाग है। हेदे मत्तो है। दस रुपिया कम होइए!"

हाजी साहब बोलते हैं तो मतीन का दिल बैठ जाता है। न जाने क्या बात है कि हाजी साहब को हर साड़ी में कोई-न-कोई ऐब जरूर दिखायी पड़ जाता है।

कभी कहेंगे ढाँटी कड़ी लगी है तो कभी कहेंगे ढक लगी है। हजार तरह के ऐब। छोर है, ओखा बिनान है, खेवा कड़ा लगा है, तार का जोड़ है, नाका पड़ा है, हुनर कटा-कटा पड़ा है, तीरी पड़ी है, छापा बड़ा है, रंग ठिकहा है, गण्डा पड़ा है, बाढ़ खराब है, कतान महीन है···एतना कम होइए !

बस काम खतम। गरज हो तो काम करो वरना रास्ता नापो। इसीलिए तो अल्ताफ जैसे कारीगर बेईमान हो जाते हैं। उस दिन मिल गया था पीलीकोठी पर अल्ताफ; कितनी बुराई कर रहा था अपने गिरस की। हाजी रसीद का ढेरों कर्जा चढ़ा हुआ है अल्ताफ पर, लेकिन वह है कि अपने मन का राजा। जब जी चाहेगा, बिनेगा; नहीं तो बैठा रहेगा। हाजी साहब क्या कर लेंगे ?

मतीन भी ऐसा कर सकता है, पर उसका ज़मीर उसे इजाज़त नहीं देता इसके लिए।

लेकिन इस तरह की कटौती तो हद है बेइन्साफ़ी की। आखिर कब तक होता रहेगा यह सब ?

मतीन सोचता है और देर तक वहीं बैठा रहता है, गुमसुम। फिर उठता है और अगले रेजे के लिए कतान लेकर चल देता है।

अलीमुन की तबीयत सुधर नहीं रही है। मतीन कतान रखकर फिर डाक्टर अंसारी के यहाँ जाता है। डाक्टर अंसारी उसे डपट देते हैं। खाली दवा-गोली से आराम होगा ? कोई मामूली मर्ज है क्या ? गिजा-विजा खिलाते नहीं, फरियाद करते हैं कि अच्छी दवा लिखिए। अरे दवा के साथ-साथ उसे मलाई-वलाई खिलाओ। अण्डा-मुर्गा खिलाओ।

मतीन सुनता है और चुप रहता है। बहस करने से फायदा ?

मतीन को रात में नींद नहीं आती, सिर्फ विचार आते हैं—तरह-तरह के विचार, जो उसे सोने नहीं देते।

बीवी को टी. बी. है। उसे गिजा चाहिए। गिरस जो हैं, उन्हें साड़ी में ऐब-ही-ऐब दीखता है। सरकार जो है, वह चीजों के दाम बढ़ाये ही जा रही है। यह गाड़ी जो है जिन्दगी की, कैसे चलेगी ?

विचार-ही-विचार हैं, बादलों की तरह उमड़-घुमड़ रहे हैं उसके दिमाग में। सवाल-ही-सवाल हैं, आँधियों की तरह उफन रहे हैं उसके दिमाग में।

कि अचानक उसे एम. एल. ए. साहब की बात याद आती है—सरकार ने बुनकरों के लिए काफी सहूलियतें दे रखी हैं अब तो। शेयर कैपिटल है, आर. बी. आई. है, कहीं से भी वह लोन ले सकता है। लोन लेकर अपना निजी धन्धा शुरू कर सकता है।

और भोर तक मतीन को नींद आ जाती है।

सुबह वह देर से उठता है। अलीमुन पहले ही उठ गयी है। आज उसकी तबीयत कुछ चनमन है। उठते ही कतान फेरने बैठ गयी है। आज से नया रेजा शुरू होगा।

लेकिन मतीन उसे मना कर देता है। आज वह काम शुरू नहीं करेगा। आज वह रथयात्रा जाकर बैंक में पता करेगा कि कैसे उसे लोन का रुपया मिल सकता है? और फिर अपना धन्धा वह अपने से करेगा। किसी हाजी-वाजी की गुलामी अब वह नहीं करेगा।

अलीमुन कतान छोड़कर हाँड़ी-चूली में व्यस्त हो जाती है। मतीन के लिए नाश्ता तैयार करना है। बैंक दस बजे खुलेगा। नौ बजे तक सब तैयार हो जाना चाहिए। रथयात्रा दूर भी तो है बहुत।

वह इकबाल को कटोरी देकर मुहल्ले की दूकान में भेजती है, आठ आने का घी लेने के लिए। घी नहीं, डालडा। बढ़ियवका घी तो बयालिस रुपया किलो है। 'अउर एकठे अण्डा ले लेबे।' वह इकबाल को पैसे सहेजकर अंगीठी में कोयलेवाले बुरादे की गोलियाँ भरने लगती है।

मतीन नाश्ता करके बैंक के लिए चल देता है।

छित्तनपुरा से मैदागिन तक मतीन पैदल जाता है। वहाँ से गोदौलिया के लिए रिक्शा कर लेगा। फिर रथयात्रा तक पैदल। लेकिन रिक्शा उसे मिलता ही नहीं। मैदागिन पर कई रिक्शेवाले खड़े मिले, पर जिससे भी उसने पूछा, 'खाली है?' उसी ने कह दिया, 'नहीं।' एक रिक्शेवाले ने 'हाँ' कहा भी तो बोला, 'लहुराबीर चलेंगे।' बनारस के रिक्शेवाले एहम्मे हरामी हो गये हैं। अभी कालेज की लड़कियाँ मिल जायं तो लंका[1] तक चले जायेंगे भोसड़ियावाले!

मतीन रिक्शेवालों को कोसता हुआ और पैदल चलता हुआ रथयात्रावाले बैंक में पहुँचा ग्यारह बजे।

"कहो?"

मैनेजर ने सवाल किया तो मतीन ने बताया कि मैं बैंक से लोन लेना चाहता हूँ, ताकि अपना धन्धा अलग कर सकूँ।

मैनेजर ने थोड़ी देर तक उसे घूरकर देखा, फिर बोला—

"शेयर कैपिटल कैसे बनता है, जानते हो? कम-से-कम तीस मेम्बरों की सोसाइटी बनाओ पहले। हर मेम्बर को इसके लिए फीस जमा करनी होगी। फी मेम्बर एक सौ दो रुपये। फिर अपने में से एक चेयरमैन चुनो। उसी को रुपया

1. बनारस का एक मुहल्ला, जो बी. एच. यू. के पास पड़ता है।

दिया जायेगा। सोसाइटी बन जाने के बाद उसे ए. डी. आई. अप्रूव करेंगे, तब वह कागज कानपुर भेजा जायेगा। समझ में आया?"

मतीन चुप रहा।

"तुम्हारा क्या नाम है?"

मैनेजर ने उसका नाम पूछा तो अपना नाम उसने बता दिया और चुपचाप बाहर निकल आया।

रथयात्रा चउमुहानी पर आकर उसने देखा कि गन्ने का रस बिक रहा है तो मुंह में पानी भर आया। कितने दिन हो गये रस पिये। और लोग तो जब भी बाहर निकलते हैं कुछ-न-कुछ खा लिया करते हैं। उसी अल्ताफ को देखो, रोज जाता है दालमण्डी कीमे की पकौड़ी खाने, लेकिन वह शायद ही कभी बाहर कुछ खाता हो। पर कभी-कभी मन नहीं मानता। फिर आज तो उसकी जेब में पैसे भी हैं। वह जब भी बाहर निकलता है, अलीमुन कुछ-न-कुछ पैसे उसकी जेब में डाल देती है।

उसने अठन्नी निकाली और एक गिलास रस पिया—नीबू-नमक डलवाकर। फिर डकार लेता हुआ चल पड़ा।

तीस बुनकर इकट्ठे करने होंगे—सोचता हुआ। लतीफ एक, अल्ताफ दो, बशीर तीन, रऊफ चाचा चार···

अगर तीस बुनकर इकट्ठे हो गये तो हाजी अमीरुल्ला को वह बता देगा कि धन्धा ऐसे होता है।

4

सुबरात का दिन है। घर-घर में हलवे बन रहे हैं। मुहल्ले की लड़कियाँ साटन की सलवार और ल्यूरेक्स की पेरानी (कमीज) पहनकर बालों में अपनी-अपनी भाभियों से अफशाँ के बेलबूटे बनवाकर इधर-उधर चहक रही हैं। लड़के पटाखे छोड़ रहे हैं। आनन्द का एक समुद्र है, जो छित्तनपुरा से लेकर मदनपुरा तक में उमड़ा हुआ है।

लेकिन मतीन अपने तीस आदमियों की तलाश में घूम रहा है। जब तक वह तीस आदमी इकट्ठे नहीं कर लेगा, उसे चैन नहीं। अगर कुल मिलकर साठ हजार भी मिल गये लोन के तो दो-दो हजार हिस्सा आयेगा। इतना बहुत है। जिसके पास करघा नहीं है वह करघा गाड़ लेगा, जिसके पास करघा है वह कतान खरीद लेगा और जिसके पास करघा भी और कतान भी है वह अपने कारोबार को और

बढ़ा देगा। लोगों का माल भी बाहर के बाजारों में बिकने लगेगा। सबके दिन फिर जायेंगे। बस जरूरत है तीन आदमियों की, जो एक सौ दो रुपये खर्च करके सोसाइटी के मेम्बर बन सकें। फिर सबकी जो राय होगी उसी के हिसाब से किसी एक बुजुर्ग को चेयरमैन बना दिया जायेगा।

वह पूरा दिन घूमता रहा। रात हो गयी। लेकिन उसे पाँच आदमी भी ऐसे नहीं मिले जो सोसाइटी के मेम्बर बनने को तैयार हों। सवाल सिर्फ इतना है कि फीस के रुपये कहाँ से आयेंगे?

मतीन उदास हो गया।

अलीमुन ने उसके आगे गेहूँ का बना हुआ हलवा रखा तो वह भीतर-ही-भीतर घुल गया। गेहूँ को भिगोकर, फिर उसकी गिरी निकालकर पता नहीं कैसे-कैसे तो वह औरत हलवा बनाती है हर साल सुबरात के रोज, जिसे मतीन बड़े चाव के साथ खाया करता है। पर आज उसका जी ठीक नहीं है। एक निवाला खाकर इकबाल को थमा देता है और लेट जाता है।

अलीमुन उसके सिर में तेल डालकर दबाना चाहती है तो उसे भी हटा देता है। उसे दरअस्ल चैन नहीं है। सोसाइटी बननी चाहिए, जैसे भी हो। गिरस्तों का गढ़ टूटना चाहिए, जैसे भी हो। दिमाग़ में बस यही एक बात घूम रही है।

सहसा उसके दिमाग़ में आया कि इस सिलसिले में रऊफ़ चाचा से मिलना चाहिए। रऊफ़ चाचा भी हाजी अमीरुल्ला के यहाँ से कतान लाकर बानी पर बिनते हैं। उसके बाप के चचेरे भाई हैं, पर सगे चाचा जैसा व्यवहार करते हैं। पहले तो वह दिन में कई बार उनके यहाँ चला जाया करता था लेकिन इधर कई महीने हो गये, नहीं गया। कल जरूर जायेगा।

और मतीन सुबह-सुबह ही रऊफ़ चाचा के घर पहुँच जाता है।

दरवाजे से अन्दर दाखिल होते ही सामने एक कमरा है जिसमें एक करघा गड़ा हुआ है। करघे पर वैंटन[1] पड़ा है। नीचे सन्नाटा है। मतीन ऊपर चला जाता है।

ऊपर नीचेवाले कमरे के बराबर का ही एक कमरा है। कमरे से बाहर थोड़ी खुली जगह है जहाँ बावर्चीख़ाना बना है।

वह कमरे में पहुँचकर खड़ा हो जाता है। यहाँ भी सन्नाटा है। वह खड़ा-खड़ा कमरे को ग़ौर से देखने लगता है—यह सोचता हुआ कि घर खुला छोड़कर नजबुनिया कहाँ चली गयी? चच्चा तो हो सकता है, चाय पीने चले गये हों। चच्ची को तो आदत है पड़ोस में जाकर गप हाँकने की।

---

1. करघा जिस वस्त्र से ढँका होता है, उसे बैंटन कहते हैं।

वह देर तक वहीं खड़ा रहता है और कमरे का निरीक्षण करता रहता है। एक तरफ दो चारपाइयाँ खड़ी हैं, दूसरी तरफ एक चौकी बिछी है, जिन पर बिछौने वगैरह तह करके रखे हैं। दीवारों पर कई-कई अलमारियाँ हैं जिस पर घर-गृहस्थी की वस्तुएँ करीने से रखी हुई हैं। एक तरफ एक बड़ा-सा सन्दूक है जिसके ऊपर दो छोटे-छोटे बॉक्स रखे हुए हैं। सबों में ताले बन्द हैं। दीवारों पर कई-कई खूँटियाँ हैं, जिन पर बिनकारी की चीजें टँगी हुई हैं। चर्खा, मटावा, परेता, थौना, मौनी, टेकुआ, सिरकी आदि। एक खूंटी पर एक लालटेन टँगी हुई है और एक कोने में कुछ घड़े रखे हुए हैं।

अचानक नजबुनिया को देखकर वह चौंक उठता है। बावर्चीखाने की बगल में बने हुए पाखाने में से निकलकर वह दरवाजे पर आ गयी है।

"कब आएव ?" वह सवाल करती है और मुस्कराती है।

"अभइने आवा है। कहाँ गयी रहे !" वह बोलता है तो नजबुनिया लजा जाती है। वह चौकी पर बैठ जाता है।

नजबुनिया जमीन पर बैठ जाती है।

"चच्चा कहाँ गयंन ?"

"गये ने चाय पिये !"

"अउर अम्माँ ?"

"बसीर चच्चा कियें।"

वह भैया-भउजी के बारे में नहीं पूछता। जानता है कि हनिफवा अलग रह रहा है।

मतीन समझ नहीं पाता कि वह और क्या बोले ? फिर न जाने क्या होता है कि वह एक अजीब-सा सवाल कर बैठता है—

"तोरा बियाह कब होइए ?"

"भक्क !"

नजबुनिया उसे आँखें तरेरकर देखती है और मतीन के कानों में उसका भक्क-भक्क बजने लगता है।

तभी सीढ़ी पर किसी के आने की आवाज होती है और ठीक उसी समय बावर्चीखाने में भी खड़खड़ सुनायी पड़ती है। नजबुनिया भाग जाती है।

"अरे अल्ला के दूद[1] गिरावा है?" वह बावर्चीखाने में पहुँचकर बुदबुदाती है।

और मतीन रऊफ चच्चा के साथ बैठकर सोसाइटी के बारे में बतियाने लगता है।

नजबुनिया का कलेजा धक्-धक् हो रहा है।

---

1. दूध।

5

मतीन का जी अच्छा नहीं है। अलीमुन को आज फिर खून गया है। इकबाल को खुजली हो गयी है। दिन-रात खुजलाता रहता है। पेशाब की नली में और जाँघों के इर्द-गिर्द ज़ख्म हो गये हैं। डाक्टर ख़लीकुज्ज़माँ अंसारी के यहाँ से दवा आयी है, पर कोई खास फायदा नहीं है।

तीस आदमी अभी तक ठीक नहीं हुए। रऊफ चचा ने पता नहीं किससे-किससे बात की? वैसे उन्हें भी लोगों से दुबारा बात करनी चाहिए। एक दिन के बाद ही तो चुप बैठ गया वह। अरे बार-बार मिलने-जुलने से काम बनेगा कि एक्कै बार में सब ठीक हो जायेगा। हाजी अमीरुल्ला का गढ़ तोड़ना है। लोगों का गला काट-काटकर बच्चू ने बड़ा धन जोड़ा है। देखते हैं अब कौन बिनता है उनके यहाँ की साड़ी? सब अपना-अपना बिनेंगे और अपना-अपना बेचेंगे। अभी तक हमारी मेहनत की रोटियाँ इन मुटल्लों ने खायी हैं, अब हम खुद खायेंगे। बस सोसाइटी बनने-भर की देर है।

और मतीन अचानक ही बेहद उत्साहित हो उठा। उठकर उसने अलीमुन को दवा पिलायी, इकबाल के ज़ख्मों में मलहम लगाया और बाहर निकल पड़ा। चायखाने की ओर।

मग़रिब का वक़्त क़रीब है। सड़क पर चहल-पहल बढ़ गयी है। मुहल्ले के बेकार लौंडे चौराहे पर पान की दूकान पर खड़े हैं और आने-जानेवाली स्त्रियों के बुर्के देख रहे हैं। कुछ लोग घुटनों तक लुंगियाँ मोड़े चबूतरों पर बैठे हैं और पान की पीक थूक-थूककर ठट्ठा लगा रहे हैं।

मतीन सबको नजरअन्दाज करता हुआ आगे बढ़ जाता है।

वह खोजितकुआँ की मस्जिद के सामनेवाले चायखाने में घुसकर बैठ जाता है। चाय का होटल बुनकरों से खचाखच भरा है। लोग दुनिया-जहान की बातों में मशगूल हैं।

"अबे एकठे चाय देबे।"

"अमा अमरीका में एकठे बिल्डिग में आग लग गयी, अउर कई आदमी मारे गयेन।"

"हाँ म्याँ, ऊ बहुत बड़ी बिल्डिग रही अऊर आठ करोड़ की लागत से ऊ बनी रही। सीसे का सब खिरकी अऊर पल्ला रहा।"

"अच्छा एक बात है कि पाकिस्तान भी अब बहुत मजबूत हो गोवा है। अमरीकावाला ओके एफ सोना (एफ-16) दे रहा है। लगेते कि जंग की तैयारी कर रहा है।"

"रूस में एकठे कम्पनी खुली है म्याँ जेम्मे एकठे अइसा जहाज बनेते कि ओम्मे एक हजार अदमी एक साथ बइठ सकेते न !"

"रूस मे म्याँ करघा भी बढ़ियाँ-बढ़ियाँ हैं न ! ऊँहा के बुनकर बड़े मजे मे हैं न म्याँ ! इँहा त बुरचोदी के रात-दिन खटो, तउने पर परेसान रहो !"

"अबे भोंसड़िया के, सुने नाँहीं का बे ? एकठे चाय देबे ।"

"अमाँ आजकल बरना[1] में मछरी लगेते कि नाँही ?"

"आजकल तो मछरी बहुत लगेती । समिउल्ला गये रहेन तो अट्ठारा किलो की एकठे मछरी मार के लियाय रहेन ।"

"अबे तनी सलाई दे तो, बीड़ी दगावें ।"

"एनापारी गोहूँ बहुत सस्ता बिकिए म्याँ !"

मतीन चायख़ाने की गप सुन रहा है और अखबार पढ़ रहा है। उसमे एक विज्ञापन है जो 'भारतीय हथकरघा प्रौद्योगिकी संस्थान, चौका-घाट' की ओर से जारी किया गया है :

> 'एक कुशल बुनकर पचीस विभिन्न प्रकार की उभारदार डिजाइनों को रेशम के एक ही धागे से पैदा कर सकता है।
>
> एक कुशल बुनकर करघे पर अपनी कारीगरी से बालूचर को पंखुड़ी जैसी कोमलता, तन्तु को लावण्यता, किनखाब को भव्यता, तंछई को ऐन्द्रिक अनुभूति, कांचीपुरम् को आकर्षक सज्जा, पटोला को गहन नक्काशी और जरी को सुन्दर स्वरूप प्रदान कर सकता है।
>
> हथकरघा वस्त्रों की बुनाई ने सूती, रेशमी और ऊनी कपड़ों को उन्नति प्रदान की है तथा इसके धागो की मुलायमियत ने शरीर पर सुनहरे मौसम की अनुभूति दी है। कपड़ों की कलात्मकता मे हथकरघे की धुरी की कुशलता भी झलकती है। लगभग तीन हजार वर्ष पूर्व से ही हथकरघा के बुनकरों की कुशलता, रंगों के गहन अध्ययन, खूबसूरत डिजाइनों तथा तकनीकी दक्षता के चलते भारत ने समूची दुनिया को प्रभावित किया है।'

और भारत ने एक मामूली बुनकर को क्या दिया है ?

मतीन ने अपने छोटे-से दिमाग़ से विज्ञापन की बडी भाषा को समझने की कोशिश करते हुए खुद से ही एक सवाल पूछा तो जवाब की शक्ल मे चायख़ाने के भीतर बैठे हुए वे तमाम लोग उसे दिखायी पडे जिन्हें मालूम नही है कि उनके घर मे आज आग जली है या नही, पर वे अमेरिका की किसी कल्पित इमारत मे लगी हुई आग के बारे मे चिन्तित हैं।

---

1. बरुणा नदी ।

मतीन को लगा कि यहाँ चायखाने में बहस-मुबाहसा उचित नहीं है, अतः वह चाय पीकर चुपचाप लौट आया।

ऊपर पहुँचकर उसने घड़े से मलसी[1] में पानी उड़ेला और खूब छींटा मारकर मुँह धोया। तभी ख्वोजितकुली की मस्जिद और अंसाराबाद की मस्जिद से साथ-साथ लाउडस्पीकर पर मग़रिब की अजान सुनायी दी। उसने देखा कि अजान की आवाज कान में पड़ते ही अलीमुन चारपाई पर उठकर बैठ गयी है और ओढ़नी से उसने अपना सिर ढँक लिया है, उस अल्लाह के सम्मान में, जो रब्बुलआलमीन है। रहमान और रहीम है।

मतीन की भौंहें सिकुड़ गयीं। वह लेट गया।

6

फजिर की नमाज पढ़कर हाजी अमीरुल्ला बहरी अलंग निकल जाते हैं। साफा-पानी[2] के लिए। उनका यह रोज का नियम है। पठानी टोला और अंसाराबाद के बीच में उनका एक बगीचा है जो उनका, उनके पूरे खानदान का और उनकी मित्र-मण्डली का सैरगाह है। बगीचे में गुलाब, बेला, रातरानी, जीनिया और नर्गिस के फूल लगे हुए हैं। एक कोने में हजरत आदम को अपने पत्ते देनेवाला अंजीर भी अकड़ता हुआ-सा खड़ा है। वहीं एक पक्का कुआँ है और बगल में फ्लश सिस्टम पाखाना। कुएँ के पास दो-तीन शहतूत के झाड़ भी लगे हुए हैं। एक ओर की जमीन को खोद-खोदकर कुछ क्यारियाँ-सी बना ली गयी हैं जिनमें मौसमी सब्जियाँ उगायी जाती हैं। बारिश में भुट्टा यहाँ खूब होता है। पीछे की ओर दो पक्के कमरे हैं जिनमें घर के फालतू लड़के कैरम और शतरंज खेला करते हैं। दरवाजे के पास ही एक और पक्का कमरा है, जिसमें एक औरत रहा करती है—बगीचे की देख-भाल के लिए। लोगों का कहना है कि यह हाजी अमीरुल्ला की रखैल है। औरत कोई खास खूबसूरत तो नहीं, पर जवान है और मसल है कि जवानी में तो

1. मटोरे की तरह का एक बर्तन।
2. नित्य क्रिया एवं स्नान आदि। बनारस का 'साफा-पानी' मशहूर है।

कुतिया भी खूबसूरत लगती है। उस औरत के मर्द ने उसे छोड़ दिया है। सुना यह भी जाता है कि वह मल्लाहिन है। वह औरत दिन-भर शृंगार करके पूरे बगीचे में घूमा करती है। सफेद रंग की छींटदार साड़ी और काले रंग के ब्लाउज में वह खूब जँचती है, लोगों का ऐसा विचार है। ब्लाउज हमेशा वह बड़े गले का पहनती है, ताकि उसका सौन्दर्य गुप्त न रहने पाये। ब्लाउज के भीतर अँगिया वह खूब कसकर बाँधती है। बालों में फीता इस तरह गूँथती है कि अठारह साल की छोकरी लगे। उसकी इस अदा पर हाजी अमीरुल्ला ही नहीं, उनके होनेवाले समधी हाजी वलिउल्ला भी फ़िदा हैं। वैसे कभी-कभी हाजी अमीरुल्ला के बड़े भाई (जिन्हें लोग हाजी मिनिस्टर कहा करते हैं) भी मजाक कर लिया करते हैं।

हाजी अमीरुल्ला का खानदान बहुत बड़ा है। चार भाई और पाँच बहिनें। फिर हर भाई का अलग-अलग परिवार। सबसे बड़े हैं हाजी मतिउल्ला, उनसे छोटे हैं हाजी मिनिस्टर, फिर हाजी अमीरुल्ला और अन्त में हबीबुल्ला। हबीबुल्ला अभी हाजी नहीं हैं, पर जल्दी ही मक्का जानेवाले हैं। पासपोर्ट के लिए अप्लाई कर दिया है।

हाजी मिनिस्टर के बारे में मशहूर है कि हज से लौटते वक्त अपने लिहाफ में भरकर वे इतना सामान ला रहे थे कि तस्करी के आरोप में पकड़ लिये गये और जेल चले गये। लोगों ने प्रतिक्रिया व्यक्त की कि गये थे हाजी होने, हो गये मिनिस्टर। और तबसे उनका नाम ही पड़ गया—हाजी मिनिस्टर। असली नाम है बरकतुल्ला।

हाजी मतिउल्ला बड़े नेकदिल इंसान हैं। कभी एक पैसा किसी का दबाया नहीं। उल्टे दीन के काम में खर्च ही किया है। एक कालेज खुलवा दिया। एक अस्पताल बनवा दिया। यतीमख़ाना भी तैयार हो गया है। और क्या चाहिए?

घर का कारोबार हाजी अमीरुल्ला के लड़के ही सँभालते हैं। मतिउल्ला के दोनों लड़के पाकिस्तान जाकर बस गये हैं। हाजी मिनिस्टर का कोई लड़का ही नहीं है। हबीबुल्ला के लड़के अभी पढ़ रहे हैं। एक लड़का अभी दस में है और एक आठ में। पढ़ने में दोनों कमजोर हैं, पर इस साल दोनों को पास कराना है। आठवाले के लिए तो दिक्कत है नहीं, मास्टर सब घर ही के हैं। नौकरी दी है तो क्या इतना भी न करेंगे? दसवाले के लिए प्रिंसिपल से कहना है कि बोर्ड परीक्षा के सेण्टर पर ऐसे मास्टरों को भेजें जो हर विषय में भरपूर मदद कर सकें।

हाजी अमीरुल्ला के तीन लड़के और दो लड़कियाँ हैं। एक लड़की हबीबुल्ला की भी है। हाजी मतिउल्ला की चार लड़कियाँ हैं जो ब्याह दी गयी हैं।

हर भाई के नाम अलग-अलग कोठियाँ हैं और अलग-अलग करघे हैं। किसी के ज़िम्मे बीस तो किसी के ज़िम्मे पचीस। जरी का धन्धा अलग।

हाजी अमीरुल्ला के बड़े लड़के कमरुद्दीन की शादी हो गयी है हाजी उस्मान के

यहाँ। हाजी उस्मान बनारसी साड़ियों के मशहूर एक्सपोर्टर हैं। उनके यहाँ जरी का काम भी होता है। बड़ी लड़की का ब्याह सलामतुल्ला महतो के लड़के से किया है। मझले लड़के शरफुद्दीन की शादी हाजी वलिउल्ला की लड़की से तय हो चुकी है। छोटा लड़का जमरुद्दीन अंसारी स्कूल में अंग्रेजी पढ़ रहा है।

पचीस करघों से अब काम चलता नहीं। जरदोजी में भी कुछ धरा नहीं है। खर्च बढ़ गया है। हाजी अमीरुल्ला चिन्तित हैं। कोठी भी छोटी पड़ रही है। बशिरवा अगर अपना घर बेच दे तो ले लेंगे उसे। बगल में है। मेल की जमीन है, छोड़ना नहीं है। कमरुवा से कहना है कि बशिरवा को पटाओ। अगर नहीं पटता तो कोई तिकड़म खेलना होगा।

महँगाई बढ़ रही है। कमरुवा से यह भी कहना है कि साड़ियों में जरा ध्यान से ऐब देखो, वरना कारोबार कैसे चलेगा?

हाजी अमीरुल्ला अपने विचारों में इतने मग्न रहे कि कब वे बगीचे में दाखिल हो गये, उन्हें पता ही नहीं चला।

वहाँ पहुँचे तो देखा, हनिफवा उनका इन्तजार कर रहा है।

"कहो म्याँ कइसे?"

कुएँ की जगत पर अपने शरीर को टिकाते हुए उन्होंने सवाल किया तो हनीफ थोड़ा और आगे सरक आया—

"हम आये हैं गिरस ई बतावे कि ऊ जो मतिनवा है न, कइसी सुसाइटी बनावेते। तीस अदमिन क दसकत करावेते। ऊ कहेते लोन मिलिए।"

"हूँ!"

हाजी साहब सुनते हैं और खामोश रहते हैं। हनीफ उठता है और यह आश्वासन देता हुआ चल देता है कि हम उसके कागज पर दस्तखत नहीं करेंगे।

हाजी अमीरुल्ला फिर विचारमग्न हो जाते हैं।

कमरुद्दीन 'मूसा का गुल' अपने दाँतों में मलता हुआ उनके पास पहुँचता है और कुछ बात करना चाहता है, पर हाजी साहब कोई तवज्जोह नहीं देते। वे समझ रहे हैं कि मतीन कैसी सोसाइटी बनाना चाह रहा है। अगर यह सोसायटी बन गयी तो?

हाजी साहब चिन्तित हो जाते हैं।

हालाँकि उनके चचा जनाब हमीदुल्ला एमे (एम. ए.) आल इण्डिया हैण्डलूम बोर्ड के चेयरमैन हैं और उनके होनेवाले समधी हाजी वलिउल्ला के बड़े भाई हाजी हमीद यू. पी. हैण्डलूम बोर्ड के चेयरमैन हैं और ये कुछ भी कर सकने में सक्षम हैं, पर मतिनवा के दिमाग में यह बात आयी कैसे? जरूर उस एमेले (एम. एल. ए.) भोसड़ीवाले की कारस्तानी है! ठीक है। अगला चुनाव आवे तो बतावें बुरचोदी को! अरे, शहर बनारस के आधे अंसारियों के वोट तो हमारे हाथ में हैं!

लेकिन मतिनवा की सोसाइटी अगर बन गयी तो? हमारे करघों का फिर क्या होगा?

और हाजी साहब अचानक बेहद उदास हो गये। वे उठे और घर की ओर चल पड़े।

7

हनिफवा दो साल से छोटा-मोटा गिरस्त बन गया है। हाजी अमीरुल्ला की चापलूसी कर-करके कुछ ज्यादा ही पैसे इसने कमा लिये हैं और अब अपने घर में दो करघे निजी बैठा लिये हैं। एक पर खुद बिनता है और दूसरे पर एक कारीगर से बिनवाता है।

हाजी अमीरुल्ला को मतीन की कारगुजारियों की खबर करके उसने मानो तीर मार लिया और उसी खुशी में शाम को सरैया की ओर निकल गया। इधर कई हफ्ते से नशा-पानी का जुगाड़ नहीं हो सका था।

ताड़ी पीकर लौटने लगा तो रास्ते में लतीफ मिल गया।

"का म्याँ मतिनवा के का हो गोवा है?"

इसने बात छेड़ी तो लतीफ गम्भीर हो गया, "कुछ तो नाँही म्याँ! सरकार जब सहूलियत मुहैय्या करा दियेसे त ओके लेय में कउन हर्जा है?"

"त सोसाइटी बन जइए अब?"

"जरूर बनिये, बाकी पइसवे क मसला सामने है!"

"तुहूँ दसकत करियो?"

"हाँ, काहे नं!"

इस पर हनीफ खामोश रहा। थोड़ी दूर साथ चलता रहा, फिर तेज-तेज कदम बढ़ाकर आगे हो गया। आगे बशीर और शरीफ मिल गये। उनसे भी हनीफ ने वही बात की और उन्होंने भी उसे वही जवाब दिया तथा पैसे का रोना रोया। तब यह बिल्कुल खामोश हो गया और गोल-गड्डा तक सीधे आकर फिर नक्खीघाट की ओर मुड़ गया।

अलईपुर रेलवे स्टेशन के पासवाला इलाका नक्खीघाट बोला जाता है। वहाँ एक औरत रहती है जो पेशा करती है। दालमण्डी की रण्डियाँ तो अब गायब हो

गर्दा। अब किसी का दिल ललचे तो यही एक जगह है, वरना मँडुआडीह जाय। हनिफवा नक्खीघाट ही जाता है। सस्ता भी और नजदीक भी।

लतीफ घर लौटता है तो अपने दरवाजे से मतीन को बाहर निकलता हुआ देखता है। लुंगी का टोंका उठाये, मैला-सा कुर्ता पहने, टोपी लगाये'''लतीफ को देखकर वह अपने-आप ही खड़ा हो गया।

"कहो म्याँ कहँसे आये रहेव ?"

"बइठो त बात होय ?"

"आओ।"

और दोनों जने करघेवाले कमरे में घुसकर बैठ गये।

"दस जने क दसखत हो गोवा है। बीस अदमी अउर चाहिए। कोसिस करो।"

"होइए म्याँ, सब होइए, पर इ पूछ लिये हो न कि रुपिया मिलिए ?"

"हाँ म्याँ, मिलिए काहे ने ?"

"तब होइए, सबुर करो। बस ऊ हनिफवै बुरचोदी के हरामी है। भोसड़िया-वाला दलाली करेते।"

"चलो कउनो हर्जा नाहिन।"

"केतना मिलिए म्याँ ?"

"करीब-करीब साठ हजार जरूर से मिलिए। दु-दु हजार एक-एक जने के।"

"बहुत है म्याँ, बहुत है !"

और मतीन खड़ा हो गया। उसे अभी कई जगह जाना है। आज दिन-भर वह इसी काम में लगा रहा। उन सभी लोगों के पास वह बारी-बारी से गया जो हाजी अमीरुल्ला के यहाँ या किसी दूसरे गिरस के यहाँ बानी पर बिनते हैं या टुटपुँजिए हैं या साधारण मजूर हैं। सिर्फ दो लोग रह गये हैं जो गिरस के घर में जाकर बुना करते हैं। उनसे तो 'बैठकी'[1] में ही भेंट होगी। गिरस के यहाँ जाना मुनासिब नहीं। वरना बात बिगड़ जायेगी।

मतीन बाहर आ जाता है।

---

1. त्योहार आदि की छुट्टी।

8

कातिक बीत गया है। मौसम में हल्की-हल्की घुनकी शुरू हो गयी है। इस साल दीवाली के दिन हाजी अमीरुल्ला ने अपने कारीगरों को मिठाई का एक-एक किलोवाला डिब्बा बाँटा है। हर साल आधा किलो का डिब्बा मिलता था। 'आखिरी बुध'[1] के रोज भी एक किलो का डिब्बा नहीं दिया गया कभी। हाजी साहब अचानक इतने उदार कैसे हो गये, यह बात किसी के भी पल्ले नहीं पड़ी।

मतीन को भी एक किलो का डिब्बा मिला और इस बार उसकी बिनी साड़ी में ऐब भी नहीं निकाला गया, जबकि दूसरे सभी कारीगरों की साड़ियों में ऐब निकले। लेकिन मिठाई देने में कोई कोताही नहीं बरती गयी, बल्कि देहात से आनेवाले हिन्दू कारीगरों को तो आधा-आधा किलो के डिब्बे अतिरिक्त दिये गये।

सभी कारीगरों ने हाजी साहब की खूब तारीफ की। गिरस हो तो भाई अइसा!

मतीन के माथे पर बल पड़ गये। उसका कागज अभी अधूरा है। तीस लोग नहीं पूरे हो सके हैं अभी तक। जिन लोगों ने दस्तखत किये हैं उनमें से कइयों ने अभी पैसे भी नहीं जमा किये हैं। वह एक दिन और गया था बैंक, तो बाबू ने उसे घुड़क दिया था। पहले कागज पूरा तो करो, फिर ए. डी. आई. से मिलो। वहाँ भी तो हजार-दो हजार लगेगा, वरना कागज अप्रूव कैसे होगा?

मतीन उठा और रऊफ चचा के यहाँ जाने के लिए बाहर निकल पड़ा।

रऊफ चचा बिन रहे हैं। करघे के पीछे टिका हुआ उनका बूढ़ा शरीर बिल्कुल किताब में छपी कबीर की तस्वीर की तरह लग रहा है। दर्जा पाँच की किताब में मतीन ने वह तस्वीर देखी थी। रऊफ चचा के बदन पर सिर्फ लुंगी है और टोपी। कुर्ता उतारकर उन्होंने बगल में रख लिया है। करघे पर बैंजनी रंग की एक साड़ी बिनी जा रही है। नरी पर कलाबत्तू लिपटा है और ढोटा पर रेशम, मानो आसमान पर चाँद और सूरज साथ-साथ चमक रहे हैं और दुनिया का करघा एक अखण्ड लय के साथ गतिमान है···

मतीन के पहुँचते ही रऊफ चचा उठ जाते हैं और दोनों ऊपर चले जाते हैं।

"देख बनिया मतीन आवा है, ओके पानी-वानी दे।"

नजबुनिया की अम्माँ उसे देखकर बोलती है तो नजबुनिया मुस्कराती है।

---

1. बुनकरों का एक महान पर्व।

कनखी से मतीन की ओर ताककर वह एक घड़े में से बताशा निकालने लगती है। रऊफ चचा समस्या पर विचार करने में मग्न हो जाते हैं। देहात के कारीगरों को भी शामिल करना होगा। बस यही एक हल है। वरना तीस आदमी कहाँ से पूरे होंगे?

रऊफ चचा की राय मतीन को जँचती है। सिर्फ शहरी कारीगरों से काम नहीं चलेगा। सभी तरह के परेशान लोगों को शामिल करना होगा। लेकिन समस्या सिर्फ यही है कि लोगों के पास पैसे कहाँ से आयेंगे? पैसों का ध्यान आते ही मतीन का चेहरा मुरझाने लगता है। लेकिन रऊफ चचा का उत्साह कम नहीं होता।

"तूँ घबराओ न मतीन, सब होइए। मगर टैम पर। बिना टैम के म्याँ कउनो काम भोवा है कब्भों?"

और वे अपनी चमकीली आँखें मतीन के चेहरे पर टिका देते हैं। उन आँखों में अनुभव और मेहनत की गहरी धाराएँ छिपी हुई हैं। ऐसा मतीन को लगता है।

"हाँ चच्चा, तूँ ठीक कहे तो!" वह इतनी देर बाद बस एक वाक्य बोलता है और खड़ा हो जाता है।

"कहाँ चलेव?"

"आज पियाला है न चच्चा, चलें देखें, कुछ लोगन से बतियावें।"

"हाँ, मेला में तो बहुत जने मिलियें। ठीक याद दियायो, हम भी जुम्मा पढ़े की तैयारी करें।"

"अच्छा सलांवाले कुम।"

और मतीन झटके के साथ बाहर निकलकर सड़क की ओर बढ़ जाता है।

नजबुनिया नगोल (छत) पर खड़ी-खड़ी उसे देखती रहती है।

आज 'पियाला' है। चौका पर का जुम्मा। अगहन का पहला शुक्रवार। आज बिरादरी के लोग मस्जिदों में नमाज नहीं पढ़ेंगे। आज नमाज होगी चौकाघाट के मैदान में। सुबह से ही तैयारी शुरू है।

तैयारी सिर्फ नमाज की ही नहीं, इस साल तैयारी लड़ाई की भी हो रही है। पुरानी बाइसी और नयी बाइसी में भिड़ी हुई है। जब से नयी बाइसी बनी है तभी से चौका पर के जुम्मे को लेकर विवाद खड़ा हुआ है। और कुछ नहीं, झगड़ा उस मैदान का है जहाँ नमाज होती है। मतीन जानता है। उसे मालूम है कि उस जमीन के हकदार एक ओर हाजी अमीरुल्ला हैं—पुरानी बाइसीवाले, तो दूसरी ओर हाजी रफीकुरहमां हैं—नयी बाइसीवाले। पहले जब एक ही बाइसी थी तो भी इन दोनों लोगों में भिड़ी रहती थी। न कोई सरदार की सुनता था न महतो की। अब तो

दोनों के सरदार-महतो अलग-अलग हैं।

चौराघाट में मेला लगा हुआ है। जुमे की नमाज के बाद तक़रीह शुरू होगी। एक तरह से बनारसी जुलाहों की यह डिठवन एकादशी है। जगह-जगह ऊख के पहाड़ गँजे हुए हैं। लोग नमाज पढ़ेंगे, ऊख खरीदेंगे और अपने-अपने घर रवाना होंगे।

"तूं केहर हो म्यां ?"

"जनतो नाहीं का, हम नयी बाइसी में हैं !"

"आज तो मिहिए !"

"मिहे दो म्यां, का करे के है।"

बातचीत का यह टुकड़ा मैदान में उभरता है और उधर पता चलता है कि ऊखवाले के टाल पर झगड़ा हो गया है। लोग टाल में से ऊख निकाल-निकालकर एक-दूसरे को ऊख के डण्डे से ही मार रहे हैं और चारों ओर भगदड़ मची हुई है।

"केत्तर क हउरा है म्यां ?"[1]

मतीन पूछता है तो अल्ताफ ऊख के टाल की ओर दौड़ता हुआ जल्दी-जल्दी जवाब देता है, "झगड़ा हो गोवा है।"

और सब मजा किरकिरा।

क्षण-भर पहले जो नमाजगाह थी वह अब जंगगाह बन गयी थी। लेकिन चाहे नमाज हो और चाहे जंग हो, जिस आदमी के जहन में कोई दूसरा ही तूफान भरा हो, वह अपनी ही धुन में खोया रहता है। मतीन पूरे मेले में अपनी सोसायटी को लेकर ही घूमता रहा। और इस वक़्त जबकि सारी दुकानें उठ गयी हैं और 'पियाले' की खुशी लड़ाई के दरिया में लुप्त हो चुकी है, तो भी वह अपनी सोसायटी के बारे में ही सोच रहा है।

"तूं दसखत करयो ? पइसा मिलिए।" रास्ते में मतीन अल्ताफ को टोकता है।

"करबे, मगर रुपिया नहिंने हमरे संग !"

"दसखत तो करियो ?"

"हां करबे।"

और वह जेब से काग़ज निकालकर सड़क पर ही उसमें दस्तख़त ले लेता है। बारह हो गये।

1. किस तरह का शोर है ?

9

"अबे, अबे चल गुल्ली-डण्डा खेला जाये।"

हनीफ का लड़का शरीफ इकबाल को खेलने के लिए उकसाता है तो वह तैयार हो जाता है।

"हाँ बे हाँ, चल खेला जायें, बड़ी मजा अइये।"

"अबे भक, गुल्ली-डण्डा नाँहीं खेला जइये।"

वहीं खड़ा हनीफ का लड़का बिराहिम बीच में टपक पड़ता है और इकबाल बिगड़ जाता है।

"अबे तैं हमरे संग काहे आवेते वे ? भाग जै नाँहीं तो पटक के मारेंने।"

लेकिन जमील नहीं भागता। वहीं खड़ा रहता है। यह बात शरीफ को भी बुरी लगती है और वह भी उसे डपटता है, "अबे बुरचोदी के तोरी का करों में भाग जै एज्जन ने नाँहीं तो अच्छा न होइए।"

"बेटा उठा के पटक देंने, मरी जइयो।"

इकबाल को और शह मिलती है।

जब बिराहिम देखता है कि ये दोनों ही एक में मिल गये हैं तो वहाँ से चल देता है, लेकिन धीरे-धीरे बुदबुदाता जाता है—

"तोरे में एतनी दम्मो है ? तोरे बाप तो मारी नाँहीं सकतेन, तैं का मरबे वे ?"

लेकिन इकबाल और शरीफ उसे अनसुना कर देते हैं। शरीफ एक ओर गड्ढा बनाने लगता है और इकबाल गुल्ली लेकर थोड़ी दूर पर खड़ा हो जाता है।

बाहर सूर्य अपने ढलान पर है और गलियों में इमारतों के बड़े-बड़े साये पसरने लगे हैं। इधर-उधर, जहाँ भी खाली जगह पड़ी हुई है या तो कारीगर अपना ताना फैलाये हुए हैं, या मुहल्लों के बच्चे धमा-चौकड़ी मचाये हुए हैं। उनमें से कुछ गेंद खेल रहे हैं तो कुछ गुल्ली-डण्डा। कुछ आँख-मिचउवल में मग्न हैं तो कुछ 'चोर-सिपाही' बने दौड़ रहे हैं। घरों में उनके माँ-बाप भविष्य की योजनाएँ बना रहे हैं।

अलीमुन की तबीयत कुछ ठीक हो गयी है। वह मतीन से बतिया रही है। घर-गृहस्थी के बारे में, लड़के के बारे में, कपड़े-लत्ते के बारे में। बातें-ही-बातें हैं।

"एक बलपा क नवों लिखाय दो एनापारी।"

"हमहूँ सोचीले। दिनवाँ-भर खेलत रहेले।"

"उहै कमरुनिया क लड़का बिगाड़ेले ओके।"

"का न पढ़िये का ?

"का जानी पढ़िहें कि नाँहीं ! कहत त रहा कमरुनिया की संभावाले मनरसा में

नांव लिखाऐंने। दिनवां मे बिनकारी सिखिए। दिन-रात ओका धियान पइसवे मे रहेते। तोरा कागज क का भोवा।"

"तें का करबे जान के? होइ न! अमइँ अउर रुपिया चइए।"

अलीमुन चुप हो जाती है।

मतीन भी चुप हो जाता है।

रुपया कहाँ से लायेंगे लोग? जो लोग बानी पर बिनते हैं उन्हें मजदूरी इतनी कम मिलती है कि हफ्ते का खर्च चलाना ही मुश्किल हो जाता है। जो लोग अपना माल खरीदकर बिनते हैं उनके ऊपर कतान और कलाबत्तू का कर्जा इतना होता है कि इधर से आया और उधर गया। गिरस्ता के घर जाकर मजूरी पर बिनने-वालों की हालत तो और भी खराब है। किसी भी मामूली बुनकर के लिए एक सौ दो रुपये का इन्तज़ाम करना मुश्किल है। फिर ए. डी. आई. के लिए भी तो कुछ चाहिए। वह कहाँ से आयेगा?

मतीन की इच्छा है कि इकबाल को वह अंग्रेजी स्कूल में पढ़ायेगा। लतीफ तो अपने लड़के को मदरसे में भेजनेवाला है। मदरसे में पढ़ाकर क्या होगा? क्या मोलबी बनाना है उसे, कि लड़का दाढ़ी बढ़ाकर चटाई बँधना लिये इस मस्जिद से उस मस्जिद तक घूमता रहे जिन्दगी-भर। नहीं। इस साल वह इकबाल का नाम अंसारी स्कूल के प्राइमरी सेक्शन में जरूर लिखवा देगा। इकबाल से वह बिनकारी थोड़े न करायेगा।

यह अजीब इत्तफाक है कि जिस वक्त मतीन अपने लड़के की तालीम के बारे में सोच रहा था, उस वक्त लतीफ भी वही सब सोच रहा था।

लतीफ की इच्छा है कि शरीफ को मदरसे में दाखिल करायेगा। अरे अंग्रेजी स्कूल में पढ़कर क्या करेगा? कौन उसे नौकरी करनी है! करना तो वही अपना ही काम है। थोड़ा और बड़ा हो जाय तो पेटी लेकर गोलघर[1] जाने लायक हो जायेगा।

फिर मदरसे में पढ़ने से कई फ़ायदे हैं। एक तो यह कि दिन में खाली रहेगा और बिनकारी में मदद करेगा। मतीन की तरह थोड़े न उसे भूखों मरना है। अपना करघा है। लड़का भी अगर मदद करेगा तो ज्यादा काम होगा। फिर जैसा कि मतीन कह रहा है, अगर लोन का रुपया मिल गया तो एक करघा और गाड़ लेगा। इसके अलावा लड़का अपने दीन-मज़हब की बातें सीखेगा, कुरान-हदीस पढ़ लेगा, यह क्या कम फ़ायदा है?

अभी ये लोग अपने-अपने घरों में बैठे अपने-अपने लड़कों के भविष्य के बारे में सोच

1. बनारसी साड़ियों का मार्किट।

बे चल गुल्ली-डण्डा खेला जाये।"

तीफ का लड़का शरीफ इकबाल को खेलने के लिए उकसाता है तो वह तैयार ा है।

हाँ बे हाँ, चल खेला जाये, बड़ी मजा अइये।"

बे भक, गुल्ली-डण्डा नाँहीं खेला जइये।"

ी खड़ा हनीफ का लड़का बिराहिम बीच में टपक पड़ता है और इकबाल ाता है।

बे तैं हमरे संग काहे आवेते बे ? भाग जै नाँहीं तो पटक के मारेंने।"

किन जमील नहीं भागता। वहीं खड़ा रहता है। यह बात शरीफ को भी ती है और वह भी उसे डपटता है, "अबे बुरचोदी के तोरी का करों में ग्जत मे नाँहीं तो अच्छा न होइए।"

टा उठा के पटक देंने, मरी जइयो।"

बाल को और शह मिलती है।

बिराहिम देखता है कि ये दोनों ही एक में मिल गये हैं तो वहाँ से चल लेकिन धीरे-धीरे बुदबुदाता जाता है—

रे में एतनी दम्मो है ? तोरे बाप तो मारी नाँहीं सकतेन, तैं का मरबे बे ?"

केन इकबाल और शरीफ उसे अनसुना कर देते हैं। शरीफ एक ओर गड्ढा गता है और इकबाल गुल्ली लेकर थोड़ी दूर पर खड़ा हो जाता है।

हर सूर्य अपने ढलान पर है और गलियों में इमारतों के बड़े-बड़े साये गे हैं। इधर-उधर, जहाँ भी खाली जगह पड़ी हुई है या तो कारीगर ना फैलाये हुए हैं, या मुहल्लों के बच्चे धमा-चौकड़ी मचाये हुए हैं। उनमें द खेल रहे हैं तो कुछ गुल्ली-डण्डा। कुछ आँख-मिचउवल में मग्न हैं तो र-सिपाही' बने दौड़ रहे हैं। घरों में उनके माँ-बाप भविष्य की योजनाएँ हैं।

मुन की तबीयत कुछ ठीक हो गयी है। वह मतीन से बतिया रही है। धी के बारे में, लड़के के बारे में, कपड़े-लत्ते के बारे में। बातें-ही-बातें हैं।

क बनवा क नउवाँ लिखाय दो एनापारी।"

महूँ सोचीत। दिनवाँ-भर खेलत रहेते।"

है कमरुनिया क लड़का बिगाड़ेते ओके।"

न पढ़िये का ?

जानी पढ़िये कि नाँही ! कहत त रही कमरुनिया की संझावाले मनरसा में

नी-झीनी बीनी चदरिया

नोंच लिखाएँगे। दिनवाँ में बिनकारी सिखिए। दिन-रात ओका धियान पढ़सवे मे रहेते। तोरा कागज क का भोवा।"

"तैं का करवे जान के ? होइ न ! अभइँ अउर रुपिया चइए।"

अलीमुन चुप हो जाती है।

मतीन भी चुप हो जाता है।

रुपया कहाँ से लायेंगे लोग ? जो लोग बानी पर बिनते हैं उन्हें मजदूरी इतनी कम मिलती है कि हफ़्ते का खर्च चलाना ही मुश्किल हो जाता है। जो लोग अपना माल खरीदकर बिनते हैं उनके ऊपर कतान और कलाबत्तू का कर्जा इतना होता है कि इधर से आया और उधर गया। गिरस्ता के घर जाकर मजूरी पर बिनने-वालों की हालत तो और भी खराब है। किसी भी मामूली बुनकर के लिए एक सौ दो रुपये का इन्तजाम करना मुश्किल है। फिर ए. डी. आई. के लिए भी तो कुछ चाहिए। वह कहाँ से आयेगा ?

मतीन की इच्छा है कि इकबाल को वह अंग्रेजी स्कूल में पढ़ायेगा। लतीफ तो अपने लड़के को मदरसे में भेजनेवाला है। मदरसे में पढ़ाकर क्या होगा ? क्या मोलवी बनाना है उसे, कि लड़का दाढ़ी बढ़ाकर चटाई बँधना लिये इस मस्जिद से उस मस्जिद तक घूमता रहे जिन्दगी-भर। नहीं। इस साल वह इकबाल का नाम अंसारी स्कूल के प्राइमरी सेक्शन में जरूर लिखवा देगा। इकबाल से वह बिनकारी थोड़े न करायेगा।

यह अजीब इत्तफाक है कि जिस वक्त मतीन अपने लड़के की तालीम के बारे में सोच रहा था, उस वक्त लतीफ भी वही सब सोच रहा था।

लतीफ की इच्छा है कि शरीफ को मदरसे में दाखिल करायेगा। अरे अंग्रेजी स्कूल में पढ़कर क्या करेगा ? कौन उसे नौकरी करनी है ! करना तो वही अपना ही काम है। थोड़ा और बड़ा हो जाय तो पेटी लेकर गोलघर[1] जाने लायक हो जायेगा।

फिर मदरसे में पढ़ने से कई फ़ायदे हैं। एक तो यह कि दिन में खाली रहेगा और बिनकारी मे मदद करेगा। मतीन की तरह थोड़े न उसे भूखों मरना है। अपना करघा है। लड़का भी अगर मदद करेगा तो ज्यादा काम होगा। फिर जैसा कि मतीन कह रहा है, अगर लोन का रुपया मिल गया तो एक करघा और गाड़ लेगा। इसके अलावा लड़का अपने दीन-मजहब की बातें सीखेगा, कुरान-हदीस पढ़ लेगा, यह क्या कम फ़ायदा है ?

अभी ये लोग अपने-अपने घरों मे बैठे अपने-अपने लड़कों के भविष्य के बारे में सोच

1. बनारसी साड़ियों का मार्किट।

हो रहे थे कि हनिफवा जमील को लेकर आ धमका। पहले वह लतीफ के घर गया, फिर मतीन के। वह बाहर गली में से ही बुरी-बुरी गालियाँ बकने लगा और कहने लगा कि इन दोनों भोंसड़ियावालों के लड़कों ने मिलकर मेरे लड़के को मारा है, मैं इसका बदला लेकर रहूँगा।

इस पर जब लतीफ ने भी जवाबी गालियाँ देनी शुरू कर दीं तो वहाँ से तो हनीफ घबराकर भाग खड़ा हुआ, पर मतीन ने चाहा कि उसे सीधे से समझा दिया जाय तो वह और बमक गया। बीच में अलीमुन को भी बोलना पड़ा, तब जाकर वह शान्त हुआ।

हनीफ जब चला गया तो उधर लतीफ ने शरीफ को दो थप्पड़ लगाये और इधर मतीन ने इकबाल को एक घूँसा जमाया, कि ऐसे बुरचोदीवालों से क्यों लगते हो?

इस पर उधर कमरुन लतीफ पर बमक उठी तो इधर अलीमुन मतीन पर।

अलीमुन को फिर खाँसी आ गयी।

खाँसी के साथ खून।

मतीन खून देखकर थर्रा उठा।

डॉक्टर अंसारी इस वक्त मिलेंगे या नहीं? वह थोड़ी देर तक सोचता रहा, फिर कमीज पहनकर बाहर निकल गया।

10

लतीफ अपने बड़े बेटे शरीफ को बिनकारी सिखा रहा है। शरीफ की उम्र लगभग दस साल है। उससे छोटा एक और लड़का है जो अभी नंगा रहता है। शरिफवा लुंगी पहनता है। मुहल्ले में ऐसे चार-चार साल के लड़के भी लुंगी पहनते हैं। इनकी नाप की नन्ही-नन्ही लुंगियाँ यहाँ दालमण्डी की दूकानों में मिल जाती हैं।

बड़ी लड़की कमरुननिया नरी[1] भर रही है। घर के हर फ़र्द को कुछ-न-कुछ काम करना पड़ता है। बैठने से काम नहीं चलने का। शरिफवा को ढंग आ जाय तो एक दूसरा करघा गाड़ लिया जायेगा। खिलवाड़ी है, वरना इतने-इतने लड़के तो लगन से रेजा बनाने लगते हैं।

---

1. बिनकारी का एक यन्त्र, जिसमें धागा भरा जाता है।

शरिफवा इस ताक में रहता है कि बाप इधर-उधर हटे तो कन्नी काटकर सरक जाय। उसके दोस्त कब्रस्तान में इन्तजार करते होंगे। लतिफवा वैसे तो हटता नहीं, पर पान-वान की तलब लगती है तो हटना पड़ता है। बिना नसा-पानी के काम होता नहीं।

लतिफवा हटा कि शरिफवा बाहर।

शरिफवा की टेंट में आज पैसे हैं। माँ से झटका है। वह एक दुकान में बैठकर चाय पीता है और बाहर निकलकर पान की दूकान पर खड़ा हो जाता है। लोग उसे हैरत की निगाह से देखते हैं। इतना छोटा-सा लड़का पान खायेगा!

लेकिन वह किसी की परवाह नहीं करता। नशे की उसकी भी आदत पड़ गयी है। पान के साथ चुटकी-भर घुली हुई सुर्ती फाँककर चूना चाटता हुआ वह कब्रस्तान की ओर निकल जाता है।

कब्रस्तान में एक ओर ताने फैले हुए हैं और दूसरी ओर लड़के क्रिकेट खेलने की तैयारी कर रहे हैं। जब से पाकिस्तान ने भारत को हराया है तब से यहाँ का हर लड़का इमरान खाँ बनने का ख्वाब देख रहा है। विपक्ष में एक नहीं, कई-कई गावस्कर हैं।

शरिफवा बहुत तेज 'बाली' मारता है।

कुएँ के पास ईंट-पर-ईंट जोड़कर स्टम्प खड़ा किया गया है और उसी के पास एक लड़का बाँस का बैट लिये खड़ा है। स्टम्प के सामने एक मरियल-सा लड़का विकेट कीपर बना झुका हुआ है। गेंद को वह टाँग फैलाकर अपनी लुंगी में रोक लेता है। शरिफवा लुंगी पहने, पतले-पतले होंठो में पान की पीक भरे, कपड़े का गेंद लिये दौड़ा-दौड़ा आता है और हुमचकर बालिंग करता है।

"बउवा।"

लड़के चीखते हैं और मैच जोर पकड़ लेता है। आज हिन्दुस्तान झंटहियोंवाले को हरा के रहना है!

उधर लतीफ जब घर पहुँचता है तो देखता है, करघा सूना पड़ा है। ढरकी खामोश है। शरिफवा गायब है।

वह बीवी पर उखड़ जाता है। इसी हरामजादी के चलते लड़का बिगड़ रहा है। आवारा हो जायेगा, और कुछ नहीं। देखती नहीं, मतिनवा का लउँडा किस तरह दिन-भर घर में बना रहता है।

लतीफ शरीफ को ढूँढ़ने निकल जाता है। पहले वह मतीन के यहाँ पहुँचकर इकबाल से पूछता है, फिर हनीफ के घर जाता है, फिर अल्ताफ के घर। हालाँकि अल्ताफ का लड़का तो अभी खेलने लायक हुआ भी नहीं। फिर भी। मन्सा है कि

पानी हेरानी है तो लोग उसे सुराही में भी ढूंढ़ते हैं।

लतीफ हैरान हो जाता है।

संझा करीब है। सर्दी भी बढ़ने लगी है। दिया-बत्ती का टैम अउर इ लवँडा है कि बुरचोदीवाला पता नहीं कहाँ चला गया?

वह सड़क पर खड़ा अभी कुछ तय ही कर रहा था कि एक ओर से समिउल्ला अपने लवँडे को डाँटते हुए निकल आया जो सड़क के खम्बे पर एक लड़की का झोंटा पकड़कर उसे खम्बे से हटा रहा था।

"काहे रिंधी' करेले रे?"

वह अपने लड़के को डपटता है और लतिफवा को सूचना देता है कि उसका लवँडा कब्रस्तान में मैच खेल रहा है।

लतिफवा लुंगी का टोंका उठाकर तेज-तेज कदमों से कब्रस्तान की ओर चल देता है।

थोड़ा नजदीक पहुँचने पर वह देखता है कि कब्रस्तान में खेल तो नहीं हो रहा है, हाँ कुछ लड़के एक जगह जमा हैं और चिल्ला-चिल्लाकर बातें कर रहे हैं—

"जब कैच हो गोवा त अउट नाहीं हो गोवा बे?"

"बुरचोदी के हट, चनेंन अउट करे के!"

"एक री बहिन क···छोड़ बे कि नाहीं बे?" इस बीच एक लड़का किसी के हाथ से बैट छीन लेता है और शुरू हो जाता है युद्ध! छीना-झपटी, मार-पीट। देखते-ही-देखते हिन्दुस्तान-पाकिस्तान में बुरी तरह भिड़न्त हो जाती है!

लतीफ अपनी लुंगी फटकारता हुआ तेजी के साथ वहाँ पहुँचता है और अपने लवँडे को एक थप्पड़ जमा देता है। शरिफवा का चेंचुरा पकड़ के वह उसे कब्रस्तान से बाहर ले आता है।

युद्ध शान्त हो जाता है।

घर आकर शरिफवा फिर करघे पर बैठ जाता है, लेकिन लतीफ उसे उठा देता है। आज मदरसे में उसका दाखिला वह जरूर करा देगा।

बनारस में चारों ओर मदरसे-ही-मदरसे हैं। मन्दिरों, मस्जिदों, घाटों और मदरसों का ही शहर है यह। कोई मतलउल उलूम है, तो कोई मजहरूल उलूम। कोई मदरसा फ़ारूक़िया है तो कोई हमीदिया। अरबी माध्यम से एक छोटी-मोटी जामिया (यूनिवर्सिटी) भी अब यहाँ खुल गयी है। कुछ दिनों पहले तक वहाँ दो प्रोफेसर अरब के भी थे। पर अचानक एक रोज रात में एक प्रोफेसर साहब के घर

---

1. झगड़ा।

में कुछ भारतीय लुटेरों ने ऐसा धावा बोला कि दोनों ने ही यह मुल्क छोड़ दिया।

मदनपुरा के एक मदरसे में दो कमेटियाँ हो गयी हैं और दोनों कमेटियों का दावा है कि मदरसे पर हमारा अधिकार है। नतीजा यह निकल रहा है कि मदरसा बन्द है। दोनों मैनेजर मुकदमा लड़ रहे हैं और उस्ताद लोग सड़क पर हैं। लड़कियोंवाले सेक्शन की उस्तानियाँ अपने-अपने घरों में स्वेटर बुन रही हैं। सिर्फ़ एक उस्ताद हैं ग़फ़्फ़ार ख़ाँ, जो मुकदमा लड़ रहे हैं। वे दोनों मैनेजरों की पैरवी एक साथ कर रहे हैं। जिधर से ज्यादा पैसा मिलता है, उधर ही उनकी पैरवी ज्यादा झुक जाती है।

अरबी मदरसों की निदेशिका हैं—श्रीमती ज़ोहरा रिज़वी, जो इलाहाबाद में रहती हैं और गुलाबों की शौकीन हैं। यहाँ बनारस में जो डिप्टी साहब हैं उनकी बीवी बनारसी साड़ियों की शौकीन हैं। अतः ग़फ़्फ़ार ख़ाँ ज़ोहरा रिज़वी को खुश करने के लिए तरह-तरह के गुलाबों की डालियाँ पेश करते हैं और मैनेजर लोग डिप्टी साहब को खुश करने के लिए उनकी बीवी के वास्ते तंछई और जरी की साड़ियाँ पेश करते हैं। मदरसा फैसले के इन्तजार में है।

लेकिन खोजित कुआँ की मस्जिद में जो मदरसा चलता है वह इस प्रकार के झगड़ों से मुक्त है। लतीफ अपने बचपन में इसी मदरसे में जाया करता था। बाप चाहते थे कि हाफ़िज़ा कर ले, लेकिन कहाँ कर सका? अब बेटे को करायेगा।

शरीफ को लेकर लतीफ जब खोजित कुआँ की मस्जिद में दाखिल हुआ तो मग़रिब की नमाज़ ख़त्म हो चुकी थी और नमाज़ी लोग जा चुके थे। मस्जिद में जो मदरसे का क्षेत्र था उसके बरामदों में, सहन में और सीढ़ियों के नीचे तुल्बा[1] अपनी-अपनी उर्दू-अरबी की किताबें खोले, तख्तियाँ रगड़ते और किरिच की कलम काटते बैठे थे और उस्ताद लोग दरी के छोटे-छोटे टुकड़ों पर बैठे आगे रखी हुई धब्बेदार डेस्कों पर झुके मदरसे के रजिस्टर ठीक करने में व्यस्त थे।

हेड मास्टर साहब ऊपर थे। लतीफ जब ऊपर पहुँचा तो यह देखकर आश्चर्य-चकित हो गया कि वहाँ छत पर एक ओर मतीन खड़ा था और मदरसे के एक उस्ताद से बतिया रहा था। यह तो कह रहा था कि अपने लड़के को अंसारी स्कूल में दाखिल करायेगा, यहाँ कैसे आ गया?

"सलाँवाले कुम।"

पास पहुँचकर लतीफ ने सलामी दागी तो मतीन चौंक पड़ा।

"का म्याँ तूँ एहर कइसे?"

---

1. विद्यार्थी (बहुवचन में)।

लतीफ ने बात शुरू की तो मतीन ने सारी स्थिति स्पष्ट कर दी। जिस उस्ताद के साथ वह बातें कर रहा था उसका नाम नसीम था और वह भी दिन में चानो पर बिना करता था। चूंकि उसने फाजिल की डिग्री हासिल कर रखी थी इसलिए उसे यहां मुदर्रसी मिल गयी थी। वह बेहद परेशान था। मतीन उससे भी सोसाइटी के बारे में बात कर रहा था और वह मेम्बर बनने के लिए तैयार हो गया था।

लतीफ ने सारी बात जब साफ कर ली तो शरीफ को लेकर हेड मास्टर के कमरे की ओर चला गया। मतीन वहीं खड़ा रहा, हालांकि छत पर अब काफी ओस पड़ने लगी थी।

11

हाजी अमीरुल्ला अभी-अभी रथपाश से लौटे हैं। बैंक गये थे।

हाजी मिनिस्टर अपने कारीगर बशीर से उसके मकान के बारे में बात कर रहे हैं। वे सलाह दे रहे हैं कि इस मकान को बेच दो। बशीर का मकान हाजी अमीरुल्ला के मकान से सटा हुआ है। मकान क्या है, बस एक कमरा नीचे और एक कमरा ऊपर। ऊपरवाला हिस्सा खपरैली है, जिसके आगे एक छोटा-सा दालान है। उसी में अपनी तीन लड़कियों और दो लड़कों के साथ वे मियां-बीवी रहते हैं।

बशीर हाजी अमीरुल्ला के घर आकर उनके करघे पर बिनते हैं। बूढ़े हो गये हैं, पर कारीगरी में ज़रा भी जर्ब नहीं आया है। कितना ही मुश्किल डिजाइन हो, वे बिनकर रख देंगे। भले पन्द्रह दिन लग जायें। बल्कि होता करीब-करीब यही है कि बहुत मुश्किल डिजाइन का नक्शा उन्हें ही दिया जाता है, जिसे बिनने में अक्सर बारह-पन्द्रह दिन लग जाते हैं। मजूरी जरूर कुछ ज्यादा मिलती है, पर ज्यादा भी क्या, यही पन्द्रह-बीस रुपयों का फ़र्क पड़ता है। फिर भी पन्द्रह-सोलह रुपये रोज से ज्यादा नहीं पड़ता। किसी तरह गाड़ी खींच रहे हैं। बस यों समझ लीजिए कि सुबह नाश्ता नहीं बनता। रात की बची हुई रोटियां चाय में डुबोकर खा लेते हैं और काम पर हाजिर। दोपहर में वही दाल-रोटी। किसी-किसी दिन भैंस का गोश्त और हफ्ते में किसी एक दिन चावल। उसी में रोग-बीमारी का इलाज भी।

हाजी मिनिस्टर चाहते हैं कि बशीर अपना मकान उनके हाथ बेच दें। बदले में वे चाहेंगे तो बगीचे के पास कहीं जमीन दिलवा देंगे।

बशीर खामोश हैं।

हाजी अमीरुल्ला आते हैं तो बशीर को और लालच देते हैं। जब लालच देने पर भी वे खामोश रहते हैं तो खुद भी खामोश हो जाते हैं और बशीर को जाने के लिए कह देते हैं।

बशीर के जाने के बाद हाजी अमीरुल्ला थोड़ी देर तक गुमसुम बने रहते हैं। फिर अचानक ही मुस्करा उठते हैं। हाजी साहब मुस्कराते हैं तो उनके होंठ थोड़ा फैल जाते हैं और फिर तुरन्त ही सिकुड़ जाते हैं। वे उन्ही सिकुड़े हुए होंठों के बीच कुछ बुदबुदाते हैं और फिर मानो स्वयं ही आश्वस्त होकर किसी अन्य समस्या पर विचार करने लगते हैं।

बुनकर अस्पताल को बने हुए कई बरस हो गये। उस वक़्त जो चन्दा-वन्दा मिला था, सब लेन्दे बराबर हो गया। अब कोई ख़ास आमदनी नही है। हालांकि डाक्टरों को तनख्वाह देनी नहीं पड़ती, बिरादरी के दो-तीन डाक्टर फ्री मे आकर दो घण्टे बैठ जाते हैं। सिर्फ गैर बिरादरी के डाक्टरों को और अन्य कर्मचारियों को ही कुछ देना पड़ता है। लेकिन यह सारा काम एक पूरी कमेटी करती है, अतः कोई खास गुंजाइश उसमें नहीं रहती। कमेटी का जो सेक्रेटरी है वह खुद भी डाक्टर है और बड़ा काँइयाँ आदमी है। इससे पहले वह अंसारी स्कूल की कमेटी का सेक्रेटरी भी रह चुका है और मास्टरों को परेशान कर चुका है। उसके काँइयेपन के कारण ही अस्पताल में कुछ नही हो पा रहा है।

हाजी साहब चाहते हैं कि अस्पताल की इमारत में वृद्धि हो। पिछली बार जब यतीमखाना बनवाया गया था तो कई हजार का फायदा एकमुश्त हुआ था। आज भी यतीमखाने मे बकरीद की कुरबानियों की जो खालें आती हैं उनसे हजारों का फायदा होता है। वाकई अल्लाह जिसे न नवाज़ दे। मदरसे की भी यही हालत है। 'मदरसा इस्लामिया' के कर्ता-धर्ता हाजी अमीरुल्ला ही हैं। वहाँ एक क्लर्क हैं—मुहम्मद इस्लाम। मदरसे का सारा कारोबार वही देखते हैं। हेडमास्टर को भी मुहम्मद इस्लाम से दबना होता है। मुहम्मद इस्लाम का एक लड़का डी. ए. वी. स्कूल में बी. ए. कर रहा है। इस साल से मदरसे मे उसकी नियुक्ति भी कर ली गयी है। हाजी साहब किसी की शिकायत पर ध्यान नही देते। उन्हें फायदे से मतलब है और यह फायदा मुहम्मद इस्लाम क्लर्क के जरिये ही उन्हें हो सकता है।

इसी तरह अस्पताल में भी उन्होंने एक मुंशी रक्खे हुए हैं, जो फायदे के कामों का पिलान (प्लान) तैयार करते हैं और पूरे अस्पताल की आर्थिक स्थिति का ब्यौरा ठीक करते हैं। मुंशीजी का नाम है—सुल्तान वकील। दरअस्ल सुल्तान

साहब वलीग, (अलीगढ़ यूनिवर्सिटी) से एम. ए., एल. एल. बी. हैं और पिछले दिनों कचहरी में प्रैक्टिस कर रहे थे। पर वकालत जब नहीं चली तो हाजी मतिउल्ला गिरस्त ने सोर्स लगाकर बुनकर हॉस्पिटल के मुंशी हो गये।

मुंशीजी ने राय दी है कि अस्पताल में मरीजों के लिए कुछ नये वार्ड बनवा दिये जायें। हाजी अमीरुल्ला उसी मुद्दे पर आजकल सोच रहे हैं।

अचानक हाजी साहब ने तय किया कि इस नेक काम की शुरुआत आज ही क्यों न कर दी जाय और आवाज देकर उन्होंने फौरन ही हाजी मिनिस्टर व हबीबुल्ला को अपने पास बुलाया। पीछे-पीछे मुंशीजी भी दुबके हुए-से आकर खड़े हो गये।

"अब अस्पतालवाला काम शुरू कर दो म्यां।"

हाजी साहब ने मुंशीजी को इशारा किया और झट से मुंशीजी ने सलाह दी कि इसके बारे में पहले एक पम्फलेट छपवाकर इलाके-भर में बँटवा देना चाहिए।

"त बनावो न म्यां, देर काहे की?"

"हबीबुल्ला! तुं ही काहे नांइ बनउ तो म्यां?"

और हबीबुल्ला प्रचार का मजमून बनाने लगे—

786

बुनकर अस्पताल, वारानसी

मुकर्रमी। सलाम मसनून!

बुनकर अस्पताल बनारस किसी तआरुफ़ का मुहताज नहीं है। अपनी ख़िदमात से इसने जो नाम पैदा किया है उस पर हम सबको फ़ख्र है।

मरीजों की तादाद रोज-बरोज बढ़ती जा रही है, मगर वार्डों में गुंजाइश न होने से निदामत व अफ़सोस के साथ मरीजों को वापस करना पड़ता है। इस मुश्किल का हल मजलिसे इंतज़ामिया (प्रबन्ध समिति) ने मरकज़ी इमारत के बालाई हिस्से पर तीन बड़े जनाना वार्डों के साथ एक वसीअ (बड़ा) लेबर रूम की तामीर का मंसूबा बनाया है।

हम बड़ी मसर्रत के साथ यह एलान करते हैं कि तौसीअ-इमारत के सिलसिले में आली जनाब वाइस चांसलर साहब, उस्मानिया यूनिवर्सिटी हैदराबाद तशरीफ़ ला रहे हैं। उन्हीं के मुबारक हाथों से तौसीअ तामीर की ईंट रखी जायेगी और यह प्रोग्राम तीन रोज का होगा। उम्मीद है कि आप इस सहरोजा (त्रिदिवसीय) प्रोग्राम में हस्ब साबिक़ (यथासाध्य) तामीर के मंसूबा की तकमील में तआवुन फ़रमायेंगे।

आपकी मिल्ली ग़ैरत (राष्ट्रीय भावना) और दीनी हमीयत (धर्म-भावना) से उम्मीद है कि ईसारो-इत्तेफ़ाक़ (त्याग और एकता) का शानदार मुज़ाहरा फरमायेंगे, ताकि बीमार और दर्द से कराहते मरीज़ मुस्कराकर आपको दुआओं से याद करें।

नोट : औरतों के लिए बाद नमाज़ मग़रिब से आठ बजे रात तक का वक़्त है।

हाजी मतिउल्ला
हाजी अमीरुल्ला
हाजी मिनिस्टर
हबीबुल्ला

"ख़ूब मक़िया हो गोवा म्याँ!"

हाजी मिनिस्टर हबीबुल्ला को दाद देते हैं और पर्चा 'कौमी एकता' प्रेस में भेज दिया जाता है। इसी प्रेस से 'कौमी एकता' नामक उर्दू-अख़बार भी निकलता है जिसका सम्पादन शहर उत्तरी के एम. एल. ए. श्री अल्ताफुर्रहमान अंसारी करते हैं।

12

दोपहर ढल रही है। धूप में कुछ तेज़ी है। अलीमुन फर्श पर बैठी कतान सुलझा रही है।

इकबलवा कहीं से खेलकर आया है और खाना माँग रहा है।

"पलीता में का भरे है रे? निकाल ओके।"

अलीमुन उसकी फूली हुई जेब को देखकर डाँटती है तो इकबाल अपनी जेब से गोलियाँ निकालकर ताक पर रख देता है और फिर खाना माँगता है।

"ज चूल्हीदुआर में खा ले। डरवा[1] में रोटी होइए। अउर मलसी[2] में तरकारी होइए। पनेट में तसला निकाल लेवे अउर ढप्पन से ढाँक देवे। अभी तोरे अब्बा आवत होइएँ।"

---

1. रोटी रखने की टोकरी।
2. कटोरे के आकार का पात्र।

अलीमुन उसे खाने के लिए सहेजती है और चर्खा उठाकर कतान फेरने में व्यस्त हो जाती है।

मतीन सुबह से निकला है। अभी तक लौटा नहीं। इन्हें भी न जाने क्या नशा सवार हुआ है कि पूरे शहर-भर का ठेका लेकर घूम रहे हैं। अरे जैसे सब अपना काम कर रहे हैं तूं भी करो। क्या लेना-लादना है? हमेशा से जो होता आया है वही न होगा, कि अल्ला मियाँ का निजाम तूं बदल दोगे? अरे जो गरीब है वह गरीब ही रहेगा, चाहे लाख कोशिश करो। अल्ला मियाँ ने जिसे अमीर बना दिया है वह अमीर ही रहेगा। लोन लेने से थोड़े गरीबी मिट जायेगी। अरे फकीरी और बादशाहत सब खुदा की देन है!

अलीमुन सोच रही है।

कई दिन से काम पर नहीं बैठ रहे हैं। खाने-पीने की फिकिर भी नहीं है। बस हाथ-धुन वही सोसायटी। सोसायटी न हुई, बिटिया की शादी हो गयी कि रात-दिन इन्तजाम में लगे हुए हैं। अरे मिलेगा रुपया तो सबको मिलेगा, न कि तुंहें अकेले ही सब मिल जायगा? और लोग तो हर्जा नहीं कर रहे हैं अपने काम का। अरे सब लोग इतने बेकूफ थोड़े हैं। देखते नहीं कि घर की क्या हालत है? बीमारी का इलाज करना है। दक्खिनवाली दीवार की मरम्मत करानी है। इकबाल की खुजली तो ठीक हो गयी है, पर कमजोरी इतनी है कि जरा-सा भी दौड़कर चलता है तो गिर पड़ता है। उसे भी डॉक्टर अंसारी को दिखाना है। धीरे-धीरे साल-भर हो गया। पिछले जाड़े से लेकर इस साल का जाड़ा भी बीत गया, पर एक सूटर तक नहीं बना तन के लिए। ई सबकी फिकिर नहीं करेंगे, बस सोसायटी बनायेंगे। सोसायटी क्या हमें खाने को दे देगी?

तभी अचानक सीढ़ियों पर खट-खट की आवाज होती है और अलीमुन चौंक जाती है। लगता है आ गये। लेकिन नहीं, बशीर की बीवी है। अमिनवा। ऊपर आते ही उसने नकाब उतार लिया है और अलीमुन के पास बैठ गयी है। गोद के बच्चे को उतार दिया है, जिसे लेकर इकबाल नीचे चला गया है।

आमिना और अलीमुन में खुसुर-फुसुर बातें शुरू हो गयी हैं।

कभी दोनों स्त्रियाँ सामने की ओर झुककर एक-दूसरे से एकदम सट जाती हैं और कभी किसी बात पर वे बारी-बारी से दुखी हो उठती हैं। बीच में एकाध बार आमिना बाहर की ओर भी झाँक लेती है और इस मौक़े का फ़ायदा 'उठाकर अलीमुन उसके चेहरे को गौर के साथ देख लेती है।

अचानक सीढ़ियों पर आवाज होती है और अलीमुन सतर्क हो जाती है। लगता है, इकबलवा के अब्बा आ गये। लेकिन पल-भर बाद वह देखती है, फिर कमरुन अपने नकाब का पल्ला सँभालती हुई थके हुए कदमों से चली आ रही है।

अमिनवा की फुसफुसाहट बन्द हो जाती है।

"बइठो हो।"

अलीमुन कहती है तो लतीफ की बीवी दरवाजे पर खड़ी-खड़ी ही इनकार कर देती है। दरअसल वह समझ जाती है कि ये कोई खास बात करने में मशगूल हैं।

"नाँहीं बइठबा नाँही।"

"बा हो तइसा बइठ्यो भी नाँही? अरे तइसा बइठ जाओ। कहाँ गयी रहिउ?"

"गयी रहे अपनी अम्माँ कि यें।"

लतीफ की बीवी अनमने ढंग से जवाब देती है और उलटकर सीढ़ियाँ उतरने लगती है। साथ ही बतियाती भी जाती है; "अच्छा अब हम जाइला हो, फिर कब्बो फुचित में अइबा त फुचित में बतियइबा।"

"अच्छा त अइयो, देखा भुला मत जइयो।"

"नाँही, भुलइबा नाँही।"

और कमरुन अपना नकाब सँभालती हुई सीढ़ियाँ उतर जाती है।

अमिनवा फिर खुसुर-फुसुर बतियाने लगती है। अलीमुन यह सुनकर चिन्तित हो जाती है कि हाजी अमीरुल्ला जबरन उनका मकान खरीदना चाहते हैं। इसके लिए बशीर पर चारों ओर से दबाव पड़ रहा है।

अमिनवा रुआँसी हो जाती है।

तभी इकबाल दौड़ा-दौड़ा ऊपर आता है और चिल्लाता है, "अम्माँ रे बउवा दुआरे हग्गेते!"

और अमिनवा झट से उठकर सीढ़ियाँ उतर जाती है। अलीमुन भी उसके बच्चे की टट्टी धुलाने के लिए पीछे-पीछे पानी लेकर नीचे उतरती है और दरवाज़े पर खड़ी हो जाती है।

इकबलवा के अब्बा अभी तक नहीं आये। क जनी[1] कहाँ रह गये?

होली सकुशल बीत गयी है। इस पर्व पर कुशलता-अकुशलता का सवाल इसलिए बना रहता है कि कहीं कोई बालक भूल से किसी मियाँ भाई पर रंग न डाल दे।

1. न जाने।

हालांकि होली के एक रोज़ पहले मतीन जब विसेसरगंज से गेहूँ खरीदकर लौट रहा था तो रास्ते में कहीं हल्के लाल रंग की पिचकारी कुर्ते की आस्तीन पर पड़ गयी थी, लेकिन वह कुछ नहीं बोला था। रंग ही तो है, कोई मैला तो है नहीं !

वैसे इतनी-सी बात को लेकर भी बवाल खड़ा हो सकता था, जोकि इस साल नहीं हुआ।

होली के बाद मौसम में एक ख़ास तरह् की रंगीनी आ गयी थी और लोग खुश थे।

चन्दन शहीद का मेला शुरू हो गया है। यह मेला हर साल चैत महीने के प्रत्येक बृहस्पतिवार को लगता है। गंगा और वरुणा के संगम पर एक मजार है जो चन्दन शहीद के नाम से मशहूर है। हिन्दुस्तान के मुसलमानों को इस बात का श्रेय मिलना चाहिए कि उन्होंने इस देश की धरती में ढेरों शहीद खोज निकाले है, जो प्रायः हर बृहस्पतिवार के रोज़ अपनी शक्ति का परिचय जनता को दिया करते हैं। उनमें एक चन्दन शहीद भी हैं।

बसन्त कालेज के भीतर से चलकर, ढाल उतरते ही बायीं ओर मुड़ जाइए तो चन्द पेड़ों के झुरमुट में एक मस्जिद दिखायी पड़ेगी। चन्दन शहीद का मजार उसी मस्जिद के पास है। वैसे तो हर बृहस्पतिवार को यहाँ भीड़ होती है और बारिश के दिनों में तो यह स्थान एक सैरगाह ही बन जाता है, पर इन दिनों यहाँ बुनकरों का मेला लगा हुआ है। मर्द, औरतें, बूढ़े, जवान, बच्चे सभी चन्दन शहीद की ओर भागे जा रहे हैं।

मतीन भी इकबलवा को लेकर मेला जा रहा है। मेले में इकबलवा फिरकी खरीदेगा। मलाई बरफ खायेगा। मतीन माला-फूल लेकर शहीद बाबा के मजार पर फ़ातेहा पढ़ेगा। मन्नत मानेगा। शायद शहीद बाबा की दुआओं से ही सोसायटी बन जाय।

मेले में लतीफ भी है और चचा रऊफ भी। बशीर भी। अल्ताफ भी। हनिफवा भी। समिउल्ला भी। बशीर की लड़कियाँ भी आयी हैं। नजबुनिया भी है। अलीमुन नहीं आयी है।

उधर हाजी मिनिस्टर भी आये हुए हैं। हबीबुल्ला भी। हाजी अमीरुल्ला के समधी हाजी उस्मान भी और होनेवाले समधी हाजी वलिउल्ला भी।

गर्ज़ कि अनईपुर इलाक़े के अधिकांश बुनकर मेले में भरे हुए हैं।

वरुणा की ओर दो कमरे भी बने हुए हैं, जिनमें कुछ औरतें बैठी हुई हैं। वे आराम कर रही हैं। बाहर जगह-जगह चूल्हे जले हुए हैं। गोश्त पक रहा है। भैंस का। अब तो वह भी महँगा हो गया है। पाँच रुपया किलो।

मेले में ऐसे बुनकर भी हैं जिनसे मतीन की गाढ़ी जान-पहचान नहीं है। वह उनसे मिलना चाहता है। बतियाना चाहता है। सोसायटी के बारे में राय करना चाहता है। इसलिए वह इस कदर परेशान है, जैसे मेले में उसका कुछ खो गया हो।

लोग झूला झूल रहे हैं। चाट और क्रीम की पकौड़ियाँ खा रहे हैं। लड़कियों को देख-देखकर ठट्ठा मार रहे हैं'''लेकिन मतीन को कुछ भी नहीं सुहा रहा है। वह भीतर-बाहर दोनों से काफ़ी थका हुआ लग रहा है। उसके बाल बिखरे हुए हैं और ओठों पर पपड़ियाँ जम गयी हैं। कमीज पसीने से तर है और लुंगी गर्द में सनी हुई। सिर्फ़ उसकी आँखें हैं जो एक अजाने दर्द से मानो चमक रही हैं।

"सलामालेकुम !"

"एँ, बच्चा केहर है रे?"

"क जनी, मजरिया के नगिच तो खड़े रहे न !"

नजबुनिया बोलती है और कनखी से मतीन की ओर ताककर मुस्कराती हुई आगे बढ़ जाती है। मतीन की आँखों में थोड़ी देर तक नजबुनिया की आँखों का तीखापन चुभता रहता है, फिर अचानक ही वह गायब हो जाता है। सामने से जो आदमी मलाई बरफ चूसता हुआ चला आ रहा था, वह मतीन के सामने आकर खड़ा हो जाता है।

"सलामालेकुम !"

"वालेकुम सलाम !"

"हमहूँ मेम्बर बनेंगें। हमरा नाँव है कल्लू, हम बहेलिया टोला मे रही ते।"

वह आदमी मलाई बरफ की सीक फेंकता हुआ अपना परिचय देता है और 'फिर मिलेंगे' कहता हुआ भीड़ में खो जाता है।

मतीन पूर्ववत् खड़ा रहता है। उसकी आँखों में नजबुनिया की आँखें फिर चुभने लगती हैं।

14

हनिफवा की साड़ी आज बढ़िया दाम पर बिक गयी है, इसलिए वह बेहद खुश है। आज ताड़ी नहीं, गोलगड्डा मार्का चलेगा। कभी-कभी ठर्रा चला लेने में वह कोई हर्ज नहीं समझता। हर्ज होगा उनके लिए जो नमाज़-रोज़ा के पाबन्द हों। यहाँ

कौन अल्ला मियाँ से रिश्तेदारी जोड़नी है ? हनिफवा गोलगड्डा[1] की होली[2] में घुसकर बैठ गया।

फिर थोड़ी देर बाद वहाँ से निकलकर उसने एक बढ़िया पान दबाया और उँगली में चूना लिये-लिये ही नक्खीघाट की ओर चल पड़ा। लेकिन थोड़ी दूर चलकर ही उसे हाजी साहब की एक बात याद आ गयी और वह लौट पड़ा। आज उसने बशीर को भी इस तरफ देखा था। सरैया में उसकी लड़की ब्याही है शायद ! हनिफवा का माथा तेज़ी के साथ घूमने लगा···

बशीर गये थे 'बियउवा' लेकर। बड़ी लड़की को लड़का हुआ था ससुराल में। छुहारा-बुहारा पहुँचाकर लौट रहे थे कि गली में कोई चीज उनके सिर पर आकर गिरी और वे मुँह के बल लोट गये। होश आया तो खुद को उन्होंने अपनी कोठरी की जमीन पर पड़ा हुआ पाया। सामने वे लोग खड़े थे, जिन्होंने उन्हें यहाँ तक पहुँचाया था।

चोट काफी थी। अस्पताल ले जाना जरूरी था, पर बीवी सिर्फ़ रोये जा रही थी। लड़कियाँ हाय अब्बा ! हाय अब्बा ! कहकर चिल्लाये जा रही थीं। साथ-साथ किसी अनाम अजनबी शत्रु को गालियाँ भी बके जा रही थीं। पर बशीर का दर्द बढ़ता जा रहा था। आखिर आस-पड़ोस के लोग उन्हें अस्पताल ले गये।

मुंशी सुल्तान वकील ने बशीर को ग़ौर से देखा और भर्ती कर लिया। खून काफी निकल गया था सिर से। आराम की जरूरत थी। लेकिन उस जरूरत को 'बुनकर अस्पताल' फ्री में पूरा नहीं कर सकता था। बुनकरों का अस्पताल होने का मतलब यह नहीं कि बुनकरों का इलाज फ्री में होगा। मुंशीजी ने सारा हिसाब क्षण-भर में समझा दिया। काफी पैसों की जरूरत थी और उसके लिए क़र्ज़ ही एक सहारा था।

लेकिन बशीर की बीवी को क़र्ज़ मिलने में कोई ख़ास दिक्कत नहीं हुई। गिरस्ता लोग ऐसे दिनों के इन्तजार में ही रहते हैं कि कोई असामी क़र्ज़ लेने आये तो कम-से-कम ! क़र्ज़ वसूलने में जो एक ख़ास क़िस्म का मजा है वह किसी और काम में कहाँ ?

सो बशीर की बीवी को क़र्ज़ मिल गया और बशीर का इलाज होने लगा।

दोपहर का वक़्त था। बशीर के घर के सभी लोग अस्पताल में थे। घर में सिर्फ़

1. स्थान का नाम। 2. शराबघर।

रेहनवा थी, हाँड़ी-चूली करने के लिए।

रेहनवा सुबह से काम में लगी थी। थोड़ी देर पहले ही वह अस्पताल में खाना पहुँचाकर लौटी थी। साथ में छोटी बहिन बिबोइया को भी ला रही थी, पर वह नहीं आयी। बाद में अम्मा के साथ आयेगी।

रेहनवा थक गयी थी। वह ऊपर पहुँचकर कमरे के सामने खुले हुए दालान में ही निखरी चारपाई पर लेट गयी और उसे नींद आ गयी।

हाजी अमीरुल्ला का मँझला लड़का शरफुद्दीनवा अपनी खिरकी से बशीर के घर को देख रहा था। यह अगर मिल गया तो अपने लिए इधर ही अंग्रेजी ढंग का मकान बनवायेगा वह, जैसा उसके प्रोफ़ेसर साहब का है। यूनिवर्सिटी में बी. काम. कर रहा है न वह।

अचानक शरफुद्दीन उठा और नीचे उतरकर बाहर चला गया।

बशीर के घर का दरवाज़ा उठंगा हुआ था। वह भीतर दाख़िल हो गया। फिर धीरे-धीरे ऊपर पहुँचा और दालान में खड़ा हो गया।

रेहनवा अक्सर उसे ताका करती है; जब वह खिरकी के पास बैठकर पढ़ा करता है। आज इसके मन की थाह मिल जायेगी।

शरफुद्दीन तेज़ी के साथ सोचने लगा और भीतर-ही-भीतर तनने लगा।

उसके दिमाग़ में यूनिवर्सिटी की अनेक लड़कियाँ और सिनेमा की अनेक अभिनेत्रियाँ घूमने लगीं!

रेहनवा को नींद ने बुरी तरह चपेट लिया था। एक हाथ उसका सिर के नीचे तकिया बना हुआ था और दूसरा हाथ पेट के ऊपर रखा हुआ था जो साँस लेने के साथ-साथ रह-रहकर ऊपर उठता था और फिर नीचे दबता था। नीले साटन की पेरानी[1] में उसकी छोटी-छोटी छातियाँ कुछ ज्यादा ही उभरी हुई दिख रही थीं। इजार[2] का एक पायँचा थोड़ा ऊपर खिसक गया था और उसकी साँवले रंग की पिंडली उघड़ी हुई थी।

शरफुद्दीन आगे बढ़ा और उसने अपना एक पंजा रेहनवा की छाती पर रख दिया।

रेहनवा चौंक उठी।

"के हैं?"

शरफुद्दीन थरथराने लगा।

"एज्जन से चल ज नाँही त अच्छा न होइए!"

रेहनवा ने बेहद नफरत और गुस्से के साथ शरफुद्दीन की ओर देखा तो वह

---

1. समीज, कुर्ता।
2. सलवार।

एकबारगी घबरा गया और झटके से पीछे की ओर मुड़कर जल्दी-जल्दी सीढ़ियाँ उतर गया।

रेहनवा खटिया पर चुपचाप बैठ गयी।

15

हाजी रसीद तीन दिन से अल्ताफ को ढूंढ रहे है। रुपया लेने को होता है तो ये लोग दिन-रात एक कर देते हैं और काम के पारी खेंटहियोवाले··· लड़का बीमार था तो दिन-भर दौड़ते थे कि गिरस्त दे दो पइसा, महिन्ना-भर में उतार देंगे। और अब है कि महीना-भर से काम पर आयी नहीं रहे हैं। लड़का कब का ठीक हो गया। नन्दन शहीद का मेला भी खतम हो गया, मगर लाट साहब का कहीं पता नहीं है।

हाजी रसीद परेशान हैं। एक दिन घर गये तो पता चला, 'मऊ गयेने। संझा तक अइएँ।' शाम को गये तो मालूम हुआ, 'आयेन नाँहीं।' दूसरे दिन भी वही जवाब। आज न मिला तो वे पता लेकर मऊ जायेंगे और भोंसड़ियावाले का दिमाग ठीक करेंगे।

हाजी रसीद तेजी के साथ अल्ताफ के घर की ओर भागे जा रहे हैं, जैसे अपने कारीगर की तलाश में नहीं, बल्कि अपने खोये हुए बैल को ढूंढ़ने के लिए चले जा रहे हैं। उनके पांवों में चपलता है और आंखों में क्रोध। आज मिल जाय अल्तफवा तो बतायें।

सुबह का वक्त था।

अल्ताफ खटिया पर एक मैली-कुचैली तकिया लगाये और पैताने एक बोरे पर पांव फैलाये लेटा था। पेट पर बउवा खेल रहा था। बीवी चाय लेकर आयी तो उसे भी खींचकर बैठा लिया और बउवा से बोला, 'दूध पीबे ?' बउवा ने उसकी बात नहीं समझी तो हबुनी की ओर अर्थभरी नजर से देखते हुए बोला, "तइसा एके आपन दूध खोल के पिया देवे।" और बीवी के दूध की ओर जैसे ही उसने अपना हाथ बढ़ाया, बाहर से हाजी रसीद की आवाज सुनायी पड़ी—

"अल्ताफ ! ए अल्ताफ !"

बुरचोदी के सब मजा किरकिराय गोवा !

"का गिरस्त, सलावाले कुम !"

बउवा को हबुनी की गोद में रखकर वह बाहर निकला और द्वार पर खड़ा हो

गया। जेब से एक बीड़ी निकालकर इस बीच उसने सुलगा ली थी और उसका धुआँ हवा में उड़ा रहा था।

"अभइन पूछे तो का गिरस्त ? काम-धाम होइए के नाँही ?"

"अभइन त बी नाँही करेते गिरस !"

"काहे जो करिए, मऊ में काम मिल गोवा होइए !"

इस पर अल्ताफ खामोश रहा तो हाजी रमीद को और गुस्सा आया, "तूं हमरा पइसा दे दो, हम जाइते।"

"पइसा त नाहिने।"

"काहे नाहिने ?"

"अब नाहिने त नाहिने। मौका मिलिए त आएने, सहिया बिन देने।"

"कब अइमो ?"

"का बताएँ कब आएँ ने ?"

"आखिर ?"

"दू-चार दिन में।"

और हाजी रमीद चले गये।

अल्ताफ की बीड़ी इस बीच बुझ चुकी थी। उसने जैसे ही अद्धी फेंककर दरवाजा बन्द करना चाहा, सामने से मतीन आता हुआ दिखायी पड़ा। रुक गया।

"सलावालेकुम !"

"वालेकुम सलाम, आओ बइठो।"

और मतीन भीतर आ गया। दोनों खटिया पर बैठ गये।

हम्मुन बउवा को गदेला पर लिटाकर चूली-दुआर[1] में घुस गयी।

16

अलीमुन भोर में ही जाग जाती है। वजू करती है। फ़जिर की नमाज़ पढ़ती है और इकबलवा को जगाकर रेशम लेकर बैठ जाती है।

अलीमुन रेशम के धागे सुलझा रही है।

इकबाल उसमें मदद कर रहा है।

मतीन अभी सोया है।

---

1. रसोईघर।

अलीमुन को याद आ रहा है कि जब पहली बार वह ब्याहकर यहाँ आयी थी तो इसी तरह मतीन उसके बालों को अपनी उँगलियों में फँसाकर घण्टों सहलाया करता था। वे भी कैसे अच्छे दिन थे। तब उसे यह बीमारी नहीं लगी थी और उसका चेहरा भरा-भरा था। हालाँकि ब्याह के दस-बारह रोज़ बाद से ही वह छांड़ी-चूली और नर्रा-भरनी के काम में जुट गयी थी, पर मेहनत से उसकी देह में और भी चमक आ गयी थी। उसके बाल तो काले रेशम की तरह ही लगते थे। लेकिन फिर न जाने क्या हुआ कि···

अचानक मतीन जाग जाता है। वह ख्वाब देख रहा था कि सोसायटी बन गयी है और रुपया मिल गया है। वह खुशी-खुशी रथयात्रा से लौटा है और धड़-धड़ाता हुआ ऊपर पहुँच गया है। अलीमुन उसे देखकर हड़बड़ाती हुई सामने आती है तो साड़ी उसकी खटिया के पावा में फँस जाती है और वह गिर पड़ती है। उसके मुँह से फिर खून निकल आता है···मतीन चारपाई पर पड़े-पड़े ही अलीमुन और इकबाल को देखता है। दोनों तल्लीन हैं; जैसे वे कतान नहीं सुलझा रहे, बल्कि कुरान पढ़ रहे हैं।

वह उठकर छत पर निकलता है और पाखाने में घुस जाता है।

'इसकी टिनिया (टीन की छत) भी ठीक करानी है,' वह पाखाने में बैठे-बैठे सोचता है और बाहर निकलकर आता है तो देखता है, नाश्ता तैयार है। बासी रोटी और चाय। वह जल्दी-जल्दी मुँह धोकर नाश्ता करता है और नीचे पहुँचकर करघे पर बैठ जाता है। इधर कई दिनों से काम पर नहीं बैठा तो लग रहा था जैसे मुर्दा हो गया है। करघे पर बैठते ही उसके शरीर में मानो नये प्राण उग आये और वह नये उत्साह के साथ शुरू हो गया।

हल्के गुलाबी रंग के कतान पर वह लाल-हरी सुनहरी बूटियोंवाली एक स्पेशल साड़ी तैयार कर रहा है। हाजी साहब कह रहे थे, आर्डर का है। करघा अपनी पूरी गति में है। पत्ते की डिजाइन ताने पर उतर रही है और 'नौलखा' उसके भार को सँभाले हुए है।

'नौलखा' मिट्टी का या लखौरिया ईंट का गोलाकार पिण्ड होता है जो करघे के बानू में डोरी से लटका रहता है। कहते हैं कि एक बार किसी जुलाहे के घर में चोर घुसे। वे अभी चोरी करके जा ही रहे थे कि जुलाहे की नींद उचट गयी। उसने अपनी पत्नी से कहा, "लगता है, चोर आये हैं। पता नहीं 'नौलखा' बचा या उसे भी ले गये?" और वह फिर सो गया। चोर उसकी बात सुन रहे थे। वे लोग अब 'नौलखा' तलाशने लगे, पर वह कोई जड़ाऊ हार तो था नहीं कि मिले। सुबह हो गयी और चोरों को सारा माल छोड़कर भागना पड़ा।

मतीन के पाँव नीचे चल रहे हैं, हाथ ऊपर चल रहे हैं। पूरा शरीर जैसे संगीत के किसी ताल में निबद्ध होकर लयात्मक हो गया है। ढरकी इस तरह नाच रही है

जैसे जंगल में कोई गिलहरी फुदके।

मतीन बड़ी फुर्ती के साथ पहले हरे रंग का धागा खींचता है और तानी पर हरे रंग की एक लकीर खिंच जाती है। फिर क्रमशः लाल और सुनहरे रंग का धागा वह खींचता है और तानी पर लाल-सुनहरी लकीरें खिंच जाती हैं। देखते-ही-देखते साड़ी पर एक खूबसूरत-सा फूल खिल उठता है।

मतीन थोड़ी देर तक रुकता है और फिर शुरू हो जाता है। करघे से खटाखुट ···खटाखुट···खटाखुट···खटाखुट की आवाज उठने लगती है। पहले धीरे-धीरे, फिर मध्यम से होते हुए पंचम और फिर सप्तम पर पहुँच जाती है। जैसे कोई तबलावादक पहले तबले को ठोंककर कसे, फिर उसकी आवाज आजमाये और फिर गाने के साथ अपनी संगत शुरू कर दे।

साड़ी की बुनावट में रचना और संगीत की लयें इस तरह उभरती हैं कि सर्जक की चेतना एकाग्र होकर शून्य हो जाती है। जैसे धीरे-धीरे कुण्डलिनी उठे और इंगला-पिंगला की राह षट्चक्रों का भेदन करती हुई ब्रह्मरन्ध्र में समाहित हो जाये। पाँव से लेकर मस्तक तक एक ही अनहद नाद गूँजता रहता है।

छन्!

अचानक एक मधुर-सी आवाज से मतीन चौंक उठा। अलीमुन कब आकर वहाँ खड़ी हो गयी थी, उसे मालूम नहीं। वह क्या सोच रहा था?

शायद सोसायटी के बारे में।

नहीं, वह शायद कुछ और सोच रहा था।

शायद इकबाल के भविष्य के बारे में।

नहीं, वह शायद कुछ और सोच रहा था।

"का बात है?"

यह अलीमुन से पूछता है तो अलीमुन कुछ नहीं बोलती। करघे पर बिनी जा रही साड़ी को देखती रहती है।

"का बात है?" मतीन फिर पूछता है तो वह मुस्कराती है और सिर नीचे कर लेती है।

"अबकी इदिया पर ये ही में की मड़िया हम्मैं दिलाय दो!" वह बोलती है और सिर उठाकर मतीन को देखती है।

मतीन, यह दर्शाता हुआ कि उसने अलीमुन की बात सुनी ही नहीं, ऊपर की ओर ताकता रहता है—एकटक!

ऊपर पत्ता है। कागज का वह नक्शा, जिसके आधार पर नीचे साड़ी पर बूटियाँ उगती हैं।

और ऊपर ही आकाश भी है!

सुनते हैं आकाश पर अल्ला मियाँ रहते हैं?

मतीन नक्शे को देखता है या आसमान को, कोई कह नहीं सकता।

"सुनय के नाहीं?"

अलीमुन टोकती है तो मतीन ऊपर से एक धागा खींचता हुआ उसकी ओर देखता है और मुस्कराता है।

"सोसायटी त बन जाय दे, जे ठे साड़ी कहबे दियाय देब।"

और अलीमुन चली जाती है।

मतीन थोड़ी देर तक गुम-सुम बैठा रहता है, फिर अपने काम में लीन हो जाता है।

अचानक दरवाजे पर किसी के आने की आहट होती है और वह झांककर देखता है तो चकित रह जाता है। यह भोला यहां कैसे पहुँच गया?

"आओ बइठो!"

वह वहीं से भोला को बुलाता है और अपने काम में लगा रहता है।

भोला नया-नया आया है बनारस में—काम की तलाश में। दो दिन पहले मतीन से मुलाक़ात हुई तो दोस्ती हो गयी।

कोई दूसरा वक़्त होता तो शायद मतीन कुछ हालचाल पूछता भोला का, लेकिन इस वक़्त उसका मन उदास है। वह काम में लगा हुआ है। काम से उदासी कुछ शान्त होती है।

एक फूल पूरा हो गया है और दूसरे फूल तक पहुँचने के लिए वह एक बित्ता का लाग[1] बिन रहा है।

भोला एक किनारे बैठ जाता है और चुपचाप मतीन का बुनना देखता रहता है।

मतीन बिनता रहता है—जैसे वह लाग नहीं, ज़िन्दगी का अन्तराल बुन रहा हो।

"मतीन भाई, पांव तो तुम्हारा गड्ढे में है और साड़ी पर इतना सुन्दर फूल कैसे बन गया है?"

भोला ने पता नहीं जानकारी के लिए यह सवाल किया या यूं ही चुटकी लेने के लिए, पर मतीन और उदास हो गया। थोड़ी देर तक वह खामोश रहा। फिर बोला, "हां, पांव तो गड्ढे में है, मगर नक्शा ऊपर है। सब उसी ऊपरवाले नक्शे का कमाल है भोला भाई!"

मतीन ऊपर की ओर उंगली उठाते हुए भोला को समझाता है तो भोला

---

1. एक फूल और दूसरे फूल के बीच की सादी ज़मीन।

खामोश हो जाता है। वह करघे के ऊपर टँगे हुए पत्ते को नहीं बल्कि छत को एक नज़र देखता है और आँख नीचे कर लेता है।

मतीन उसी तरह अपना ताग बिनता रहता है।

17

सूरज अभी नहीं निकला है।

नजबुनिया नगोल[1] पर खड़ी बाल सँवार रही है। अभी-अभी नहाकर ऊपर चढ़ी है। पाँच दिन तक नापाक बनी रही। 'यह महीना-वहीना का झंझट भी बहुत बुरा है,' वह सोचती है और पता नहीं क्यों उसे हँसी आ जाती है। वह अपने आपमें ही मुस्कराती है।

मतीन आजकल नहीं आ रहा है। लगता है भउजी की तबीयत ज्यादा बिगड़ गयी है, वह सोचती है और इस कोने से टहलती हुई उस कोने तक चली जाती है।

नजबुनिया चलती है तो ऐसा लगता है मानो कोई मोरनी टहल रही है।

वह अचानक अपनी पेशानी के ऊपर से अपनी छातियों पर हाथ फेरती है और अपना दुपट्टा ठीक करती हुई फिर कंघी करने लगती है।

कंघी के दाँतों में उसे एक जूँ फँसी हुई दिख जाती है तो बड़ी बारीकी से उस जूँ को निकाल लेती है और अपने एक अँगूठे के नाखून पर उसे रखकर दूसरे अँगूठे के नाखून से पुट् से मार देती है।

नजबुनिया फिर मुस्कराती है।

तब तक अम्मा बावर्चीखाने में चीखने लगती है और वह पलटकर धड़धड़ाती हुई नीचे उतर जाती है।

छत पर उसकी उपस्थिति के अमूर्त चिह्न कागज की राख की तरह बिखर जाते हैं।

नीचे मतीन बैठा है।

नजबुनिया को देखकर वह मुस्कराता है और नजबुनिया उसे खिराती हुई एक

---

1. छत।

ओर जाकर बिना वजह ही किसी काम में लग जाती है।

थोड़ी देर में रऊफ चचा भी वहीं आ जाते हैं और मतीन अपने आने का मकसद कह सुनाता है, "दसखत त सब हो गोवा है, पर पइसवे नांहीं मिल रहा है।"

"उहो हो जइए, घबराव नहीं।" रऊफ चचा उसे ढांढ़स बंधाते हैं और दीवार पर टंगे एक तोगरे[1] के पीछे कुछ ढूंढ़ने लगते हैं।

"इंहीं हम अगरबत्ती रखे रहे, का भोवा ?"

वे पूछते हैं तो नजबुनिया दौड़कर आती है और एक दूसरे तोगरे के पीछे से 'सुगन्ध सिंगार' अगरबत्ती का पैकेट निकालकर बाप के हाथ में थमा देती है।

मतीन नजबुनिया की ओर देखकर फिर मुस्कराता है तो वह कनखी से अपनी आंखें तरेरती है और बावर्चीखाने में चली जाती है।

रऊफ चचा पैकेट में से एक अगरबत्ती निकालते हैं और काबा की तस्वीरवाले तोगरे के नीचे उसे सुलगा देते हैं।

रऊफ चचा बहुत दिनों से हज पर जाना चाहते हैं, पर मदीनेवाले की कृपा ही नहीं हो रही है, इसलिए वे काबे की तस्वीर पर अगरबत्ती सुलगा-सुलगाकर ही सबर किये हुए हैं !

"हम चलीते।"

मतीन उठता हुआ बोलता है और बावर्चीखाने में बैठी हुई नजबुनिया को कनखी से देखता हुआ नीचे उतर जाता है।

घर आकर वह सीधे ऊपर पहुंचता है और एक हरे रंग की छोटी-सी पुरानी नोट-बुक निकालकर एक रुपयेवाले डॉटपेन से उर्दू में कुछ लिखने लगता है।

लतीफ		102	
नसीम	—	102	
बशीर	—	100	2 बाकी
अल्ताफ	—	20	82 बाकी
रऊफ चचा	—	102	
समिउल्ला	—	50	52 बाकी
कल्लू	—	80	22 बाकी
अहद	—	52	50 बाकी
जमील	—	बाकी	

1. फ्रेम किया हुआ चित्र।

फिर वह टोटल लगाता है तो दो हजार कुछ रुपये का हिसाब बनता है। मतीन अलीमुन को पुकारता है—

"ए ऽऽ!"

"का ऽऽ?"

"सुन।"

"अभइन आइला।" अलीमुन भीतर से ही जवाब देती है और बजाय मतीन के पास आने के वह बाहर निकलकर नीचे जाने लगती है तो मतीन को क्रोध आ जाता है, "कहाँ जाती?"

"जाइला तहसा कमरुन किये।"

"अरे ऊ पइसवा त दिये ज।"

"आइला त देईला।"

"केतनी देर में अइबे?"

"घड़ी-घड़ी जाइला, घड़ी-घड़ी आइला।"

और अलीमुन चली जाती है।

18

लतीफ़ ने कमरुन को तलाक दे दिया।

अलीमुन ने जब यह खबर मतीन को सुनायी तो उसे कोई आश्चर्य नहीं हुआ। तलाक तो बिरादरी में आम बात हो गयी है। औरत जात की आख़िर हैसियत ही क्या है? जब चाहो चूतड़ पर लात मारकर निकाल दो! औरत का और इस्तेमाल ही क्या है? कतान फेरे, हाँड़ी-चूल्हा करे, साथ में सोये, बच्चे जने और पाँव दबाये। इनमें से अगर किसी भी काम में हीला-हवाली करे तो क़ानून-इस्लाम का पालन करो और बोल दो कि मैं तुम्हें तलाक देता हूँ। तलाक! तलाक! तलाक! बिरादरी में तो 'महर' का झंझट भी नहीं है। भला हो सरदार महतो का जिन्होंने क़ानून बना दिया कि साढ़े बत्तीस रुपया से ज्यादा महर बँधेगा ही नहीं। एकदम शरई उसूल। इस ज़माने में साढ़े बत्तीस रुपये की बिसात ही क्या है? वहाँ [illegible] पठान घोड़े हैं कि पंच-पच हजार का महर बाँधे जा रहे हैं, उस पर [illegible] अलग से। अरे जितना अदा कर सको आसानी से उतने से ज्यादा का महर बाँधो ही नहीं। साढ़े बत्तीस रुपया देना कौन बड़ी बात है? फिर दहेज-वहेज का झंझट

भी नहीं कि मुकदमा चलायें माँ-बाप, कि हमने इतना सामान दिया था, दामाद सब हजम कर गया। यहाँ न देना है न लेना।

सुना कि लतीफ ने परसों ताड़ी नहीं, गोलगड्डा मार्का पिया था। और ठर्रे के नशे में झूमता हुआ जब वह घर पहुँचा तो कमरुन लेटी हुई थी। उसके पेट में दर्द था। इसने उसे झँझोड़कर उठाया तो वह कराह उठी और ना-नुकुर करने लगी। इस पर इसने पिटाई की उसकी। सुबह कमरुन जब चाय-रोटी लेकर इसके पास पहुँची तो इसे रात की बात याद आ गयी और इसने चाय-रोटी के बदले दो-तीन झापड़ जमा दिये उसे। कमरुन को भी गुस्सा आ गया। वह जाकर चुपचाप लेटी रही। जब इसने देखा कि यह तो कुछ काम ही नहीं कर रही है तो और बिगड़ उठा। इसने फिर उसे झँझोड़कर उठाया तो वह भड़क उठी। उसने भी कुछ उल्टा-सीधा कह दिया। बस इसने उसे तलाक बोल दिया और साढ़े बत्तीस रुपये निकालकर उसके आगे फेंक दिये! कमरुन ने भी बुर्का उठाया और चल दी!

मतीन समझ गया कि कल जब अलीमुन जा रही थी कमरुन के यहाँ तो जरूर उस वक्त वहाँ झगड़ा होता रहा होगा।

लेकिन इसने बताया क्यों नहीं?

मगर वह बता भी देती तो क्या मतीन उसे रोक सकता था?

वह सोचता है और देर तक सोचता रहता है। शाम हो जाती है।

19

बशीर के मकान पर हाजी साहब ने कब्जा कर लिया है।

यह खबर एक मुहल्ले से दूसरे मुहल्ले और दूसरे मुहल्ले से तीसरे मुहल्ले होती हुई कई मुहल्लों में फैल जाती है।

चर्चा है कि हाजी अमीरुल्ला अपनी कोठी से सटे हुए बशीर के मकान को खरीदना चाहते थे। मेल की जमीन थी और उनके लिए जगह की कमी थी। क्या बुरा सोचते थे? अरे पैसा भी तो देते, मुफ्त तो लेते नहीं। लेकिन जुलाहे की अकल करघे में। बशीर अपनी ही अकड़ में था। टके-भर का कारीगर, चला था हेकड़ी दिखाने। वह भी अपने ही गिरस से। बस ताव ही तो आ गया हाजी साहब को। नाराज हो गये और भाई, राजा की प्रजा पर नाराजी उसी तरह है जैसे आग की नाराजी पुआल पर।

लड़का ही सारा कारोबार देखता है। चाल-पेंच करते-करते छोटा-मोटा गिरस्ता बन गया है। दो करघे गड़े हुए हैं घर में और दोनों भाइयों से उन पर बिनवाता है। माँ-बाप से भी काम लेता है। मँझलावाला तो एकदम अल्ला मियाँ की गाय है, बात भी सुनता है और काम भी किये चला जाता है। पर सलमा ने अपने आदमी से कह दिया है कि जल्दी ही अपना अलग जुगाड़ कर ले वह। लेकिन इतनी जल्दी तो कोई जुगाड़ हो नहीं पायेगा, इसलिए अभी इसी दोजख़ में रहना है। और जब दोजख़ में रहना है तो दोजख़ का कानून मानना ही होगा।

रेहाना गुमसुम रहती है। उससे छोटी जो दो लड़कियाँ हैं वे तो कुछ हँसती-बोलती भी हैं पर रेहनवा अक्सर चुप रहती है। कभी-कभी उसे दौरा भी आता है। उस वक्त वह पता नहीं क्या-क्या बड़बड़ाया करती है और देखते-ही-देखते अपने बाल नोच-नोचकर हबुआने लगती है। औरतों का कहना है कि उसे कोई ऊपरी शै है। मख़दूमशाह बाबा के मजार पर ले जाना होगा। लेकिन पास-पड़ोस की कुछ स्त्रियों की राय है कि पहले यहीं, किसी जुमरात को बहादुरशाह बाबा के यहाँ ले जाकर दिखा लेना चाहिए। कुछ लोगों का कहना है कि नहीं, दुआ और दवा दोनों होनी चाहिए। बी. एच. यू. के हॉस्पिटल के मेण्टल विभाग में भी दिखाना चाहिए।

रेहनवा सबकुछ सुनती है और मौन रहती है। खाली वक्त में मशीन लेकर बैठ जाती है और कुछ-न-कुछ सिलने लगती है। अपने को शायद वह व्यस्त रखना चाहती है।

बशीर मौन रहते हैं। अमिनवा की तो अक्कल ही गायब हो गयी है।

रेहनवा ने सिर्फ एक जने से दोस्ती की है। नजबुनिया से। कभी यह वहाँ चली जाती है और कभी वह यहाँ चली आती है। दोनों अकेले में न जाने क्या-क्या गुनुर-फुनुर बतियाती रहती हैं। बस इसी एक मौके पर रेहनवा कभी-कभी हँसती है।

कभी-कभी अलीमुन भी इधर निकल आती है। दो-चार दिन में एकाध बार मतीन भी आ जाता है। हाजी नजीर के यहाँ बहुत-से ऐसे कारीगर हैं जिन्होंने उसके काग़ज़ पर दस्तख़त किया है, पर अभी तक रुपया नहीं मिला है। बशीर के जरिए वसूला जा सकता है। जल्दी से मिल-मुला जाय तो बैंक चलकर काग़ज़ जमा कर दे वह!

आज अभी-अभी आया है मतीन। बहुत उत्तेजित है। थोड़ा परेशान भी। दाढ़ी की खूटियाँ बढ़ी हुई हैं और लगता है जैसे कई दिनों से नहाया नहीं है। आते ही वह मचिया पर जम गया है और शुरू हो गया है—

"गुमापटी त ग्यों हम बना के रहेंगे। बस तनी पइसवे के मसला है। सुना है हाजी साहब फोड़ रहें ने सोगन क......!"

बशीर उनकी बातों को ध्यानपूर्वक सुनते हैं और खामोश रहते हैं। मतीन धाराप्रवाह बोलता रहता है।

20

कई दिन से लू चल रही है। जेठ लगते देर नहीं कि लू चालू। और बिजली की ये हालत है कि चार-चार घण्टे गायब। न काम हो पाता है, न बाहर निकला जाता है। दिन-भर पसीना पोंछते-पोंछते परेशान। रात में छत पर भी हवा नहीं लगती। कितना ही पानी डालो, नीचे की जलन मिटती ही नहीं। सुबह, सूरज निकलते देर नहीं कि गर्मी शुरू। दिन में बाहर ताकने की हिम्मत नहीं पड़ती।

ऐसी सड़ी गरमी के मौसम में हो रहा है गाजी मियाँ का बियाह।

बनारस में यह मेला जेठ महीने के प्रथम रविवार से आरम्भ होता है और अगर रविवार से एक-दो दिन पहले ही जेठ लगा हो तो दूसरे रविवार से। शनिवार, रविवार और सोमवार की सुबह तक यह मेला काजी सादुल्लापुरा में लगता है। वहाँ बाकायदा गाजी मियाँ के बियाह का आयोजन होता है। स्त्रियाँ जुटती हैं और मन्नत के मुर्गे काटे जाते हैं। गाजी मियाँ पर उनका खून चढ़ता है। और उनका प्रताप देखिए, यहाँ एक मुहल्ले का नाम ही पड़ गया है—गाजी मियाँ!

गाजी मियाँ का यह मेला सोमवार की शाम को नक्खीघाट, मंगल को कच्ची बाग, बुद्ध को छित्तनपुरा, बीफे को बेनियाबाग और शुक्रवार को पुराने पुल पर लगता है। इस तरह पूरे एक हफ्ते तक यहाँ मेले की चहल-पहल बनी रहती है।

बड़ी बाजार[1] के पास गाजी मियाँ की एक कल्पित कब्र है जहाँ से यह मेला शुरू होता है। मेले में एक इतवार पहले यहाँ की कुछ औरतें और मर्द 'पडग-चिढ़िग' (दुल्हन के लिए कपड़ा व चादर आदि) लेकर बहराइच जाते हैं। फिर अगले इतवार को गाजी मियाँ का ब्याह रचाया जाता है। बहराइच से कल्पित दुल्हन सजकर आती है। लोग गाजी मियाँ के मजार पर मुर्गा चढ़ाते हैं और मजार को गुसल (स्नान) कराते हैं। मजार के चारों ओर गड्ढा है जिसमें मजार के धुलने

1. बड़ी बाजार, बनारस का एक मुहल्ला।

से जो पानी गिरता है उसे लोग अपनी आँखों से लगाते हैं और पीते हैं। दोपहर को ये लोग खाना नहीं पकाते, सिर्फ सत्तू-गुड़ और फल आदि खाते हैं।

आज गाजी मियाँ का खास मेला है। झुण्ड-को-झुण्ड स्त्रियाँ नकाब डाले मेले की तरफ चली जा रही हैं। बहुत पुराने जमाने की स्त्रियों ने ममी टाइप की गोल टोपीवाले, चारों ओर से बन्द बुर्के पहन रखे हैं। टोपी के सामने सिर्फ चन्द छोटे-छोटे सूराख नजर आ रहे हैं, जिनके जरिये ये स्त्रियाँ किसी तरह बाहर की दुनिया को देख सकती हैं। जो स्त्रियाँ उनसे कम पुराने जमाने की हैं, उन्होंने सिर्फ चादरें ओढ़ रखी हैं और नये जमाने की स्त्रियों ने नये ढंग के नकाब पहन रखे हैं। लड़कियों ने मैक्सी टाइप के नये काटवाले नकाब धारण किये हैं। किसी के नकाब में ऊपरी पल्ले में सलमे-सितारे टँके हैं तो किसी की कमर में कमरबन्द बना हुआ है। इन लड़कियों ने नकाब का पल्ला उलट रखा है। कुछ लड़कियों ने सिर्फ ऊपर का पल्ला पीछे फेंक रखा है और नीचे की जाली को चेहरे पर पड़ा रहने दिया है। ऐसी लड़कियों की आँखें जालियों में से इधर-उधर ताक रही हैं और लग रहा है जैसे भीतर कहीं कोई बिल्ली बैठी हुई कुछ तलाश रही है। कुछ लड़कियों ने कत्थई, सफेद, पीले और लाल रंग के नकाब भी ओढ़ रखे हैं, पर काले रंग के नकाब ही अधिक फब रहे हैं।

बुढ़ियों ने नीचे चूड़ीदार पैजामा पहन रखा है और उसके ऊपर हाफ आस्तीन की कमीज। विवाहिता स्त्रियों ने लँहगों के ऊपर साड़ियाँ पहन रखी हैं और हाफ आस्तीनवाली, कमर तक नीची कमीज। लड़कियों ने इजार (सलवार) और पेरानी (कमीज)। छोटी लड़कियों के बालों पर अफ़शाँ से बेलबूटे बनाये गये हैं।

इस तरह भली प्रकार सज-धजकर लोग गाजी मियाँ का बियाह देखने जा रहे हैं। कुछ लोग ऊपर से लौट भी रहे हैं। लौटनेवालों के हाथों में तरह-तरह के सामान हैं। बच्चों ने मिट्टी के खिलौने ले रखे हैं। चूल्हा, भगौना, गुड़िया, चिड़िया आदि अनेक तरह के खिलौने। कुछों ने भैंस के कीमे की पकौड़ियाँ ले रखी हैं।

मेले में नजबुनिया भी जा रही है। साथ में अलीमुन भी है। बशीर की बीबी आमिना अपनी लड़कियों के साथ गयी हुई है।

नजबुनिया का नकाब पुराना हो गया है। अब्बा ने कई बार वादा किया कि नया ला देंगे दालमण्डी से, पर लाते ही नहीं। दूसरी लड़कियों के सरफराते हुए नकाब देखकर उसे अपने ऊपर कोफ़्त होती है।

नजबुनिया की चूड़ियाँ भी पुरानी हो गयी हैं। सोच रही थी कि गाजी मियाँ के मेले में नयी चूड़ियाँ पहनेगी, लेकिन रेजा[1] ही नहीं पुजा। अब्बा की तबियत इधर खराब चल रही है।

1. साड़ी।

नजबुनिया की चोटी भी खराब हो गयी है। मतीन का कोई मिलने-जुलने-वाला है—रहमान, उसके यहाँ चोटियाँ बनती हैं। पिछली बार वहीं से यह चोटी आयी थी। अब बार-बार तो किसी से कह नहीं सकती चोटी के लिए। फिर किसको गरज पड़ी है कि दूसरे का ख्याल करे? अरे आदमी अपने बीवी-बच्चों को देखे या दूसरों को। अम्मी से तो कहना ही बेकार है कुछ। फैशन की चीजें उन्हें पसन्द ही नहीं। गोया कि चूड़ियाँ और चोटियाँ भी फैशन की चीजें हैं।

नजबुनिया के पास सिर्फ दो रुपये हैं। इसी में गाजी मियाँ का भी सतकार करना है और अब्बा के लिए बुखार की टिकिया भी खरीदनी है। वह अपने लिए क्या लेगी?

नजबुनिया सोच रही है और चल रही है। सामने एक मेला है जो जा भी रहा है और आ भी रहा है। इस मेले में नजबुनिया का कुछ नहीं है।

सहसा उसने देखा कि सामने से उसकी भउजी चली आ रही है। हनीफ की बीबी। गोद में लड़का लिये, पाँव में प्लास्टिक की रंगीन चप्पलें पहने, नकाब का पल्ला उलटे, मन्नीवाली लाल-लाल आइसक्रीम चूसती…

नजबुनिया को हँसी आ जाती है।

"सलावाले कुम भऊजी!"

वह सलाम करती है तो हब्बुन चौंक जाती है। वह झटके से सलाम का जवाब देती है और जाने लगती है तो नजबुनिया रास्ता रोककर खड़ी हो जाती है।

"बड़ी जल्दी की है का?"

"हाँ हो अम्मा की तबीयत खराब है, हुआँ जायेके है।"

"कब से?"

"अरे धीरे-धीरे एक महिन्ना हो गोवा!"

और वह उसी तरह आइसक्रीम चूसती हुई आगे बढ़ जाती है। नजबुनिया मेले की ओर चल पड़ती है।

दोपहर में तो मेला कुछ कमजोर था, लेकिन शाम होते ही भीड़ बढ़ गयी है। नजबुनिया घूमते-घूमते थक गयी है। गर्मी के मारे बुरा हाल है, पर मेला छोड़कर जाते नहीं बनता। उसने दूर से ही देखा, एक जगह मतीन कुछ लोगों के साथ खड़ा है। उसकी ओर देखकर वह मुस्कराया तो नजबुनिया लजा गयी। जल्दी से वह दूसरी ओर निकल गयी।

जगह-जगह खोमचे लगे हुए हैं। कहीं नान खताई बिक रही है तो कहीं पकौड़ियाँ। कहीं गोलगप्पा तो कहीं जिलबी और कुल्फी।

एक ओर बिसात खाने की दूकानें हैं और दूसरी ओर चुड़िहारिनें बैठी हुई हैं।

बारी-बारी से नजबुनिया का ध्यान सबकी ओर जाता है। बिजली और नान-खताई की ओर, चूड़ियों की ओर, फीतों और चोटियों की ओर···फिर अचानक वह बिसात वाले की एक दूकान के सामने खड़ी हो जाती है। वहां एक डोरी पर रंग-रंग की चोटियां लहरा रही हैं, नजबुनिया का दिल मचल जाता है। सबके बीच में जो एक लालवाली चोटी है, वह नजबुनिया को बहुत अच्छी लग रही है!

"ऐ भइया इ चोटिया केतने की है?"

वह बहुत खुश होकर दूकानदार से चोटी का दाम पूछती है और फिर आगे बढ़ जाती है। एक रुपये का तो उसने मजार पर नेयाज कराने के लिए लाचीदाना ही खरीद लिया था। अब बीस आने की चोटी कहां से खरीदेगी? फिर अभी अब्बा के लिए ग्लोवलजीन भी तो लेनी है···

नजबुनिया मुंह लटकाये मेले से बाहर आ जाती है।

21

स्कूल खुल गये हैं। इकबाल का नाम मतीन ने अंसारी स्कूल में लिखा दिया है।

इकबाल अब जांघिया-कमीज पहनकर पांव में हवाई चप्पलें डाले, झोले में किताब लेकर अच्छे लड़कों की तरह स्कूल जाने लगा है।

वह स्कूल में सिर्फ अलिफ, बे, पे ही नहीं बल्कि क, ख, ग, घ, ङ भी पढ़ रहा है। कुछ दिनों बाद ए. बी. सी. डी. भी पढ़ेगा।

मतीन चाहता है कि इकबाल उसकी तरह करघे का कारीगर न बने। वह उसे जुलाहा नहीं बनाना चाहता। उसकी धारणा है कि जुलाहा बनकर कोई तरक्की नहीं कर सकता। अरे बहुत होगा वह 'अंसारी' हो जायेगा और क्या? लेकिन बनारस का अंसारी होना भी जुलाहा होने से ज्यादा बड़ी चीज नहीं है, इसलिए वह चाहता है कि इकबाल पढ़-लिखकर बाबू बने। बाबू यानी क्लर्क नहीं, बल्कि अफसर।

इस साल बारिश समय से हो गयी है, वरना कई साल तक इस मौसम में धूल उड़ा करती थी। मतीन जिस रोज इकबाल को लेकर स्कूल गया था उस रोज तो एक घण्टे तक बहुत तेज पानी बरसा था। स्कूल के सामने नदी बहने लगी थी। यही हाल इधर हनुमान फाटक का था। लोग कमर-कमर तक पानी में हिलकर आ-जा रहे थे।

आज सुबह से ही बदरी घिरी हुई है। रात में बेहद गर्मी थी। लगता है, फिर पानी बरसेगा। मतीन को बशीर के यहाँ जाना है, लेकिन मौसम इतना खराब है कि बाहर निकलने की हिम्मत नहीं पड़ रही।

अभी मतीन यह सोच रहा था कि वह बाहर निकले या नहीं, कि लतीफ टपक पड़ा।

मतीन के पास वह अपने विवाह के चक्कर में आया था। कमरुन को जब से छोड़ा है, परेशान रहता है। कई दफा तो उसने यही फैसला किया कि फिर बुलाकर उसे रखेगा, लेकिन शरीअत आड़े आ जाती है। जब तक उसका 'हलाला' न हो जाय, दुबारा लतीफ के साथ वह नहीं रह सकती। अब तो यही एक उपाय है कि कमरुन का निकाह किसी और से हो जाय और वह एक रात अपने साथ रखकर उसे तलाक दे दे। तब जाकर फिर लतीफ के साथ उसका निकाह हो सकेगा। इस शरीअत में भी बड़ा झंझट है। ये भी कोई बात हुई कि अपनी ही बीवी को आप दुबारा सिर्फ इसलिए नहीं रख सकते कि आपने तीन बार उसके सामने 'तलाक' लफ्ज का इस्तेमाल कर दिया है। हुँह!

लतीफ परेशान है, लेकिन मतीन के पास इसका क्या हल हो सकता है? अब तो बस यही रास्ता है कि कहीं कोई लड़की-वड़की ठीक करके वह दूसरी शादी कर ले। या फिर हिम्मत हो तो कमरुन को बुलाकर रखे।

"तोरा का राय है म्याँ?"

लतीफ दबी आवाज में मतीन से यह सवाल करता है तो वह बरबस ही कह उठता है, "हमरा तो राय है कि तूं कमरुन के बोलाय के रक्खो।" इस पर लतीफ खामोश रहता है। मतीन उसके चेहरे को गौर से देखता है और मुस्कराता है। वह जानता है कि लतीफ ऐसा नहीं कर सकता।

"सोच लेब अब अउर हम का कहें!" मतीन थोड़ा गम्भीर होकर बोलता है और खड़ा हो जाता है।

"हमें तदगा बसीर के हियाँ जाये के है।"

इतना कहकर वह अपना अकड़ा हुआ बदन तोड़ता है और बाहर की ओर झाँककर बादलों का जायजा लेने लगता है। इस बीच लतीफ भी खड़ा हो जाता है और दोनों साथ-साथ बाहर निकल जाते हैं।

अलीमुन आँगन में बैठकर बर्तन माँजने लगती है। बादल-बूँदी में वक्त का पता ही नहीं चलता। और ये इकबाल के अब्बा हैं कि इन्हें अपनी मुखाइटी से ही फुर्सत नहीं है। घर में क्या है, क्या नहीं, इसकी फिकर ही नहीं रह गयी है। अब गये हैं बसीर मियाँ। इतने टैम में तो चार बित्ते का काम हो गया होता ··

अचानक पड़पड़ाकर बूँदें पड़ने लगती हैं। सड़क पर चलनेवाले लोग भाग-भागकर छज्जों के नीचे खड़े हो गये हैं। अलीमुन उठकर भागते-भागते भीग गयी

है। बगलवाली गली में जो मकान है उसके छज्जे के नीचे भी कई लोग खड़े हैं। वह खिड़की से एक नज़र झाँककर देखती है और फिर अपने काम में लग जाती है। नीचे कोई बोल रहा है—

"बड़ी जबड़ी बुन्नी पड़े थी।"[1]

पानी रुकना है तो अलीमुन छत पर निकलती है और गली की ओर देखती है —शायद मतीन आता हो, लेकिन वह नहीं दिखायी पड़ता। हाँ इकबलवा अलबत्ता आता हुआ दिखायी पड़ता है। लगता है बारिश-बूँदी की वजह से जल्दी छुट्टी हो गयी है। लेकिन उसका चेहरा उतरा हुआ क्यों है? कहीं मार-वार खाकर तो नहीं आ रहे हैं। इस्कुलिया के मास्टर भी तो बड़े हरामी हैं। अलीमुन चिन्तित हो जाती है और जैसे ही वह इकबाल का हाथ पकड़ती है, घबरा उठती है।

लड़के को बुखार है। बदन तवे की तरह जल रहा है। अब इसी बात पर उसका जी जलता है। न जाने कहाँ जाकर बइठ गये हैं। इनकी हमेशा की यही आदत है कि जहाँ जाते हैं वहीं के होके रह जाते हैं। लड़के को कहाँ लेकर जाय वह? डाक्टर अंसारी के यहाँ जाने के लिए तो कम-से-कम तीन रुपिया चाहिए। और यहाँ रुपिया-डेढ़ रुपिया से ज्यादा है नहीं डिब्बे में। वह सोच में पड़ जाती है। क्या करे? तभी उसे ख्याल आता है कि क्यों न वह बुनकर अस्पताल चली जाय। वहाँ पच्चीस पैसे के पुर्जे में ही काम चल जायेगा। और वह जल्दी-जल्दी नकाब डालकर इकबाल की बाँह पकड़े हुए कोठरी में ताला लगाकर बाहर निकल जाती है।

अस्पताल के अहाते में उसने देखा कि हाजी मतिउल्ला और मुंशी सुल्तान वकील खड़े हैं। पता नहीं क्या राय-बात कर रहे हैं। वह नक़ाब सँभालती हुई बगल से होकर दाहिनी ओर मुड़ जाती है—जहाँ पुर्जा बनता है। पुर्जा बनवाकर वह अस्पताल के बरामदे में पड़ी एक बेंच पर बैठ गयी।

दवा मिलने में काफी देर हुई। उनका नम्बर काफी बाद में आया। अब तक करीब-करीब सारी भीड़ छँट चुकी थी। इस बीच एक बार और पानी बरसा था और अब मौसम कुछ साफ हो गया था। वह इकबाल को अपने नकाब में छुपाये हुए थी और दिल-ही-दिल में घबरा रही थी। कोठरी में ताला बन्द है। इसके अब्बा आये होंगे तो कहाँ होंगे? अभी तक पेट में कुछ गया भी नहीं है···

और दवा मिलते ही वह तेजी के साथ घर की ओर चल पड़ी। लेकिन अभी थोड़ी ही दूर पहुँची थी कि रास्ते में नजबुनिया दिखायी पड़ गयी। नक़ाब का पल्ला

---

1. बहुत बड़ी-बड़ी बूँदें पड़ रही हैं।

ट्यूशन पढ़ने जाता है, काफ़ी है। क्लास टीचर तो कही रहे हैं कि घबराने की कोई बात नहीं है। बस, चाय-पान कराते जाओ।

हाजी अमीरुल्ला का हुक्म है कि घर आते ही बिजनेस के काम में लग जाओ! और इसी हुक्म के अनुसार जमरुद्दीन को पेटी लेकर गोलघर जाना है और शरफुद्दीन को रेशम के सिलसिले में बात करने के लिए सेठ गजाधर प्रसाद के घर!

नाश्ता-पानी करके, लुंगी-टोपी पहनकर, बगल में पेटी लेकर जमरुद्दीन तो गोलघर जाने के लिए तैयार हो गया, लेकिन शरफुद्दीन सो गया।

हाजी साहब को मालूम हुआ कि शरफुद्दीन सोया हुआ है तो बहुत झल्लाये और नीचे गद्दी पर बैठे-बैठे ही उसे गरियाने लगे।

तभी अंसारी स्कूल के अंग्रेजी मास्टर वहाँ पहुँच गये, कोई फरियाद लेकर और हाजी साहब थोड़ी देर के लिए सहज हो गये।

"आओ मट्टर साब बइठो? कइसे चलेव?"

उन्होंने मास्टर साहब का स्वागत किया और एक लड़के को बाजार से चाय-पान लाने के लिए कहा। लड़का कोने में से अल्मूनियम की केतली उठाकर चलने लगा।

"देख बढ़िया लिअइवे। इस्पेसल।"

उन्होंने लड़के को फिर हिदायत दी और शरफुद्दीन को वहीं से बुलाने लगे—

"क्बे शरफुआ अभइं उट्ठे के नाँहीं!"

लेकिन कोई उत्तर नहीं मिला तो वे फिर चीखे, "शरफुवा! सुनेते के नाँहीं बे?"

लेकिन फिर भी कोई जवाब नहीं आया तो हाजी साहब बोखला उठे। वे चीखने लगे, "क्बे भोसड़ियावाले सुनेते काही नाँहीं बे! तोरी का करों मैं। पढ़ेतेन यूनिवरसीटी मे भोसड़ी के अउर अक्कल बुरचोदी के छटांक-भर नाँहि ने! घर क एकठे काम नाँही कर सकेतेन। देखो मट्टर साब, जोलहा क लड़का ज्यादा एत्तर के होइए त कइसे काम चलिए? तुं हीं बोलो मट्टर साब, का हम झूठ कहीते?"

लेकिन शरफुवा नहीं उठा तो नहीं उठा। मास्टर साहब ने जब देखा कि हाजी साहब का मूड खराब है तो थोड़ी चापलूसी की बातें करने लगे और हाजी साहब का ध्यान थोड़ा बँट गया। तब तक चाय भी आ गयी थी और हाजी साहब चाय लानेवाले लड़के को यह समझाने में व्यस्त हो गये थे कि अरब से जो कप-प्याली आयी है उसी में चाय उड़ेलकर लाये वह। चाय भले बाजारू हो मगर कप-प्याली इम्पोर्टेड होनी चाहिए। घर में चाय बनवाने का रिवाज हाजी साहब के यहाँ नहीं है!

मास्टर साहब को विदा करने के बाद हाजी अमीरुल्ला खुद चल पड़े सेठ गजाधर प्रसाद के यहाँ—चेतगंज।

शाम का वक्त करीब था और बिसेसरगंज में जाम लग गया था। एक ट्रक बीच सड़क पर बेड़े-बेड़े खड़ा हो गया था जिससे इधर की ट्रैफिक इधर, और उधर की उधर ही रह गयी थी। रिक्शेवाले आगे जाने के चक्कर में एक-दूसरे के पीछे न खड़े होकर एक-दूसरे के बगल में खड़े हो गये थे। साइकिलवाले उनकी दरारों में से निकलने के चक्कर में दाँतों के बीच में गोश्त के रेशों की तरह यहाँ-वहाँ फँस गये थे। नतीजा यह हुआ कि हाजी साहब का रिक्शा भी एक जगह अँड़स गया। उनकी झल्लाहट और बढ़ गयी। कह रहे थे शरफुवा बुरचोदीवाले से कि पैदे जाओ तो सुनायी ही नहीं पड़ा। अरे स्कूटर से निकल गये होते बाली-वाला। ई का करेंगे अपनी जिन्दगी में समझ में नहीं आता!···

और हाजी साहब जिस वक्त चेतगंज पहुँचे, अँधेरा हो गया था। एक गली के मुहाने पर रिक्शा रुकवाकर वे उतर पड़े और भीतर प्रविष्ट हो गये। थोड़ी देर तक एक गली से दूसरी गली में घुसते-घुमाते जब वे सेठ गजाधर प्रसाद की कोठी पर पहुँचे तो वहाँ काला अन्धकार छाया हुआ था। बिजली गायब थी। पता चला कि बस से गयी हुई है, अभी तक नहीं आयी। कम्प्लेण्ट उसी वक्त लिखवा दिया गया था, लेकिन कोई सुनवायी नहीं। अब जाकर हड़काना पड़ेगा तभी काम चलेगा।

हाजी अमीरुल्ला अँधेरे में ही बैठ गये और सेठ गजाधर प्रसाद से व्यापार-वार्ता करने लगे।

सेठ गजाधर प्रसाद के यहाँ रेशम का व्यापार आज से नहीं हो रहा है। यह उनका पुश्तैनी है। वैसे सेठजी इस धन्धे में अब काफी असन्तुष्ट हो गये हैं। अब इसमें नम्बर दो का काम होने लगा है। असली क्या है और नकली क्या है, आप बता नहीं सकते, जबकि उनके बाप-दादा के जमाने में सारा काम एकदम पेवर (प्योर) होता था। रेशम तो इस तरह बटा जाता था कि कोई सुने तो दंग रह जाये। घर में आठ-आठ, दस-दस पहलवान पले हुए थे, जिनकी जाँघों पर एक बाल नहीं था। एकदम चिक्कन! जरा-सा भी बाल उगता कि 'बालसफा' साबुन से साफ कर दिया जाता। ये लोग सुबह से लेकर शाम तक अपनी जाँघों पर रेशम बटा करते थे। एकदम महीन। इतना महीन कि क्या बतायें? फिर उस पर इतनी सफाई से सोने-चाँदी का तार चढ़ाया जाता था कि देखनेवाले दाँतों तले उँगली दबा लें। तभी न पाँच-पाँच तोले की साड़ियाँ बनती थीं! और असली सोने के कामवाली! अब तो सब काम मशीनी हो गया है।

हाजी अमीरुल्ला बहुत देर तक सेठ गजाधर प्रसाद से व्यापार-वार्ता करते रहे, फिर उठे और बाहर आ गये। बाहर गली में भी काफी अँधेरा था और रास्ता सुझायी नहीं पड़ता था। वे किसी तरह टो-टोकर सड़क तक पहुँचे और इधर-उधर

कोई खाली रिक्शा देखने लगे, लेकिन दूर-दूर तक कोई रिक्शा उन्हें नहीं दिखायी पड़ा। वे भीतर-ही-भीतर बहुत खिझलाये और फिर पैदल ही चल पड़े। आज का दिन बुरचोदी के खराब है…!

23

सावन का मेला शुरू हो गया है। सोमवार के रोज इधर मृत्युंजय महादेव पर और उधर मानस मन्दिर पर बड़ी भीड़ होती है। सुना जाता है कि पहले सावन-भर बनारस में मेला रहता था। तीज के दिन का तो कहना ही क्या है। एक दिन पहले रात-भर रतजगा होता था और स्त्रियाँ रात-भर कजरी गाया करती थीं। दूसरे दिन ईश्वर गंगी और शंखू धारा पर गोनहारिनों का मेला लगा करता था, जहाँ स्त्रियाँ कजरी गाती हुई जाती थीं और नगर के छैले इनाम बाँटते थे। अब कहाँ वह काशी है और कहाँ वह बहार है?

रामभजन दलाल लँगोट के ऊपर गमछा लपेटे दतौन कर रहा है और आँगन में घूम रहा है। कभी-कभी एक कजरी के बोल वह गुनगुना लेता है—

चार गुण्डा आगे चलैं
चार गुण्डा पीछे चलैं
बिचवा में चलालू उतान साँवर गोरिया
तुहँइ बाटू नोखे क जवान साँवर गोरिया…

रामभजन बलिया जिले के एक गाँव का रहनेवाला है। गाँव में खेती-बाड़ी थी तो जरूर, पर मार-मुकदमा में सब कुछ बिला गया और रामभजन चला आया बनारस।

वैसे तो बलिया के लोग लण्ठ नहीं होते, पर रामभजन लण्ठ था। वह कभी-कभी अपनी लण्ठई के किस्से रस ले-लेकर सुनाया करता है। हनिफवा से उसकी बहुत पटती है। खाने-पीने की दोस्ती है। पहले तो रामभजन नहीं पीता था, पर अब ऐसी आदत हो गयी है कि 'शराब' नहीं मिलता तो चैन ही नहीं मिलता। पहले उसका काम सिर्फ भाँग से चल जाया करता था। यहाँ उसकी दोस्ती नरेश नामक एक मूर्तिकार से हो गयी थी जो संगमरमर की मूर्तियाँ बनाया करता था और विश्वनाथ गली में उसकी एक छोटी-सी दूकान हुआ करती थी। दूकान में राम, कृष्ण, हनुमान, शिव और दुर्गा की अनेक छोटी-बड़ी मूर्तियाँ रखी होतीं और नरेश

उसके दोस्त के बैठकर सामने से आने-जानेवाली लड़कियों और हिप्पियों को समान भाव से देखा करता था। नरेश को लड़कियों के स्तन और हिप्पियों के बाल बहुत पसन्द थे। वह उनकी तरह-तरह से उपमाएँ दिया करता था और रामभजन उसकी अतिरिक्त प्रतिभा से चमत्कृत हो जाता था।

रामभजन की ज्यादातर शामें वहीं बीतती थीं। तब वह कोई स्थायी काम नहीं किया करता था और उसके दिन बहुत परेशानी में गुजर रहे थे। ऐसी स्थिति में नरेश के पास पहुँचकर उसे बहुत शान्ति मिलती थी।

नरेश बहुत मनमौजी प्राणी था। वह दिल का बहुत साफ था और तबीयत का सेर। वह चित्रकार भी बहुत अच्छा था। हमेशा धोती और सिल्क का कुर्ता पहनता तथा उँगलियों में तरह-तरह की अँगूठियाँ। चश्मा वह शौक के लिए लगाया करता था। उसने कई-कई हिप्पियों से दोस्तियाँ कर रखी थीं और अक्सर उसकी दूकान पर कोई-न-कोई हिप्पी बैठा रहता था। वह हिप्पियों को भाँग खिलाता और बीड़ी पिलाता। कभी-कभी उधर कांजी-बड़ावाला गुजरता तो कांजी-बड़ा खिलाता। चूँकि वे हिन्दी नहीं समझते थे इसलिए बीच-बीच में उन्हें शुद्ध हिन्दी में वह गालियाँ भी दे लेता था। मादा हिप्पियों का वह बहुत मजाक उड़ाता था। जब भी कोई मादा हिप्पी किसी किस्म का नखरा करती वह कह उठता, "हक सूँ बहुत खबसूरट!" और हँस पड़ता। हिप्पिन भी हँस पड़ती।

कभी-कभी वह मौज में आकर गुनगुनाने भी लगता था। उर्दू के कुछ [illegible] शेर उसकी जबान पर थे। मौका देखते ही वह उन्हें पेश कर देता था। [illegible] कहता था कि बनारस में तेग अली नाम के एक ऐसे शायर हुए हैं जिन्होंने [illegible] बनारसी में शेर कहे हैं। उनका एक प्रसिद्ध शेर इस प्रकार है—

> घरमिटाव कइलीं ह रहिला चबाय के।
> भेवल धयल बा दूध में खाजा तोरे बदे।[1]

नरेश हमेशा शुद्ध बनारसी में बोला करता। उसकी [illegible] प्रयोग बहुत होता। रामभजन को देखकर कभी-कभी वह [illegible] बोलने लगता, "आईं-आईं बइठीं! रउवा के कहाँ [illegible] खिल उठता।

वहाँ जाने पर रामभजन के दुहरे उद्देश्य सार्थक होते थे [illegible] दर्शन भी होता था और नरेश का मधुर [illegible] पड़े भाँग का प्रसाद मिलता सो अलग। लेकिन [illegible]

---

1. मानो हमने तो घना चबाकर [illegible] मिठाई भिगोकर रख छोड़ी है। [illegible] आभार)।

नहीं मिलती।

रामभजन ब्रह्माघाट में रहता है। कई-कई तंग गलियों और उन तंग गलियों में आड़े-बेड़े बैठी कई-कई अक्खड़ गायों को पार करते हुए गंगा के किनारे पहुँचने पर एक निहायत पुराने ढंग की लम्बी-चौड़ी जो इमारत दिखायी पड़ती है, रामभजन इसी इमारत में रहता है। इमारत के सामने सड़क पर ही एक सरकारी नल लगा है, जिस पर मुहल्ले की स्त्रियाँ आकर अपने बर्तन मांजती हैं, कपड़े धोती हैं और कभी-कभी नहाने के साथ-साथ लड़ भी लिया करती हैं। बगल में ही एक ठीठ किस्म का सांड़ बैठा रहता है, जिसका गोबर नल के पानी में मिलकर पूरी गली में बहता रहता है।

नल के पास ही इमारत का द्वार है, जिसके भीतर पहुँचते ही पता चल जाता है कि दूर से ही जिस मन्दिर का कलश दिखायी पड़ रहा था वह इसी इमारत के आँगन में है। मन्दिर बहुत पुराना है और पत्थरों का बना हुआ है। उसके भीतर एक काफी बड़ा शिवलिंग रखा हुआ है, जिसके अरघे पर हमेशा कोई-न-कोई फूल पड़ा रहता है।

इस मन्दिर के पीछे पहुँचकर बाईं ओर मुड़ जाने पर एक संकरा-सा गलियारा है जिसे पार करते ही एक सीढ़ी मिलती है, जिसके बगल में ही एक निहायत पतली परिधि का कुआँ बन्द पड़ा है, जिसकी गड़ारी सबसे ऊपरी मंजिल में लगी हुई है। अब इसकी जरूरत ही नहीं पड़ती।

रामभजन सीढ़ी के ऊपरवाले कमरे में रहता है—अपनी पत्नी और बच्चों के साथ। पत्नी दोनों वक्त शिवजी की पूजा किया करती है और अपने पति की दलाली में उन्नति के लिए शंकर भगवान से आँचल फैलाकर भिक्षा मांगा करती है। बड़ा लड़का यामिनी संस्कृत पाठशाला में संस्कृत पढ़ रहा है।

यह पूरी-की-पूरी इमारत एक पण्डे की है, जिसके बारे में प्रसिद्ध है कि उसने इसे किसी पुराने रईस से हड़प लिया है। पण्डा कभी-कभी ही उस तरफ आता है।

हनिफवा जिस वक्त सीढ़ी चढ़कर ऊपर पहुँचा, रामभजन की टेक समाप्त हो रही थी और वह गमछे के भीतर हाथ ले जाकर लँगोट की कसावट दुरुस्त कर रहा था। भीतर चन्दन छाप अगरबत्ती की सुगन्ध भरी हुई थी और एक तस्वीर के सामने उसकी पत्नी हाथ जोड़े खड़ी थी।

"नमस्कार !"

"नमस्कार ! आ गो हनीफ, हालचाल ठीक है न ?"

"हाँ ठीक है।"

तब तक एक लड़का उधर निकल आया तो रामभजन ने उसे चाय-पान के लिए भेज दिया।

"ए बच्ची, नईंमा गिरधारी के इहाँ से दुइठे इस्पेसल चाय जा के लियावा स। अउर बच्चू के इहाँ से दुइठे पानो लिहे। चाय में 'हलचल' पत्ती। कहे तनी बढ़िया बनावे!"

और लड़का दौड़ता हुआ सीढ़ियाँ उतर गया।

इस बीच हनीफ को प्यास लग आयी थी। उसने पानी माँगा तो लँगोट ठीक करते-करते रामभजन ने उसे एक चौकी की ओर इशारा कर दिया जिस पर पानी से भरा हुआ एक गिलास रखा हुआ था।

"लिया, फरचा हो। अबहियँ रखली है।"

तभी कोई लड़का छत पर चीखा, "हाय रजा इ कटली!"

और एक बैंगनी-सी पतंग कटकर रामभजन के आँगन में आ गिरी। रामभजन झल्ला उठा।

"एकरी बहिन के···सरवा रात-दिन उड़े पतंग उड़े पतंग! एकरी बिटिया क पूत मारों, हरमिया पतंग···"

लड़का पतंग लेकर भाग गया।

हनिफवा ने अब अपने आने का मकसद बताया कि हाजी अमीरुल्ला के लिए बाहरी साहब टीप करते हैं जो सीधे हाजी साहब के घर पहुँचें और बजाय मार्केट से माल खरीदने के उनकी गद्दी पर ही माल खरीदें।

इस समस्या पर थोड़ी देर तक विचार होता रहा, फिर दोनों वहाँ से बाहर आये और एक रिक्शे पर बैठकर मानस-मन्दिर की ओर चल पड़े सावन का सिंगार देखने। एक पंथ दुई काज। धरम-करम भी हो जाय और आँख भी सेंक ली जाय!

24

रेहाना की तबीयत ज्यादा गड़बड़ रहने लगी है। उसकी अम्माँ को पक्का यक़ीन है कि उनकी बिटिया को किसी ने मूठ कर दिया है। रेहाना के मामा समिउल्ला बड़े पे मखदूम शाह, यहाँ से पाक बत्ती' ले आये हैं। उसे जलाकर और लोबान सुलगाकर एक दिन जब बैठाया उन्होंने रेहाना को तो हबुआने लगी वह। पहले तो

उसने इधर-उधर सिर को हिलाया, फिर जमीन पर दोनों हथेलियाँ दबाकर झूमने लगी। अम्माँ ने पीछे से जूड़ा खोल दिया।

"बोल के है तें ?"

मामा ने पूछा तो रेहाना ने क्रोध से आँखें तरेरीं और फिर झूमने लगी। फिर पूछा तो बोली, "हम्मैं बहादुर सहीद लै चलो, वहीं बतायेंगे।"

बहादुर शहीद का मजार कचहरी के पास है। बरना के इधर ही। वहाँ हर जुमेरात को बनारस और आसपास के गाँवों की स्त्रियाँ पहुँचती हैं तथा अपने-अपने भूतों से खेलती हैं। जुमेरात के रोज वहाँ अच्छा-खासा मेला ही लग जाता है। मजार के बाहर भैंस के कीमे की पकौड़ियाँ बिकती हैं और बेसन की फुलौरियाँ तथा मौसमी फल। बच्चों के लिए आइसक्रीमवाले भी अपना-अपना ठेला लेकर पहुँच जाते हैं।

रेहाना को बहादुर शहीद ले जाया गया। जुमेरात का दिन। मजार के भीतर और बाहर स्त्रियों का मेला-जैसा लगा था। तमाशा देखनेवाले पुरुष भी कम नहीं थे। रेहाना की अम्माँ रेहाना को लेकर मजार पर जब पहुँची, मेला अपने शबाब पर था।

वे बगल से घूमकर भीतर पहुँचीं और सिन्नी वगैरह खरीदकर लाइन में खड़ी हो गयीं। फिर ड्योढ़ी से जब हुक्म मिल गया तो सहन में वे दाखिल हो गयीं। हुक्म लेने के लिए सवा रुपया खर्च करना पड़ा। अपनी माँ के निर्देश पर रेहाना जमीन पर बिछे हुए एक कपड़े पर हाथ जोड़कर जुड़े हुए हाथों के बीच जलती हुई अगरबत्ती थामकर, सवारी आने के इन्तजार में बैठ गयी।

पास में ही एक अन्य लड़की अपने भूत से खेल रही थी और गा रही थी—

छोटे-बड़े भइयन से
करीलें सलमिया गुरु जी,
लाल-लाल छड़िया न दिखावा हो बाबा
हमें एतना संसतिया न चढ़ावा हो बाबा !

इतना गाकर वह चुप हो गयी और जमीन पर हथेलियाँ पटक-पटककर झूमने लगी। थोड़ी देर तक इसी तरह झूमने के बाद वह अपने खुले हुए बालों को तेजी के साथ झटकारने लगी और मानो क्रुद्ध होकर वह फिर गाने लगी—

तोरी तकतिया देखी हो सैयद
अब की बिफइया नाही छोड़ब हो सैयद
छोड़ब त ओही उरसवा में छोड़ब···

और देखते-ही-देखते रेहाना भी खेलने लगी। उसके मुँह से भी गीत के बोल फूट पड़े—

छोटे-बड़े भइयन से करीलें सलमिया···

अलीमुन को फिर खून गया है।

नरी भर रही थी, अचानक लगा कि उल्टी होगी और वह नाबदान की ओर दौड़ी, मगर रास्ते में ही उल्टी हो गयी। थक्का-थक्का खून!

अलीमुन बेहोश हो गयी।

इकबाल गनित लगा रहा था। अम्मा को गिरते देखा तो चौकी पर से उठकर सीधे छत पर पहुँच गया।

'अम्मा अम्मा!'

वह चिल्लाने लगा। अलीमुन के कन्धों को झकझोरने लगा, लेकिन अम्मा नहीं बोली।

वह नीचे भागा।

मतीन करघे पर बैठा कोई धागा सुलझा रहा था।

"अब्बा चलो देखो, अम्मा के का हो गोवा है? मार खूने-खून गिरी से।"

और मतीन धागा-वागा छोड़कर सीढ़ियाँ चढ़ गया।

अलीमुन को खूनमखून देखकर वह तड़प गया। किसी तरह उसने उसे उठाकर भीतर खटिया पर लिटाया और इकबाल को सहेजकर डॉक्टर अंसारी के यहाँ दौड़ गया।

लेकिन डॉक्टर साहब बगैर फीस के घर आने को तैयार नहीं हुए। मतीन ने लाख मिन्नतें कीं और लाख वादे किये कि फीस के पैसे बाद में दे दूँगा, पर वे नहीं माने। और डॉक्टर अंसारी की डिस्पेंसरी से बाहर निकलकर वह सड़क पर पागलों की तरह दौड़ने लगा।

"क्या भोया म्याँ?"

किसी ने किसी से पूछा तो सब एक-दूसरे का मुँह देखते रहे। मतीन उसी तरह दौड़ता रहा।

वह डॉक्टर गुप्ता के यहाँ गया। डॉक्टर गुप्ता उसकी दशा देखकर घबरा गये और बेचारे भागे आये। बहुत देर तक वे अलीमुन को देखते रहे। फिर दवा के लिए पुर्जा लिखकर चले गये। साथ ही छोटी-छोटी कुछ और पुर्जियाँ मतीन के हाथ में थमा दीं। एक्सरे कराना होगा। थूक-थूक की जाँच भी।

मतीन उदास हो गया।

इकबाल माँ के पास बैठा रो रहा था।

यद्यपि थोड़ी देर बाद ही अलीमुन को होश आ गया था मगर वह लस्त-पस्त हालत में उसी तरह पड़ी थी। आस-पड़ोस के लोग जुट आये थे। 'आज अगर

लतीफ की बीवी होती तो कितनी मदद करती।' अचानक मतीन को कमरुन की याद आयी और वह उसके दुर्भाग्य पर सोचता हुआ बाहर निकल गया।

उसे पैसे चाहिए।

वह सीधे हाजी अमीरुल्ला साहब के यहाँ गया। एक गरीब बुनकर का उसके गिरस्त के अलावा भला इस जहान में और कौन सहारा है? जिस गिरस्त के लिए अपना खून जला-जलाकर रंग-बिरंगी सुनहरी-कामदार साड़ियां तैयार करते हैं, जिनके बल पर गिरस्त का इक़बाल बुलन्द होता है, मुसीबत पड़ने पर वह न काम आयेगा तो कौन आयेगा?

लेकिन हाजी अमीरुल्ला ने और ज्यादा अगता देने से इनकार कर दिया। उन्होंने उसे याद दिलाया कि अभी पिछली ईद का ही कितना कर्ज़ा चढ़ा हुआ है उस पर! और फिर चलते-चलते एक सवाल भी उसके सामने जलते हुए लत्ते की तरह फेंक दिया—

"अउर तोरी सोसइटिया का भई मतीन?"

मतीन भीतर-ही-भीतर झुलस उठा। वह बगैर कुछ बोले ही बाहर आ गया।

सड़क काफी व्यस्त थी। साइकिलों, टालियों, ठेलों और पैदल चलनेवालों से उसकी सँकरी आकृति और ज्यादा सँकरी हो गयी थी। एक जगह चार-पांच लौंडे पान खाकर स्थायी रूप से खड़े थे और उन्हें किसी की भी परवाह नहीं थी। न साइकिलों और टालियों-ठेलों की, न आदमियों की। वे पता नहीं किस बात पर हँस रहे थे और अत्यन्त भद्दे इशारे कर रहे थे। मतीन किसी तरह वहाँ से निकलकर आगे बढ़ा तो हनुमान फाटक चउमुहानी पर उसे हनिफवा मिल गया। पान खाये, मुँह में पीक गलगलाते, लुंगी के टोंक में सस्ती मिल गयी सब्जी लिये, बलुवाबीर की ओर से चला आ रहा था।

अलीमुन की बीमारी के बारे में हनीफ को सब मालूम था, अतः वह खड़ा होकर मतीन के प्रति हमदर्दी जताने लगा और बातों-ही-बातों में उसने उसे एक महत्वपूर्ण राय भी दे दी कि अपना करघा बेच दो। अरे कमाई-धमाई तो होती ही रहेगी। जब जान ही न रहेगी तो पैसा किस काम का? गिरस्त के घर जाकर मजूरी पर बिन लो, पर बाल-बच्चों की जिन्दगी तो सलामत रहे।

और इसके साथ ही उसने यह भी जोड़ दिया कि सोसायटी तो बना ही रहे हो, पैसा मिल जायेगा तो दूसरा करघा गाड़ लेना।

यही नहीं, हनिफवा ने आखिर में यह भी कहा कि अगर वह राजी हो इस बात के लिए तो जितना कोई दूसरा देगा उससे वह दस रुपया ज्यादा देकर उसका करघा खरीदने को तैयार है। पैसा पूरमपूर नकद!

मतीन हनिफवा से नफरत करता था और उसकी बातों में छिपे हुए जहर को

भी समझता था, पर बीवी की गम्भीर हालत ने उसे इस कदर विचलित कर दिया था कि उसकी चेतना कुण्ठित हो गयी थी।

वह हनिफवा के हाथों अपना करघा बेचने के लिए तैयार हो गया।

और देखते-ही-देखते मतीन के घर का करघा हनिफवा के घर में गड़ गया। एक करघा और बढ़ गया वहाँ।

मतीन के घर में करघे की जगह सिर्फ एक गड्ढा शेष रहा और रह गये खुदे हुए करघे के निशान। खटा-खट की आवाज़ गायब हो गयी। घर एक अनन्त सन्नाटे में डूब गया।

और मतीन को लगा कि वह असमय ही बूढ़ा हो गया है।

अगले दिन वह हाजी अमीरुल्ला की कोठी में एक मजूर की हैसियत से गया, थानी पर बिननेवाले बुनकर की हैसियत से नहीं। जहाँ कुछ लोग मजूर से थानी-वाले, थानीवाले से बिक्रीवाले और बिक्रीवाले से 'गिरस्ता' में बदलते जा रहे थे वहीं मतीन था कि थानी पर बिनते-बिनते मजूर हो गया था।

हाजी अमीरुल्ला के यहाँ इधर कुछ करघे और बढ़ गये थे तथा कुछ कारीगर काम छोड़कर मुबारकपुर की ओर चले गये थे। उन्हें मजूरों की जरूरत थी। मतीन की उपस्थिति से वे खुश हुए और गद्दी पर बैठे-बैठे ही उन्होंने एम. एल. ए. साहब को फोन मिलाया कि हमारा काम हो जाना चाहिए।

26

उन्तीस को रमज़ान का चाँद नहीं दिखायी दिया, पर बनारस के अधिकांश बुनकरों ने—विशेषकर स्त्रियों ने—दूसरे दिन से ही रोज़ा रखना शुरू कर दिया है। हो सकता है कहीं दिखायी हो पड़ गया हो। एक रोज़ा अगर छूट गया तो हज़ार रोज़े टूटने का गुनाह होगा।

रोज़े के साथ-साथ कारीगरों का काम भी तेज़ होने लगा।

ईद की तैयारियाँ अभी से शुरू हो गयीं।

फ़जिर बाद लोग कुरान पाक की तिलावत करते हैं और फिर काम में जुट जाते हैं। मौसम भी ठीक है। न ज्यादा गर्मी न ज्यादा जाड़ा। काम के कारण रोज़ा खल नहीं रहा है। प्यास भी नहीं लगती।

"अल्ला मियाँ की मेहरबानी है म्याँ!" लोग एक-दूसरे से कहते हैं और अपने

आपमें तल्लीन हो जाते हैं।

शाम को चार वजे से ही चौराहों पर भीड़ लग जाती है। छित्तनपुरा चउमुहानी पर एक छोटा-मोटा बाज़ार ही लग जाता है। पटरियों पर और ठेलों पर रद्दी किस्म के केले और गले हुए अमरूद बिकने लगते हैं। धनिया-मूली का तो अकाल ही है, पर एकाध जगह कभी-कभी ये चीजें भी दिखायी पड़ जाती हैं और लोग उन पर टूट पड़ते हैं। किसी-किसी ठेले पर मक्खियाँ और हड्डों (बर्रे) से घिरे हुए पिल-पिले खजूर भी कभी-कभी दिखायी पड़ जाते हैं और अचानक ही भीड़ उस ठेले की ओर उमड़ पड़ती है। अरब का मेवा है! इसे हमारे रसूले अरबी ने खाया है, इस-लिए यह सुन्नत है। रोज़ेदार ने अगर खजूर से अफ़्तार किया तो अल्लाह ताला बहुत खुश होंगे, क्योंकि यह उनके हबीब (ह. मुहम्मद) की प्रिय ग़िज़ा रही है।

सूर्यास्त होते-होते बुनकरों का एक दल बगीचों की ओर उमड़ पड़ता है—नाश्ते-दानों में घुघनी-मटर और गोस-रोटी-चावल भरे, दतून करते हुए, टोपी लगाये, शोर मचाते, एक-दूसरे को गरियाते।

"अबे भोसड़ियावाले धीरे काहे नाहीं चलते बे?"

"मगरिब क टेम निगचा गोवा है बे!"

"झँटहियोवाले एही त एकठे रोजदार भयेने नोखे के!"

"तैं ओट्ठिन कहाँ रुक गये बे?"

"इ जबिरवा के तनिक्को ढंग नहिने बे!"

और बगीचे में पहुँचकर खजूर के पत्तों की चटाइयों पर लोग बैठ जाते हैं। अज़ान का इन्तजार शुरू हो जाता है।

अफ़्तार के बाद शौकीन लोग अपने साथ छिपाकर लायी गयी पवित्र ताड़ी का सेवन करते हैं और बड़े-बूढ़े तरावी (रोजे के दिनों में पढ़ी जानेवाली विशेष नमाज़) पढ़ने के लिए मस्जिद चले जाते हैं। बच्चे सेहरी जगाने का स्वांग करते हुए सड़क पर धमा-चौकड़ी मचाने लगते हैं।

मतीन रोज़ा खोलने के बाद खटिया पर लेटता है तो तरह-तरह की बातें उसके दिमाग़ में चक्कर काटने लगती हैं।

हमारी ये हालत आख़िर कब तक रहेगी? क्या हम हमेशा-हमेशा तक गिरस्तों की गुलामी करते रहेंगे? क्या हम अपने पैरों पर कभी नहीं खड़े हो सकेंगे? मोबीन मास्टर एक रोज़ बता रहे थे कि रूस के बुनकर बहुत सुखी हैं। उनके पास ज़िन्दगी की सारी सहूलियतें मौजूद हैं और एक हम हैं कि···

आख़िर वह दिन कब आयेगा जब एक आम मजूर बुनकर भी एक बेहतर जिन्दगी जी सकेगा? वह एक मजूर नहीं, बल्कि एक फ़नकार समझा जायेगा···

और अचानक उसकी निगाह अपने बेटे की ओर घूम जाती है, जो मदरसे के शब्दों को मौखिक याद कर रहा है—सी ए टी कैट, कैट माने बिल्ली। डी ओ जी डॉग, डॉग माने कुत्ता···मतीन देर तक इकबाल को और उसकी उस किताब को देखता रहता है, जिसकी भाषा वह नहीं समझता।

27

दो बजे रात से ही सेहरी जगानेवालों की टोलियाँ निकल पड़ती हैं।

"सेहरी के खानेवालो ! जागो ! सेहरी के खानेवालो···"

इस तरह की आवाज़ें गली-गली में उभरती हैं और स्त्रियाँ उठकर चूल्हा सुलगाने में व्यस्त हो जाती हैं। कोई रात का बचा गोश गरम करती है, कोई पराठे बनाती है, कोई हलुवा और कोई सेवैं की खुर्री तैयार करती है। खड़बड़-खड़बड़ में बच्चे भी जाग जाते हैं और सेहरी खाने में वे भी शामिल हो जाते हैं। रोज़ा भले न रखें पर सेहरी के नाम पर बढ़िया पदार्थ खा तो लें !

मस्जिदों के कंगूरों पर छोटे-छोटे बल्ब लगा दिये गये हैं जो अफ़्तार के वक़्त जला दिये जाते हैं और सेहरी का वक़्त ख़त्म होते ही बुझा दिये जाते हैं। पूरे रमज़ान-भर मस्जिदों में लाउडस्पीकर भी फिट रहते हैं ताकि अज़ान की आवाज़ दूर-दूर तक सुनायी पड़ सके। शाम को जो अज़ान होती है वह इस बात का संकेत है कि अब खाना-पीना शुरू कर देना चाहिए और भोर की अज़ान इस बात की ओर इशारा करती है कि अब खाना-पीना सब बन्द।

इन लाउडस्पीकरों से सेहरी के ख़त्म होते हुए समय की जानकारी भी दी जाती है।

"तीन बजने में पन्द्रह मिनट बाकी हैं। सेहरी के खानेवालो सेहरी खा लो।"

इस तरह की आवाज़ से पूरा माहौल गूँजता रहता है।

बारहवें रोज़े के दिन, जबकि दस रोज़ों के बाद रोज़ों की एक टाँग टूट चुकी थी, सेहरी के वक़्त अचानक एलान होता है—

'पुरानी बाज़ारी के महतो हाजी समामतुल्ला मियाँ का इन्तक़ाल हो गया है। कल असिरबाद माट पर मिट्टी पड़ेगी।'

और इस एलान के साथ ही पुरानी बाज़ारी के लोगों में इस बात पर बहस छिड़ जाती है कि अगला महतो किसे बनाया जाय? यह बहस महतो साहब के

इन्तकाल की सूचना के साथ शुरू होती है और अगले दिन तक जारी रहती है।

कब्रस्तान में उधर हाजी सलामतुल्ला साहब की कब्र खुदती रहती है और इधर नये महतो के प्रश्न पर बड़े-बूढ़ों में बहस होती रहती है।

अन्त में यह तय होता है कि हाजी सलामतुल्ला गिरस्त के मँझले भाई उल्ला तानीवाले को पुरानी बाइसी का महतो बनाया जाय।

कुछ लोग इस पद के लिए उनके बड़े लड़के का नाम भी प्रस्तावित करते हैं, पर उस प्रस्ताव को बल नहीं मिल पाता। अकेले हाजी अमीरुल्ला के पिटिर-पिटिर करने से क्या होता है?

हाजी अमीरुल्ला नाराज हो जाते हैं। उनके दामाद को महतो न बनाया जाना उन्हें बहुत खलता है, लेकिन पंच के आगे उनकी क्या बिसात?

मुहर्रम के बाद हाजी उल्ला तानीवाले को महतो बनाने की रस्म अदा की जाती है।

टोले-मुहल्ले के सभी खास लोग जुटते हैं। एक-से-एक हाजी और एक-से-एक सेठ। उनमें एक काने हाजी साहब भी हैं, जिनका बहुत देर तक लोग अप्रत्यक्ष ढंग से मजाक उड़ाते रहते हैं, फिर सरदार के इशारे से सब खामोश हो जाते हैं।

उल्ला तानीवाले मचिया पर बैठे हैं और उपस्थित लोगों को गहरी नजर से देख रहे हैं। भाव शायद यह है कि अब ये लोग धार्मिक और सामाजिक कार्यों में मेरी मातहती मानने के लिए बाध्य होनेवाले हैं। बुरचोदीवाले अभी तक मुझे कुछ नहीं समझते थे, अब देखें कि मैं क्या हूँ!

पाँचों के सरदार हाजी खलीलुल्ला हाजी उल्ला के सिर पर पगड़ी रखते हैं और घोषणा करते हैं कि ये हाजी साहब आज से पुरानी बाइसी के महतो हुए।

चूँकि रमजान का महीना है, इसलिए वे लोग भी पान-वान नहीं खा पाते जो रोजे से नहीं हैं। लेकिन कोई मलाल नहीं। चउमुहानी पर चलकर चाय पियेंगे। फल्लू चायवाले की दूकान पर पर्दा लटकता होगा।

28

हड़ताल के बाद मीटिंग रखी जाती है।

मीटिंग रउफ चाचा के घर में होती है। नीचे, करघेवाली कोठरी में। जब

सब लोग इकट्ठे हो जाते हैं और अपनी-अपनी बीड़ियाँ सुलगाकर जम जाते हैं तब मतीन शुरू करता है।

वह सोसायटी के बारे में सारी जानकारी देता है। कितने पैसे इकट्ठे हो गये हैं और कितने की अभी कमी है। इसका जिक्र करने के बाद वह सोसायटी की अहमियत के बारे में अपने विचार व्यक्त करता है और चुप हो जाता है।

"कौनो क्याँ का कहे तो ?"

बशीर की ओर से यह सवाल उठता है, जिस पर सब खामोश रहते हैं। यह खामोशी थोड़ी देर तक ज्यों-की-त्यों बरकरार रहती है, फिर रऊफ चाचा उसे तोड़ देते हैं, "होइए न क्याँ, घबराये से काम बनिए? सबुर करो मतीन, सब होइए!"

और मीटिंग बर्खास्त हो जाती है।

लेकिन लोगों का मन इतने से सन्तुष्ट नहीं होता। वे बाहर निकलकर तरह-तरह की टिप्पणियाँ करने लगते हैं।

"इ सोसाइटी-फोसाइटी से का होइए क्याँ ?"

"मतीन का दिमाग खराब हो गौवा है अउर कुछ नाँही।"

"कहो क्याँ, बुरपोशीवाला ऊ बैंक हम्मे पइसा दइए क्याँ ?"

"फिर दइए त ऊ कर्जा न होइए क्याँ ?"

"अउर का, ओके फिर अदा भी त करे के होइए।"

"अउर नाँही का फोकट मे मिल जइए !"

"फिर एतनी आसानी से मिलिए क्याँ पइसा ?"

"अरे गिरस्त लोगन से बचिए तब न मिलिए !"

"अउर नाँही तका !"

"क क्याँ सुसाइटी बन जइए त हमरो माल सिंगापुर-बैंकाक मे बिकिए ?"

"ख्वाब त देखो सेख !"

"अरे पहले त बनने मुसकिल है।"

"एकमें बड़ा झंझट है क्याँ !"

और सब बीड़ी फूंकते हुए लुंगी का टोंका ऊपर उठाये हुए, अपनी-अपनी राय से अपने-अपने मन में खुश होते हुए अपने-अपने घरों को चले गये।

सोसाइटी-फोसाइटी सब बेकार है !

लेकिन मतीन को चैन नहीं। वह सीधे घर नहीं गया। जो लोग मीटिंग में नहीं आये थे और जिन लोगों ने अब तक पैसा देकर दस्तखत नहीं किया था, उनके घरों में वह गया और उन्हें समझाने की उसने कोशिश की। लोगों ने अपने-अपने हाथों

साहब, अपने-अपने सिरस के प्रति अपना-अपना भय प्रदर्शित किया तो मतीन ने उन्हें आश्वासन दिया और अपना उदाहरण पेश किया कि मैं भी तो तुम्हीं लोगों के समान हूँ।

फिर वह घर आया और लेट गया।

अलीमुन खुख्-खुख् खाँसती रही और वह सोचता रहा।

इकबाल गहरी नींद में सो रहा था।

29

इधर कई रोज से अलीमुन की तबियत टनमन हो गयी है। आज वह सुबह-सुबह होंड़ी-चूली करके बशीर के घर चली गयी थी और रेहनवा से देर तक बतियाती रही थी। लेकिन रेहनवा ज्यादातर ख़ामोश ही रही। लेकिन बीच-बीच में उसकी छोटी बहिन सुल्तनिया उसकी हँसी भी उड़ा देती थी, पर वह कोई जवाब नहीं देती थी।

रेहनवा की माँ ने बताया कि अबकी उरस में इसे मखदूम शाह ले जाना है। आलमपुरा के मोली साहब ने बताया है कि यह वहीं जाकर ठीक होगी। कोई ख़राब पी है।

मखदूम शाह की मजार जौनपुर से आगे फ़ैज़ाबाद जिले में अकबरपुर के पास पड़ती है। अलीमुन एक बार वहाँ जा चुकी है। जब पहले-पहले उसके मुँह से ख़ून गिरना शुरू हुआ था तो एक मोली साहब ने उसे भी बताया था कि जिन्न का असर है। और वह रऊफ़ चाचा की बीवी के साथ गयी थी मखदूम शाह।

उस यात्रा की याद करते ही उसके रोएँ खड़े हो जाते हैं। बाप रे! इतनी परेशानी, इतनी परेशानी कि कहते नहीं बनता!

वे लोग एक रिजर्व बस से गयी थीं। घर से नौ बजे रात को ही मठरी-मुटरी बाँधकर सिधा-पिसान लेकर निकल पड़ी थीं। बस भदहूँ[1] पर से जानेवाली थी। वहाँ सड़क के किनारे बैठे-बैठे रात के बारह बज गये तब जाकर वह रिजर्व बस आयी। फिर उसमें इतने लोग भर गये कि साँस लेने को जगह नहीं। बस छूटी दो बजे रात। नींद के मारे आँखें झपी जाती थीं, पर सोयें कैसे? कुछ लोग तो सीटों

1. बनारस का एक मुहल्ला।

के बीच जो रास्ता होता है, वहीं बिछा-बिछाकर गुड़क गये।

सुबह क़रीब आठ बजे बस मख़दूम शाह पहुँची। वहाँ का तो मंज़र ही निराला था। मज़ार के चारों ओर खेत और खेतों में झोंपड़े बने हुए थे। एक-एक झोंपड़े का किराया सौ-सौ रुपया। कई लोग मिलकर एक-एक झोंपड़ा ले रहे थे।

दोपहर होते-होते इस क़दर भीड़ हो गयी कि या अल्लाह! सुई गिरे तो बीच में ही अटक जाय। जितनी दुखआनेवाली औरतें उतनी ही देखनेवाली। रात-भर हो-हल्ला। सुबह औरत-मर्द एक साथ जंगल में पाख़ाना कर रहे हैं और कोई शर्म नहीं। चारों ओर पाख़ाना-ही-पाख़ाना! पेशाब-ही-पेशाब! उफ़्! बदबू से नाक नहीं जाती थी।

थोड़ी दूर पर ही एक तालाब है वहाँ, जिसके पानी को 'नीर' कहा जाता है। उसी के पानी से नहाना और उसी का पानी पीना। लेकिन उसमें पाँव डालने की इजाज़त नहीं है। पानी बाहर ले लो, फिर नहाओ। 'नीर' तो मख़दूम शाह का है, उसे नापाक करनेवाला जल जाता है।

लोग 'नीर' का पानी पीते, अपने-अपने भूत से खेलते और गन्ना तथा लाची-दाना की मिन्नत लेकर अपने-अपने घरों को वापस लौट जाते।

अलीमुन ने तो एक ही बार जाकर कान पकड़ लिये कि अब नहीं जाना है भूत झड़वाने, लेकिन आमिना को वह मना नहीं कर सकी। रेहाना की तकलीफ़ देखी भी तो नहीं जाती।

वह काफ़ी देर तक रेहाना के पास बैठी रही, फिर लौट आयी। घर आकर देखा कि चौकी पर क़मरुन बैठी हुई है और उसका इन्तज़ार कर रही है। इक़बाल स्कूल चला गया है।

अलीमुन खिल उठी, लेकिन क़मरुन का उतरा हुआ चेहरा देखकर अगले क्षण ही वह बुझ गयी।

क़मरुन ने रो-रोकर अलीमुन को बताया कि उसे लतीफ़ की और बच्चों की बहुत याद आती है। मैके में उसका मन नहीं लगता। रह-रहकर अपना घर उसकी आँखों में नाच उठता है।

फिर उसने यह इच्छा ज़ाहिर की कि लतीफ़ अगर उसे रखने के लिए तैयार हो तो वह इसी वक़्त उस घर में चली जायेगी। लेकिन अलीमुन ने उसे समझाया कि ऐसा सोचना अब बेकार है। बग़ैर 'हलाला' के लतीफ़ के साथ वह नहीं रह सकती। पहले किसी से उसका निकाह हो, वह कम-से-कम एक रात उस आदमी के साथ बीवी की तरह रहे और फिर वह आदमी उसे तलाक़ दे दे, तभी वह दुबारा निकाह पढ़कर लतीफ़ के साथ बीवी बनकर रह सकती है—वरना नहीं! तलाक़ का क़ानून ऐसा-वैसा थोड़े है!

क़मरुन का दिल बैठ गया। इतनी ज़लालत के लिए ख़ुद को तैयार करना

उनके लिए मुमकिन नहीं था।

लेकिन अलीमुन ने जब यह बताया कि लतीफ भी अब पछता रहा है और वह भी ऐसा ही कुछ सोच रहा है तो कमरुन का दिल तेज-तेज धड़कने लगा। वह फिर रोने लगी।

अलीमुन ने उसे सान्त्वना दी और चूली-दुआर के पास से उसके बच्चों को दिखा दिया।

अख्तरुनिया बर्तन मांज रही थी। कुद्दूस अपनी बहिनी के पास गुमसुम बैठा हुआ था और गुदवा खाली एक मैली-सी बुशर्ट पहने नाक बहाये खड़ा था। छोटी लड़की तहरुनिया धुले हुए बर्तन उठा-उठाकर भीतर रख रही थी। कमरुन का दिल भर आया। उसके जी में आया कि अख्तरुनिया को पुकारे और पूछे कि अब्बा का क्या हाल है? भइया क्या कर रहा है? लेकिन हिम्मत नहीं हुई और वह बुक्का फाड़कर रोने लगी।

अलीमुन ने उसे सँभाला और वहीं नगोल[1] पर बैठाकर अपने दुपट्टे से उसके आंसू पोंछने लगी, "न रो कमरुन न रो।"

वह समझाती जाती थी और कमरुन रोती जाती थी। फिर न जाने क्या हुआ कि अलीमुन भी रोने लगी और उन्हें चुप करानेवाला वहाँ कोई नहीं बचा।

30

चाय के साथ बासी रोटी खाकर मतीन जैसे ही काम पर जाने के लिए निकला, सामने से आता हुआ अल्ताफ दिखायी पड़ गया। मतीन का जी खुश हो गया। लगता है बाकी पैसे देने के लिए आया है अल्ताफ, लेकिन वह आया था अपने पैसे वापस मांगने। न जाने कब तक यह गुसाइटी-फुसाइटी चलेगी, कोई ठिकाना है? बिला वजह उसके बीस रुपये फँसे हैं। हाजी रशीद का इतना कर्जा चढ़ गया है कि वहाँ से अब कुछ भी मिलना मुश्किल हो गया है। और काम है कि उससे होता नहीं।

मतीन ने अल्ताफ को नीचेवाली कोठरी में थोड़ी देर तक बैठाया, एक लड़के से पान मँगवाकर खिलाया और समझाया कि उसे ऐसा नहीं करना चाहिए। पैसा

1. छत

बड़ी चीज नहीं है, बड़ी चीज है एक मकसद। इस मकसद के साथ उस जैसे अनेक गरीब बुनकरों का भविष्य जुड़ा हुआ है। और अगर सोसायटी बन गयी तो वह दिन जल्दी ही आयेगा जब हर अंसारी भाई के पास अपना करघा होगा, अपना मकान होगा और किसी भी गिरस्ता का उस पर शासन नहीं होगा। एक गरीब बुनकर के माल का भी तब एक्सपोर्ट हो सकेगा।

अल्ताफ़ को मतीन की बातें कुछ-कुछ समझ में आयीं और वह बिना कुछ बोले ही उठकर चलने लगा, तब मतीन ने उससे आहिस्ता से कहा कि बाक़ी पैसों का इन्तज़ाम भी वह जल्दी से कर दे, ताकि इस नेक काम में देरी न हो।

अल्ताफ़ चला गया।

मतीन भी बाहर निकला, लेकिन आज पहली बार ऐसा हुआ कि उसकी इच्छा काम पर जाने की नहीं हुई और वह रऊफ़ चचा के घर की ओर चल पड़ा।

गलियों में टसर की तानियाँ फैली हुई थीं और लोग उनके धागों को सुलझाने में व्यस्त थे। मतीन भी अपने लड़के शरीफ़ को लेकर एक गली में तानी सुलझा रहा था।

गलियों में, कब्रस्तानों में और हर खाली जगह में तानियाँ-ही-तानियाँ नज़र आ रही थीं। धागे-ही-धागे, लोग-ही-लोग। ऐसा लगता था जैसे हर बुनकर एक उलझा हुआ ताना बनकर रह गया है।

मतीन उन गलियों को पार करता हुआ जब रऊफ़ चचा के घर के सामने पहुँचा तो थोड़ी दूर से ही उसने देखा, नगोल पर खड़ी नजबुनिया किसी बात पर हँस रही थी। उसने सफ़ेद रंग का इज़ार पहन रखा था और गुलाबी रंग की पेरानी। चेहरे पर एक अजीब-सी अल्हड़ता नाच रही थी।

मतीन का दिल धड़-धड़ धड़कने लगा।

'ई रऊफ़ चचा की बिटीया के का हो गोवा है जो द हम्मे देख के एसार के हँसेलो।' उसने मन-ही-मन सोचा और उसकी आँखों के सामने खून की उल्टी करती हुई अलीमुन का चेहरा नाच गया।

वह काँप उठा। कहीं ऐसा तो नहीं है कि रोगग्रस्त अलीमुन से उसका युवा मन तृप्त नहीं हो पा रहा है और इसलिए वह नजबुनिया की ओर आकर्षित हो रहा है? उसने थोड़ी देर तक इस सवाल पर विचार किया, फिर एक दूसरा सवाल उसके दिमाग में उभरा कि क्या उस जैसे एक लड़के के बाप की ओर नजबुनिया जैसी कोई लड़की भी आकर्षित हो सकती है? और दोनों ही सवालों में उसे कोई तालमेल नज़र नहीं आया।

तब झटके से उसने अपने सारे सवालों को परे हटा दिया और रऊफ़ चचा के

पास जाकर बैठ गया।

रऊफ़ चचा का भी कोई धागा उलझ गया था और वे उस वक़्त उसी को सुलझाने में तल्लीन थे।

"कहो मतीन, ख़ैरियत त है न? कइसे चलेव?"

उन्होंने चश्मे के भीतर अपनी आँखों को झिलमिलाते हुए और उँगलियों से धागों को सुलझाते हुए उससे पूछा तो उसने अल्ताफ़वाली घटना सुना दी और साथ ही सारी समस्या को उनके सामने नये सिरे से रखा।

रऊफ़ चचा ने चश्मा उतारा, धागों को उसी तरह छोड़ा, आँखें साफ़ की और बोले, "अब देरी करना ठीक नहि ने। जो कुछ करो जल्दी करो। केतने पइसा की कमी है?"

मतीन ने उनके सामने सारी स्थिति स्पष्ट की तो वे फ़ौरन खड़े हो गये और मतीन से बोले कि तुम अपना काम देखो, इसका जिम्मा मेरे ऊपर।

मतीन भी खड़ा हो गया।

तभी सीढ़ियों पर आहट हुई और उसने देखा, नजबुनिया खड़ी है।

"अब्बा, मतीन भइया के अम्मा बुलावे तो।"

उसने धीरे-से यह सूचना दी और उछलती हुई-सी ऊपर चली गयी। मतीन भी धीरे-धीरे सीढ़ियाँ चढ़कर ऊपर चला गया।

वहाँ वह देर तक नजबुनिया की अम्माँ के पास बैठा रहा और उस पूरे समय तक वे उससे अलीमुन की हालत के बारे में पूछती रहीं। नजबुनिया चूल्ही-दुआर में व्यस्त रही, लेकिन कनखी से वह बार-बार इधर देख लेती थी।

मतीन की इच्छा हुई कि वह नजबुनिया की अम्माँ से बात चलाये, कि अब वह दूसरी शादी करने का विचार कर रहा है, क्योंकि अलीमुन से अब काम-धाम होता नहीं, उसे बड़ी तकलीफ़ होती है और उसे ख़ुद भी काफ़ी दिक्कत हो रही है। लेकिन ऐसा सोचते वक़्त वह बुरी तरह डर गया और ख़ामोश रहा।

"अरे नजबुनिया चा-वा लियावेली के नाहीं?" नजबुनिया की अम्माँ वहीं से चिल्लायीं तो नजबुनिया मतीन की ओर देखकर फिर हँस पड़ी और थोड़ी ही देर बाद वह काँच के एक गिलास में चाय लेकर हाज़िर हो गयी। एक हाथ से अपना दुपट्टा ठीक करते हुए उसने चाय का गिलास मतीन के पास रखा और फिर चूल्ही-दुआर में जाकर बैठ गयी।

मतीन का दिल फिर धड़-धड़ धड़कने लगा।

कल ईद है। हालांकि चाँद नहीं दिखायी पड़ा है, पर गाँवों के चार बुजुर्गों ने गवाही दी है कि उन्होंने अपनी आँखों से ताड़ के पेड़ों के ऊपर ईद का चाँद देखा है और मुफ्ती अब्दुल रज़्ज़ाक अंसारी ने एलान कर दिया है कि कल ईद मनायी जायेगी, लेकिन नयी आबादीवालों की ईद परसों होगी। वे इस ऐलान को गलत मान रहे हैं, क्योंकि जब चाँद दिखायी ही नहीं पड़ा तो ईद कैसी? रेडियो में भी कोई खबर नहीं है। अरे पाकिस्तान में चाँद हो जाता तो भी एक बात थी, लेकिन वहाँ से कोई एलान नहीं है। पर ज़्यादातर लोग मुफ्ती साहब के ऐलान को सही मान रहे हैं। हदीस में यह साफ आया है कि अगर अब्र (बादल) हो या और किसी वजह से कहीं चाँद न दिखायी पड़े और दो नमाज़ी परहेज़गार लोग चाँद देखने की गवाही दे दें तो चाँद मान लिया जायेगा। और यहाँ चार-चार लोगों ने गवाही दी है, इसलिए एलान को न मानने का सवाल ही नहीं उठता।

और ईद की चहल-पहल शुरू हो गयी है। गोश्तबाड़ों और चिकवों की दुकानों में गोश्त खरीदनेवालों की भीड़ लग गयी है। कल तो कोई दुकान खुलेगी नहीं। जो कुछ खरीदना है, रात में ही खरीद लो। सबसे ज़्यादा भीड़ गोश्तबाड़ों में है। उधर अमरईपुर का और इधर मदोदरी का गोश्तबाड़ा अंसारी आदमियों से भरा हुआ है। लोग मुर्गी का टोकरा उठाये, टोपियाँ लगाये, झोला लिये भीड़ में खड़े हैं और कसाइयों से झगड़ रहे हैं। किसी को दो किलो चाहिए, किसी को पाँच किलो और किसी को आठ किलो। किसी को साथ में कलेजी भी चाहिए और किसी को बट। भैंस का एक-एक हिस्सा आज महत्त्वपूर्ण हो गया है।

इधर दालमण्डी में इतनी भीड़ है कि न साइकिल जा सकती है न रिक्शा। चौक थाने के सामनेवाले सेठ गुलजारीलाल ने शहर के सम्मान्य मुसलमानों को आज आखिरी रोज़े की अफ्तारी भी करायी है। और मगरिब के बाद से ही भीड़ बढ़ती चली गयी है।

दालमण्डी आज [illegible] की तरह सजी हुई है। इस मण्डी में दाल कभी नहीं बिकी, हाँ रूप का व्यापार ज़रूर हुआ था किसी ज़माने में। अब तो मुसलमानों का यह बहुत बड़ा बाज़ार हो गया है।

चौक से जैसे ही अन्दर घुसिए, सजी हुई दुकानों से आँखें चुंधिया उठती हैं। ज़्यादातर भीड़ लुंगियों की दुकानों पर है। सारे अंसारी भाई अपने लिए और अपने बच्चों के लिए लुंगियाँ खरीद रहे हैं। कुछ पढ़े-लिखे लड़कों ने चालू फैशन के अनुसार पहले से ही बेलबाटम सिला रखे हैं। अब तो बेलबाटम पहनकर भी नमाज़ पढ़ी जा सकती है, मौलवियों ने इसे जायज़ कर दिया है। पर लुंगियों की

ग्रस्त फिर भी ज्यादा है।

लुंगियों की दूकानों के बाद यह भीड़ टोपियों की ओर बढ़ती है, फिर जूतों-चप्पलों की ओर। दालमण्डी की सँकरी सड़क के किनारे-किनारे जूतों-चप्पलों की तो जैसे इमारतें खड़ी हो गयी हैं।

कुछ लोग रूमाल, गंजी (बनियान) और मोजे खरीदने में भी व्यस्त थे और कुछ लोग इत्र और सेण्ट की दूकानों में खड़े होकर एक-एक इत्र को उँगलियों के ऊपर रगड़कर उनका परीक्षण कर रहे हैं।

"ई का है म्याँ? घास! खस एत्तर के होते म्याँ?"

लोग एक-दूसरे से पूछते हैं और कुछ लोग इस चक्कर में न पकड़कर यह तय करते हैं कि पीली कोठी पर चलकर तेल की दूकान से 'इत्रे मजमूआ' खरीद लें, छुट्टी।

और फिर लोग भैंस के कीमे की पकौड़ियाँ खाने में जुट जाते हैं।

वहाँ से निकलते हैं तो खोवा गली की ओर रुख करते हैं।

"खोवा बहुत महँगा हो गोवा है म्याँ, बीस रुपिया किलो!"

कोई रास्ते में सूचना देता है तो भीड़ की चाल में और तेजी आ जाती है। कहीं और न महँगा हो जाय, वरना सब मजा किरकिरा हो जायेगा। सेवई में अगर मन-माफिक खोवा न पड़ा तो किस काम का? फिर किमामी सेवई का मतलब ही क्या रहा?

कुछ लोग खोवा खरीदने के बाद फिर दालमण्डी में घुस जाते हैं। सेवई की प्यालियाँ तो खरीदी ही नहीं गयीं। पिछले सालवाली तो टूट-फूट गयीं। कुछ लोग पूरा-का-पूरा सेट ही खरीद लेना चाहते हैं, पर इतने पैसे ही नहीं हैं।

मतीन एक क्राकरी की दूकान के सामने खड़ा हो जाता है। दूकानदार ने कुछ रिजेक्टेड प्यालियाँ सड़क पर रखवा दी हैं और एक लड़का उन्हें सस्ते दामों में बेच रहा है। किसी प्याली के फूल झड़ गये हैं तो किसी प्याली का बार्डर थोड़ा टूट गया है। कोई प्याली पूरी-की-पूरी चटक गयी है, पर फूटी नहीं है और कोई प्याली टेढ़ी हो गयी है। मतीन उनमें से चार प्यालियाँ छाँट लेता है और अगल-बगल देखकर कि कोई उसे देख तो नहीं रहा है, उन्हें अपने झोले में डाल लेता है। फिर झट से पैसे देकर वहाँ से गायब हो जाता है।

हाजी अमीरुल्ला ने उसे अगता देने से इनकार कर दिया है और वह मन मार-कर रह गया है। अलीमुन के लिए उसने एक सूती धोती अलविदा[1] वाले दिन ही खरीद दी है और अपने लिए एक लुंगी ले ली है। कमीज पुरानी ही चल जायेगी। इकबाल ने लुंगी पहनने से इनकार कर दिया, इसलिए उसके वास्ते पैजामा बना है

---

1. रमजान का आखिरी जुमा।

मल्लाहुन के पास अपना पड़ाव डाला—इसीलिए वहाँ जो मुहल्ला बसा उसे औरंगाबाद कहते हैं—और रातों-रात मन्दिर तुड़वाकर उसकी जगह मस्जिद बनवा दी गयी। ज्ञानचन्द और उसकी बेटी वापी का ताल्लुक होने की वजह से ही यह मस्जिद ज्ञानवापी की मस्जिद बोली जाती है।"

कहा जाता है कि मन्दिर जब टूट गया और उसकी जगह मस्जिद तैयार हो गयी तो बनारस के किसी फारसी दाँ ब्राह्मण ने एक शेर कहा :

बबीं करामते बुतख़ाना ए मरा ऐ शाह !
चरले ख़राब शवद ख़ानए ख़ुदा गरदद !

यानी, ऐ बादशाह ! मेरे बुतख़ाने का चमत्कार तो देखो कि यह अगर टूटता है तो ख़ुदा का घर हो जाता है।

रऊफ़ चचा के पास इस तरह के बहुत सारे किस्से हैं, जिन्हें वे वक़्तन-ब-वक़्तन सुनाया करते हैं।

नमाज पढ़ने के बाद मतीन सीधे घर लौटा और सेवई खाकर मुहल्ले में निकल गया। अलीमुन भी इकबाल को लेकर नजबुनिया से मिलने चली गयी। आज उसे कमरुन की बहुत याद आयी और लतीफ के बच्चों को बुलाकर उसने उन्हें त्योहारी के चार-चार आने दिये। रात को लतीफ और मतीन ने एक साथ खाना खाया। खाने के बाद लतीफ ने दबी जबान से यह इच्छा प्रकट की कि वह दूसरी शादी करना चाहता है। मतीन ने आश्वासन दिया कि इस बारे में वह विचार करेगा और पान खिलाकर उसे विदा किया।

लतीफ जब चला गया तो मतीन देर तक सोचता रहा कि आख़िर इसकी वह अकड़ कहाँ चली गयी, जो कुछ साल पहले इसमें मौजूद थी। इसके पास अपना करघा है, अपना रोजगार है, लड़का भी माशा अल्लाह काम से लग गया है, लेकिन इसे कौन-सी कमी है कि यह भीतर से टूटता चला जा रहा है? लगता है, औरत के बग़ैर यह आदमी आधा ख़त्म हो चुका है। बिन घरनी घर भूत का डेरा।

और मतीन ईद के दिन भी हल्का-सा उदास हो गया।

32

कई दिनों की छुट्टी के बाद अंसारी स्कूल आज खुला है, लेकिन पढ़ाई-वढ़ाई नहीं हो रही है। आज मन लगता है।

अंसारी स्कूल में ईद की लम्बी छुट्टियाँ होती हैं। ईद से लेकर छोटी ईद तक। छोटी ईद, ईद के सातवें दिन पड़ती है। इस दिन मेंडुवाडीह में शेख सैयद शाह बनारसी का उर्स होता है और मेला लगता है। इस मेले से छुट्टी पाकर ही लोग काम धन्धे में लगते हैं। इस बीच बुनाई का काम भी प्रायः नहीं होता। मुर्री बन्द रहती है।

अंसारी स्कूल बनारस के बुनकरों का अपना स्कूल है, जहाँ दर्जा एक से लेकर इन्टर तक की पढ़ाई होती है। खूब लम्बा-चौड़ा मैदान, भव्य इमारत, सामने गुलमोहर के पेड़…बनारस के बुनकर बच्चों को तालीम-याफ्ता बनाने के लिए यह स्कूल अपनी पूरी ताकत से मानो जुटा हुआ है, लेकिन लड़के हैं कि पढ़ना ही नहीं चाहते!

इस वक्त मैदान में इक्का-दुक्का लड़के खेल रहे हैं, बाकी भाग गये हैं। कुछ मेला घर और कुछ लोग यमुना टाकीज। स्कूल के कई मास्टर चाय पीते बैठे हुए हैं। प्रिंसिपल साहब आफिस में ही चाय मँगा लिया करते हैं। इस वक्त वे चाय के साथ गरम-गरम समोसा खा रहे हैं और सामने बैठे हुए मास्टरों से बतिया रहे हैं। चाय और समोसा इन मास्टरों के आगे भी मौजूद है। चर्चा किसी प्रबन्धकीय विषय पर हो रही है।

मैदान में आसपास के कुछ लड़के लुंगियाँ पहने, हाथों में डण्डे लिये घुस आये हैं और अपने साथ एक गधे को भी लेते आये हैं। आगे-आगे गधा दौड़ रहा है और पीछे-पीछे लड़के। कुछ मास्टर इस मनोहर दृश्य को बरामदे में खड़े होकर देख रहे हैं और कुछ लोग आफिस से चाक लेकर इस्तिन्जा (पेशाब) करने के लिए पीछे के शौचालय की ओर चले जा रहे हैं। बधना शायद गायब हो गया है और मिट्टी का ढेला कौन जाय ढूँढ़ने जबकि चाक मौजूद है।

अचानक एक रोते हुए लड़के को लेकर कुछ लुंगीधारी लड़के प्रिंसिपल आफिस में पहुँचते हैं और शिकायत करते हैं कि इसे दो लड़कों ने बुरी तरह पीटा है।

'क्या नाम है तुम्हारा?"

प्रिंसिपल साहब डाँटकर पूछते हैं तो लड़का डर जाता है लेकिन रोते-रोते वह अपना नाम बताता है—

"इकराम अहमद अंसारी!"

"तुम्हारे बाप का क्या नाम है?"

"अब्दुल मतीन अंसारी!"

"तुमने क्या गलती की थी?"

"कुछ नहीं मेरे मारे ने, हम कुछ [illegible]

फुटिन[1] ने लिहिस है…"

इफ़्तान आँख मलते-मलते बताता है तो वहाँ उपस्थित सभी मास्टर हँस पड़ते हैं और उसे यह कहकर भगा दिया जाता है कि कल उन लड़कों को सजा दी जायेगी।

इफ़्तान रोता-रोता घर चला जाता है। अलीमुन उसका मुँह धुलाती है। ईद की बची हुई सेवईं देती है और अंगारी स्कूल को चन्द गालियाँ देकर लेट रहती है।

33

"सलावाले कुम !"

"वालेकुम सलाम ! ख़ैरियत त है न ?"

हनीफ़ ने लतीफ़ के सलाम का उत्तर देने के साथ-साथ उसकी ख़ैरियत भी पूछी तो लतीफ़ को झुरझुरी चढ़ गयी। मन की बात इससे कहे या नहीं, बस यही सोचता हुआ वह क्षण-भर खड़ा रहा कि हनीफ़ ने दूसरी गोली दाग दी, "का ऊ मतिन्वा के चक्कर में पड़े हो क्यों ?"

और फिर लगा अपनी तरक्की का बढ़ा-चढ़ाकर वर्णन करने। बीच-बीच में हाजी अमीरुल्ला साहब की तारीफ़ भी हाँके जा रहा था।

लतीफ़ के कदम थोड़ी देर के लिए डगमगाये और वह सोचने लगा कि अपनी तरक्की का कोई उपाय क्यों न पूछ ले उससे, लेकिन फिर वह सँभल गया। इसकी तरह वह नकली साड़ी को असली बनाकर नहीं बेच सकता।

हनिफ़वा के बारे में यह मशहूर हो गया था कि वह नकली कतान लगाता है और गोलघर में घूम रहे कम पैसेवाले विदेशियों—विशेषकर हिप्पियों—को फँसा-कर दुगने दामों में उन्हें बेच दिया करता था। हिप्पी इन साड़ियों को बाहर भेज दिया करते थे। इस काम में वह रामभजन दलाल की मदद भी लिया करता था। जो असली काम की साड़ियाँ होती थीं वे हाजी अमीरुल्ला की कोठी में जाती थीं वहाँ से छँटी हुई साड़ियाँ बाहर चली जाती थीं। इस तरह 'बनारसी साड़ी' को बदनाम करने में हनिफ़वा-जैसे लोग अपनी महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा कर रहे थे।

---

1. कलम, फाउन्टेन पेन।

मजीद की दबाव में भी वह काम नहीं कर सकता। अरे, आधा पेट खायेंगे पर बेईमानी नहीं करेंगे। खुदा के आगे मुँह दिखाना है कि नहीं?

उसने हनिफवा की बातों का हूँ-हाँ से जवाब दिया और बतियाने लगा। लेकिन कैसे बताता सकता था भला? उसकी समझ में जो गाड़ीवाली देरी दबी थी, वह उसे परेशान किये जा रही थी। हनिफवा भी उसकी परेशानी को समझता था। मजीद को मजबूर हालों में गाड़ी बेचनी थी। छोटका के लड़के की तबीयत कई दिनों से खराब चल रही है। दवा के लिए पैसे नहीं हैं। बार-बार बच्चों का खर्च और ऐसी महँगाई। अख्तरनिसा भी अब बड़ी हो रही है'' सहसा सोचते-सोचते वह रुक गया। अभी उसे दूसरी शादी करनी है। अख्तरनिसा बड़ी हो रही है, सोचते ही वह खुद को बूढ़ा महसूस करने लगता है। सरिफवा की लम्बाई देख-देखकर उसे कोफ्त होने लगी है। अपने सिरों में पकते हुए बालों के कारण उसने आइना देखना बन्द कर दिया है।

"गड़िया बेचि हो?"

हमीद ने सवाल किया तो मजीद चौंक पड़ा। बेचनी तो है ही गाड़ी। यहाँ बाजार में एक हजार नकद पैसा मिलेगा। अगर हनिफवा नकदी देकर खरीद ले तो अच्छा ही है।

और गाड़ी उसने बेच दी। सोच रहा था वह कुछ ज्यादा ही दाम देगा, पर ऐसा नहीं हुआ। वह भी कमरुद्दीन की तरह ही बेरहम जोंक निकला। तीन सौ निकालकर हथेली पर रख दिये।

गोलघर में भीड़ बढ़ती ही जा रही थी। रामभजन आज दिखायी नहीं पड़ रहा था। 'खरे' और 'व्यवहार' की भाषा में व्यापार चल रहा था। हनिफवा की आँखें रामभजन को ढूँढ़ रही थीं। अचानक वह चाय की एक छोटी-सी दुकान पर खड़ा हुआ दिखायी पड़ गया।

"नमस्कार!"

"नमस्कार भइया नमस्कार! कहो, सब ठीक हो ना?"

"ठीक कहते?"

"का कहाई भइया, बजार बड़ा मंदा है''चाय पिया, ए बच्चा! एक टे चाय अउर दिहें न ''अउर सुनावा!"

"ई रुपयो रहे।" कहकर हमीद ने मजीद से ली गयी गाड़ी रामभजन को थमा दी और फिर फुसुर-फुसुर कुछ बतियाने लगा, उसे कुछ याद दिलाने लगा। रामभजन को थोड़ी देर बाद सारी बातें समझ में आयी और तब वह खिल उठा।

"हम त तोहसे पहल वै कहले रह ली।" कहकर उसने मुंह का पान थूका और लड़के ने चाय का पुरवा लेकर पीने लगा। हनीफ ने भी चाय ले ली।

लेकिन तभी कोई ग्राहक दिखायी पड़ गया और रामभजन नाली में पुरवा फेंककर दौड़ पड़ा। हनीफ चाय पीता खड़ा रहा।

34

नजबुनिया नक़ाब डालकर बाहर निकल जाती है।

दरअसल आज उसका जी घर में लग ही नहीं रहा है। सुबह कतान फेरने बैठी तो बार-बार कतान उलझने लगा और खाना पकाने गयी तो चीनी मिट्टी का एक प्याला तोड़ बैठी। अम्मां बुखार से उठी हैं, इसलिए चिड़चिड़ी हो गयी हैं। उन्होंने इस पर उसे कुछ डांट-डपट दिया तो वह उदास हो गयी। उदास होने पर न जाने क्यों उसे मतीन की याद आयी। उसका उदास चेहरा, उदास चेहरे पर जाड़े की धूप की तरह फैली हुई हंसी और उसके उलझे हुए बाल। एकबारगी उसका जी गनगना गया।

हल्की-हल्की सर्दी शुरू हो गयी है और धूप अब अच्छी लगने लगी है। छतों पर जुलाहिनें कतान ले-लेकर बैठ गयी हैं और चारों ओर एक अजीब-सी चहल-पहल शुरू हो गयी है। लोगों ने अपने स्वेटर निकाल लिये हैं। औरतों ने शाल ओढ़ना शुरू कर दिया है। नादान लड़कियां ऊन-सलाई ले-लेकर बुनाई सीखने के लिए ट्रेण्ड लड़कियों की तलाश में निकल पड़ी हैं।

नजबुनिया ने अपनी अम्मां से बहाना किया कि भउजी के यहां जायेगी, लेकिन न जाने क्यों वहां जाने की इच्छा नहीं हुई। हालांकि बावजूद इसके कि हनिफवा वहां नहीं आता, नजबुनिया कभी-कभार उसके घर चली जाती है और इसके लिए उसे मना नहीं किया जाता। तो भी आज वहां जाने का मन नहीं हुआ। फिर उसने सोचा कि अलीमुन का हाल ले आये, लेकिन अलीमुन के बारे में सोचते ही मतीन की शक्ल सामने आ गयी और वह एक अजीब-से अपराध-बोध में डूबने-उतराने लगी।

थोड़ी देर तक नजबुनिया यूं ही निरुद्देश्य-सी चलती रही, फिर अचानक उसे याद आया कि रेहनवा से मिले बहुत दिन हो गये, पता नहीं उसका क्या हाल है? और वह बशीर के घर में घुस गयी।

रेहाना उस वक्त मशीन पर अपनी अम्मी का जम्फर सिल रही थी और मशीन की एक तरफ़ एक लड़की को सलाई से ऊन बुनना सिखा रही थी।

इस लड़की को देखकर भला कौन कहेगा कि इसे दुख लगा है? सिलाई घर-घर में, कढ़ाई इससे करा लो, बुनाई पर लिखा दे, आखिर किस बात की कमी है इसमें? बस गुमसुम बनी रहती है और कभी-कभी हँसा भी देती है, यही न! लेकिन ऐसा क्यों होता है? इसके मन में वह कौन-सी बात है, जिसे लोग नहीं समझ पा रहे हैं?

नजबुन्निसा मैके के साथ यह सब सोच गयी और रेहाना के सामने पहुँचकर मज़ाक ठमककर खड़ी हो गयी।

"सलाम आलेकुम!"

"वालेकुम सलाम! आओ बैठो!"

रेहाना मुस्करायी। उस-सलाईवाली लड़की को उसने भगा दिया और मशीन को एक ओर सरका दिया।

नजबुन्निसा बैठ गयी और अपनी आदत के अनुसार खिलखिलाकर बोलने लगी, "अरे रेहनवा, महिनवों से हमसे बोलती भी नाहीं अउर दुसरो दिन तो है हमरे घर नाहीं अयती।"

"का रे तैं तो अइसा कहे लो कि जइसे तोरी दोस्मन कोस्मन हैं हम!"

और रेहाना अपनी आँखें झुका लेती है।

नजबुन को रेहाना की उदासी अच्छी नहीं लगती और वह अपना स्वर बदल देती है, "नाहीं हो हम ई थोड़े कही था। हमरा कहे का मतलब ई कि कभो-कभो चला आया कर!"

"देख हम का बतावें, फुरसत मिलबे नाहीं करती कभो। सारे सिले-कनारे के रहेंगे अउर पकारे-कोसारे भी रहें, यही से फुरसत नाहीं मिलती... तोरी अम्मी को का हाल है?"

"ठीक है, अब मजे की हो रहत हैं। बोखार खतम हो गोवा है।"

"तोरी चुरी बड़ी बढ़िया है, कहाँ से पहने रही है?"

रेहाना की इस टिप्पणी पर नजबुन्निसा लजा गयी। बोली, "धत्, बढ़िया कहाँ है? खूब बोली बोल लो! हमरी निहाड़ी सिदू से?"

"का हो, हम तोरी निहाड़ी से का? हमें बड़ी अच्छी लगी है ही से हम कहा!"

तभी रेहाना की अम्मी वहाँ हाजिर हो गयी और दोनों लड़कियाँ चुप हो गयी।

वे थोड़ी देर तक नजबुन की अम्मी का हाल-चाल पूछती रहीं, फिर चली गयीं। तब दोनों लड़कियों में गुपुर-गुपुर बातें होने लगीं। रेहाना ने बहुत दुख के

और अपनी सखी को बताया कि घरवाले उसका ब्याह लतीफ से करनेवाले हैं। और इतना कहकर वह धीरे-धीरे सुबकने लगी।

35

शरफुद्दीन आज यूनिवर्सिटी नहीं गया है। स्टूडेण्ट्स यूनियन ने एडमीशन के मामले को लेकर कल वी. सी. के बंगले पर प्रदर्शन किया था और कैम्पस का माहौल तनावपूर्ण हो गया था।

पहले शरफुद्दीन भी यूनियन के कार्यक्रमों में हिस्सा लिया करता था। एक बार इलेक्शन भी लड़ चुका है, लेकिन जब से उसे 'बुनकर बहबूदी फण्ड' से 500/- का वजीफा मिला है, कुछ दिनों के लिए अपनी नेतागिरी उसने स्थगित कर दी है। यह वजीफा वैसे तो गरीब बुनकर विद्यार्थियों के लिए है, पर जब उसे मिल ही गया तो इसकी लाज तो रखनी ही होगी।

वह इस वक्त गद्दी पर बैठा है और हाजी वलीउल्ला के यहाँ फोन कर रहा है। फोन उधर से कोई लड़की उठाती है तो शरफुद्दीन को लगता है कि यह वही लड़की है जिसके साथ उसकी शादी होनेवाली है और वह हँस-हँसकर कुछ पूछने लगता है, लेकिन जल्दी ही उधर से फोन रख दिया जाता है और वह खिसला उठता है।

खिसलाहट में ही उठकर वह कारीगरों के बीच आता है और एक कारीगर को बुरी तरह डाँटने लगता है।

मतीन के हाथ रुक जाते हैं। वह शरफुद्दीन को जलती हुई आँखों से देखता है और थोड़ी देर तक चुपचाप बैठा रहता है।

ऊपर पत्ता है, जिस पर साड़ी का नक्शा बना है, नीचे करघा है, करघे पर ढरकी है। ढरकी इस वक्त रुकी पड़ी है। वह मतीन के इन्तजार में है।

मतीन सिर उठाकर एक बार पत्ते को देखता है, फिर अधबनी साड़ी पर 'फू' (मुँह से पानी का फुहारा) देकर उठ जाता है। उसकी इच्छा होती है कि थोड़ा बाहर घूम आये।

हाजी अमीरुल्ला रथयात्रा गये हैं। कह रहे थे, बैंक में कुछ काम है। शरफुद्दीन

जानता है कि बड़ा काम है, इसीलिए वह बेचैनी के साथ उसका इन्तज़ार कर रहा है।

हाजी मिनिस्टर अभी बगीचे से नहीं लौटे हैं। हबीबुल्ला मदनपुरा गये हैं। आजकल मदनपुरा वे बहुत जाने लगे हैं। वहाँ कोई दरबान दा है, उन्हीं से बिज़नेस को लेकर कोई महत्त्वपूर्ण बात चल रही है। दरबान दा अपने पार्टनर हाजी चुनर के साथ मिलकर शाल का कोई आर्डर लेनेवाले हैं। उसमें बाऊ डब्बा और हाजी चमार भी शामिल होनेवाले हैं। हबीबुल्ला चाहता है कि उसका भी कोई शेयर हो जाये।

मदनपुरा के हाजियों के नाम भी विचित्र हैं। हाजी बन्दर, हाजी अमरीका, हाजी साला, हाजी कबरस्तान, हाजी मच्छर, हाजी गुट्ठे आदि। इसके अलावा कुछ विशिष्ट लोगों के नाम भी विचित्र हैं, जैसे इफ़्तख़ार मकड़ी, काले गुड्डू, कलीबोग, मख़्दूम अनपढ़, जलालुद्दीन बैल, मुन्नुन पेंट, मल्लू मैना, उसमान गोदाम आदि।

मदनपुरा की देखा-देखी इधर अलईपुरवालों ने भी कुछ विचित्र नाम रख लिये हैं। इनमें इब्राहिम मिर्चा, बाऊ डब्बा और रहमतुल्ला बेचड़ा के नाम मशहूर हैं।

एक ऐसे भी हाजी साहब हैं जिन्होंने इन अजीब नामों से चिढ़कर शायद अपने लड़कों के नाम इस प्रकार रखे हैं—इनामुल्ला, माशाअल्ला, अलहम्दुलिल्ला आदि।

ये सारे-के सारे लोग अपने को और लोगों की अपेक्षा विशिष्ट तथा मौलिक रूप में स्थापित करना चाहते हैं। धन के साथ-साथ यह सनक लोगों में बढ़ती चली गयी है।

हाजी अमीरुल्ला के चचा जनाब हमीदुल्ला बनारस के पहले बुनकर हैं, जिन्होंने पहले-पहल एम. ए. किया था—वह भी अंग्रेज़ी में, इसलिए उनका नाम भी थोड़ा विशिष्ट हो गया—हमीदुल्ला एमे! ये वही हमीदुल्ला एमे हैं जो कभी आल इण्डिया हैण्डलूम बोर्ड के चेयरमैनवाले चुनाव में ख़लीलाबाद बस्ती के कम्युनिस्ट नेता नसीरुल हसन अंसारी तक को पराजित कर चुके हैं। ऐसा हाजी अमीरुल्ला और उनके ख़ानदानवालों का दावा है।

नसरुद्दीन गद्दी पर बैठा-बैठा ऊब गया था। अब वह उठकर ऊपर जाने ही वाला था कि हाजी साहब की सूरत झलक उठी! वह सँभलकर बैठ गया।

हाजी साहब थोड़ी देर तक रिक्शेवालों को और ट्रैफ़िक जाम करनेवाली बैल-गाड़ियों को गालियाँ देते रहे, फिर उन्होंने नसरुद्दीन को सूचना दी कि बैंकवाला

काम हो जायेगा। साहब से बात हो गयी है।

मतीन अभी तक बाहर से नहीं लौटा था।

करघे पर मतीन को न देखकर हाजी साहब का पारा गर्म हो गया। वे शरफुद्दीन पर बमके—

"ऊ मतिनवा कहाँ गोवा ?"

"अभइन त रहा···।"

"बस येही तरे तूं अभइन-अभइन करत रहो अउर सब बिजनिसिया चउपट कर दो !"

और मारे गुस्से के हाजी साहब काँपने-से लगे। उन्होंने मतीन के खाली पड़े करघे को एक बार फिर अपनी जलती आँखों से देखा और आगे बढ़कर घम्म-घम्म सीढ़ियाँ चढ़ने लगे।

पीछे-पीछे शरफुद्दीन भी ऊपर चला गया।

मतीन उस वक्त बाहर खड़ा था। जब यह काण्ड समाप्त हो गया तो वह टहलता हुआ-सा भीतर आया और अपने करघे पर जाकर चुपचाप बैठ गया। जब अन्य कारीगर उसकी ओर देखकर मुस्कराये तो वह भी मुस्करा उठा।

36

सुबह से ही धुन्ध छायी हुई है और चिपिर-चिपिर बारिश हो रही है। सड़कों पर कीचड़ हो गया है और उन पर चलनेवाले लोगों के कपड़े खराब हो रहे हैं। हवा में खुनकी बढ़ गयी है।

दोपहर को थोड़ी देर के लिए आसमान साफ होता है तो झुण्ड-के-झुण्ड लोग बिसेसरगंज, गोदौलिया और लहुराबीर की ओर निकल पड़ते हैं।

बिसेसरगंज की सब्जी मण्डी में इतना कीचड़ हो गया है कि पांव धँसने लगे हैं। यह सूचना भोला पानवाला लोगों को देता है और अपनी दूकान पर रखे पीतल के पान-स्टैण्ड को चमकाने में व्यस्त हो जाता है। मतीन की सलाह पर भोला ने पान की दूकान खोल ली है और वह चल निकली है।

चार बजते-बजते बदली फिर छा जाती है और चिपिर-चिपिर फिर शुरू हो जाती है।

कबीर वहीं बजार[1] रहते हैं।

इधर छोहरा से लेकर उधर वहीं बाज़ार तक सड़क बहुत ही खराब हो गयी है। कीचड़-ही-कीचड़। नाला और बदबूदार। एक जगह सड़क पर मेन होल खुला पड़ा है। किसी का 'पाखाना' खराब हो गया है, वह उसे साफ करा रहा है।

वहीं बाज़ार के इस छोर पर बिनकारी के सामानों की दुकानें दोनों ओर सजी हुई हैं। कहीं कोने टँगे हैं तो कहीं नाँधे। कहीं गिरिंदियाँ रखी हुई हैं तो कहीं नराड़े। कहीं नरी बिक रही है तो कहीं ढरकी। ऐसा लगता है कि सारी-की-सारी रंग-बिरंगी साड़ियों का कारखाना यहीं खुला हुआ है।

आगे सब्ज़ी मण्डी है। दाहिनी ओर मछली बाज़ार। और आगे चलकर बुनकर मार्केट। जैसे बुनकर कालोनी निरर्थक है, उसी तरह बुनकर मार्केट भी। लेकिन नाम तो है, नाम का होना भी बड़ी बात है।

यहीं एक बैंक भी है, लेकिन कबीर को बैंक से नहीं बल्कि हाजी रहमान से कर्ज़ लेना है।

रेहनवा की शादी है।

स्त्रियों का कहना है कि अक्सर रेहनवा ने चौकी से खाना खाया है, इसीलिए इसके बियाह में बारिश हो रही है।

रेहनवा के बारे में चारों ओर यह मशहूर हो गया है कि इसे जिन्न लगा है, अतः कोई अच्छा लड़का मिल नहीं रहा था। कबीर बहुत परेशान थे। उम्र बढ़ती जा रही थी। इसी बीच उन्हें मालूम हुआ कि नसीरु दूसरी शादी करने के लिए इच्छुक है। और उन्होंने तय किया कि रेहनवा को वे नसीरु के साथ ही ब्याह देंगे।

पहले तो घर में बड़ा विरोध हुआ कि पाँच बच्चों के बाप, एक अधेड़ आदमी के साथ फूल-जैसी लड़की का ब्याह नहीं किया जा सकता। लेकिन मजबूरियों ने उन्हें इतना कमज़ोर कर दिया था कि यह विरोध अधिक देर तक नहीं टिक सका और बात तय हो गयी।

रात गहरी होते ही कबीर के घर में आस-पड़ोस की स्त्रियों की भीड़ लग जाती है। उनमें सुहागिनें भी हैं और दूसरी मुस्लिम स्त्रियाँ भी। शादी-ब्याह में आगे-आगे रहनेवाली मनीजुन बुआ के ठाठ ही नहीं मिल रहे हैं। उन्हें इस बात से कोई लेना-देना नहीं है कि शादी बूढ़े की हो रही है या जवान की। वे तो बस माहौल को रंगदार बनाना जानती हैं। इस मामले में बहुत दिनों तक इलाहाबाद जिले के एक

---

1. बनारस का एक मुहल्ला।

देहात में रह आयी है, इसलिए अपने को 'फारेन रिटर्न' समझती है और खासतौर से गाने-बजाने में आगे-आगे रहती है।

नसीबुन बुआ चन्द औरतों को लेकर पसाड़ा मारकर बैठ गयी है और उनकी रागिनी शुरू हो गयी है—

सुन मोरी अम्मां हो ना रुनझुन होइ गय !
सुन मोरी अम्मां
टीका के ऊपर टोना
हिलाय लय झराय लय फुंकाय लय टोना…

और कुछ औरतें ठट्ठा मारकर हँस पड़ती हैं। इस पर नसीबुन बुआ थोड़ा नाराज होती हैं, लेकिन जल्दी ही वे फिर शुरू हो जाती हैं—

बाबुल होसियार खड़े रहियो रे…
बाबुल तेरे नाजो के टीका चहिए
अउर झुमका कै सरंजाम देहो रे
बाबुल…

"तै काहे नाँही गयती रे?" एक औरत नजबुनिया को छेड़ती है तो वह लजा जाती है, लेकिन बार-बार कोंचने पर वह गला साफ करके बिल्कुल नये अन्दाज में एक गीत शुरू करती है—

बन्नी अउर बन्ना की पहली मुलाकात है
क्या मजे की बात है, क्या मजे की बात है
बन्नी कहे हम को टीका बनवा दो
दोनों में शर्त लगी क्या मजे की बात है
बन्नी अउर बन्ना की पहली मुलाकात है।

औरतें और लड़कियां गीत गाने में मगन हैं। एक औरत ढोलक बजा रही है और एक औरत मुरादाबादी लोटे को अठन्नियों से पीट-पीटकर मंजीरे की धुन निकालने की कोशिश कर रही है। सभी लोग मौज में हैं। छोटी-छोटी बच्चियां अपनी-अपनी अम्माओं या अपनी-अपनी भाभियों से अपने-अपने बालों में अफशा के बेल-बूटे बनवाकर तितलियों की तरह फुदक रही हैं। किशोरियां अपनी-अपनी ओढ़नियां सँभालती, अपने उभर रहे शरीरों से लापरवाह, एक-दूसरे को धकियाती हुई हिरनियों की तरह उछल रही हैं। बच्चे भीतर से पान झटक-झटककर खा रहे हैं और धमा-चौकड़ी मचा रहे हैं। जवानी की दहलीज पर जिनके पांव अभी हाल ही में पड़े हैं, ऐसे लड़के-लड़कियों को बड़ी प्यासी निगाह से देख रहे हैं और किसी तरह भीतर पहुँचने का बहाना ढूंढ़ रहे हैं। जो इस उद्देश्य में कामयाब हो गये हैं वे अपने को बहुत ही व्यस्त प्रदर्शित कर रहे हैं। कभी भीतर जा रहे हैं, कभी बाहर आ रहे हैं। कभी किसी चाचा या खालू से कुछ पूछ रहे हैं तो कभी किसी चाची या खाला

या नगीन-नगीन में डालते जाते हैं। यह पैसा दोनों पक्षों के नाइयों और धोबियों के बीच बाद में बांट दिया जाता है।

अभी देखबट्टा हो ही रहा था कि रेहाना के बहनोई 'सिन्नी' लेकर आ पहुंचते हैं। एक किन्नो मीठा और साथ में पचीस दोस्त ! शोर मच जाता है कि सिन्नीवाले आ गये। और रेहाना के बाप उनकी खातिरदारी में लग जाते हैं। दामाद साहब से मीठा लेकर उन्हें एक बर्तन बतौर नेग दिया जाता है और सबके आगे पान का ट्रे पेश किया जाता है। सिन्नीवाले पान खाते हैं और हँसी-ठट्ठा में मशगूल हो जाते हैं।

फिर अक्द होता है और उसके बाद बिदाई।

बिदाई से पहले सामनेवाली कोठरी में सरदार-महतो बैठ जाते हैं और दहेज का एक-एक सामान उठाकर लतीफ के चचा इदरीस मियां को थमाते जाते हैं— पांच कटोरा, इक्कीस रुपये नकद, कुरान शरीफ, रेहल, जानमाज, तशरीफी अर्थात् पांच गज मलमल और ग्यारह बीड़े पान।

फिर लड़की को कुरान पढ़ानेवाली मौलानी की ओर से आता है एक लोटा और साथ में ढाई रुपये नकद।

भीतर बिदाई की तैयारी हो रही है।

नसीबुन बुआ गा रही हैं—

काहे को दिया है बिदेस रे
अरे लखिया बाबुल मोरे
भइया के दिहे बाबू आपन देहरिया
हमके दिहेउ परदेस रे
एक बन गइली दुसर बन गइली
तिसरे में लागी पियास
मियाना[1] क परदा उलटि के जो देख लीं
न बाबुल न बाबुल के देस रे…

और नसीबुन बुआ रो पड़ती हैं। उनके साथ सारी स्त्रियां रोने लगती हैं। नजबुनिया और रेहाना की अम्मां खामोश हैं। बस आंखों से टपर-टपर आंसू जारी हैं।

सबको मालूम है कि रेहाना न कहीं परदेश जा रही है, न विदेश, पर सब जानते हैं कि इनका आज भाग फूट गया है। न जाने किस हरामी ने इसे क्या कर

1. डोली।

दिया कि बेचारी फूल-जैसी बच्ची पर जिन्न का आसेब हो गया, वरना क्या यह सनीचर के हो घर जाती ?

सखियों-सहेलियों ने रेहाना को दुल्हन बना दिया है। बड़ी-बूढ़ियों ने उसके आँचल में अक्षत भर दिया है। सवा रुपया, पाँच गाँठ हल्दी, दूब और सवा पाव चावल। पाँच सेर चावल की गठरी अलग बँधी रखी है, साथ जायेगी।

दरवाजे पर खटोले की बनी हुई डोली आकर लगती है और रेहाना उसमें बैठाल दी जाती है। तब उसका छोटा भाई मुनुवा बुलाया जाता है। बड़ी-बूढ़ियाँ उसे कुछ समझाती हैं और वह अपना नन्हा-सा हाथ बढ़ाकर मियाना का पर्दा गिरा देता है। भाई की जिम्मेदारी भी खतम!

डोली चल देती है।

37

अलईपुर स्टेशन। मऊ की ओर से कोई पैसेंजर गाड़ी आकर रुकी और एक डिब्बे से अल्ताफ उतरा। लुंगी पहने, टोपी लगाये, पान खाये। प्लेटफार्म पर उतरकर वह डिब्बे में से किसी चीज को जोर लगाकर खींच रहा था। वह चीज एक मजबूत रस्सी में बँधी हुई थी। थोड़ी देर बाद देखा गया कि उस रस्सी में बँधी हुई तीन मरघिल्ली-सी बकरियाँ प्लेटफार्म पर गिरी और अल्ताफ उन्हें जबर्दस्ती खींचता हुआ स्टेशन के चोर दरवाजे की ओर बढ़ चला, जिधर से प्रायः डब्लू. टी. वाले निकला करते थे।

अल्ताफ उन बकरियों को लेकर सीधे बेनियाबाग की ओर बढ़ चला। इस वक्त अगर हाजी रसीद की निगाह उस पर पड़ जाय तो बगैर गरियाये वे मानेंगे नहीं।

"बिनकारी करते गाँड़ फटती है, अब अंटिहियोवाले चले हैं बकरी-बकरा बेचे ?"

बकरीद करीब आ गयी है। अलईपुर और मदनपुरा के इलाके में चहल-पहल काफी बढ़ गयी है। कुर्बानी के लिए जानवरों की खरीददारी शुरू हो गयी है। इधर बच्ची बाग, बड़ी बाजार, छित्तनपुरा और पठानी टोला की तरफ सड़कों पर भैंसे-ही-भैंसे

नजर आ रही है। कभी-कभी कोई देहाती बकरों-बकरियों का रेवड़ लिये भी गुजर जाता है। चबूतरों पर बैठे हुए लोग उस देहाती को रोकते हैं, जानवर के कान-पूंछ देखते हैं कि कहीं कोई ऐब तो नहीं है, वरना जरा-सा कटा-फटा होने से कुर्बानी नाजायज हो जायगी—कमर को मुट्ठी में भरकर गोश्त का अन्दाजा करते हैं और मोल-भाव करके छोड़ देते हैं।

फिर वे चूतड़ झाड़ते हुए उठते हैं और लुंगी का टोंका उठाकर किसी चायखाने की ओर चल देते हैं।

बकरों का बहुत बड़ा मार्केट बेनिया बाग में लगता है। शहर में कोई नेता आये तो बेनिया पार्क में ही उसका भाषण होता है—इन्दिरा गांधी यहां कई बार भाषण दे चुकी हैं—सर्कस आये तो बेनिया पार्क में ही उसका तम्बू गड़ता है और बकरीद के दिनों में यही बेनिया पार्क बकरों का बहुत बड़ा बाजार बन जाता है। यहां का पूरा माहौल ही बकरियाहिन-बकरियाहिन महकने लगता है। सड़कों पर मेंगनियां-ही-मेंगनियां नजर आती हैं।

बनारस के सबसे बड़े रईस अंसारी जनाब लाट स्वालेह ने इस साल शायद एक बकरा ढाई हजार में खरीदा है। हाजी अमीरुल्ला को यह बात अच्छी नहीं लगी और उन्होंने भी एक बकरा डेढ़ हजार में खरीद लिया। हर साल उनके यहां दो भैंसें कुर्बान होती थीं, इस साल एक बकरे की भी कुर्बानी होगी। और जब बकरा ही कुर्बान करना है तो तीन-चार सौ का क्या करें!

बकरों की कुर्बानीवाला यह रोग बाहर से आकर बसे मिल्कियों पठानों ने ज्यादा लगा दिया है, वरना अंसारी भाइयों को तो भैंस के गोश्त के आगे बटेर का गोश्त भी अच्छा नहीं लगता। लेकिन जब बकरे की कुर्बानी में ही शान है तो बुर-नोदी के हम किसी से पीछे क्यों रहें?

वाकई यह शान ही की बात है कि जब हाजी रशीद ने अपने बेटे को हैदराबाद भेजा पढ़ने को तो हाजी अमीरुल्ला ने भी अपने पोते को हैदराबाद भेज दिया। यही नहीं, उन्होंने जब अपने लड़के के लिए ट्यूशन लगाया तो इन्होंने भी अपने भतीजे के लिए एक मास्टर रख लिया। मालूम हुआ कि वे अपने मास्टर को पचहत्तर रुपया देते हैं तो इन्होंने अपने मास्टर को अस्सी रुपये देना शुरू किया। हम किसी से पीछे रहेंगे क्या! बस लाट स्वालेह से ही बकरे की खरीद में नहीं बढ़ सके? लेकिन अल्ला चाहे, त कब्बो बढ़ेंगे क्या!

हाजी अमीरुल्ला के यहां बकरे की कुर्बानी उनकी बूढ़ी मां के नाम से होगी। ऐन बकरीद के रोज। दूसरे दिन बड़ीवाली भैंस की कुर्बानी होगी, जिसका आधा हिस्सा रिश्तेदारों को भेजा जायेगा और आधे में से थोड़ा-बहुत खाकर शेष भाग को धूप में सुखा लिया जायेगा—भविष्य के लिए। तीसरे दिन पड़वा कटेगा। उस दिन खास-खास रिश्तेदारों की दावत होगी। पड़वे का गोश्त पकेगा और मंसूरी

चावल का पुलाव। चमड़े सब जायेंगे यतीमखाने में।

शहर में जितने मदरसे हैं, सबके उस्तादों की ड्यूटी लगी है—चमड़ा इकट्ठा करने की। मदनपुरा में एक मदरसा है मजीदिया, जिसके सेक्रेटरी हैं डॉक्टर रहमतुल्ला अंसारी। उन्होंने अपने मदरसे के सभी उस्तादों को अभी से ताकीद कर दिया है कि बकरीद के दिनों में उनकी कोई छुट्टी नहीं है, दसवीं को फजिर बाद से लेकर बारहवीं को असिर के वक्त तक जितनी भी कुर्बानियाँ होंगी—उनमें से अधिकांश चमड़े मदरसे में आने चाहिए, वरना सबकी तनख्वाह रोक ली जायगी।

हाजी साहब ने अपने सभी कारीगरों से कह रक्खा है कि वे अपने यहाँ का चमड़ा उनके यतीमखाने में ही दें, एक भी चमड़ा कहीं और नहीं जाना चाहिए। रिश्तेदारियों के चमड़े तो आयेंगे ही। कोशिश कर रहे हैं कि इस बार ऊँट के चमड़े भी उनके यतीमखाने में ही आयें। चमड़ों में काफी मुनाफा है।

ऊँट की कुर्बानी इस साल सलेमपुरा में भी होगी। अरब में भैंसें तो होती नहीं, वहाँ या तो भेड़ों की कुर्बानी होती है या ऊँटों की। सो बिरादरीवालों ने नगर-प्रशासक से अनुमति लेकर शहर में तीन स्थानों पर पहले ही ऊँटों की कुर्बानी आरम्भ कर दी थी। इस साल चौथी कुर्बानी की इजाजत भी मिल गयी है।

इकबाल ईदुल-अजहा की कहानी पढ़ रहा है :

"हुजूर (हजरत मुहम्मद) से भी पहले एक पैगम्बर हुए हैं, हजरत इब्राहीम। उनके एक ही लड़का था—इस्माईल। एक बार उन्हें ख्वाब में दिखायी पड़ा कि अल्लाह त आला उनसे उनकी सबसे प्यारी चीज की कुर्बानी माँग रहा है। उन्होंने सबेरे अपनी सारी भेड़ें राहे-खुदा पर कुर्बान कर दीं, लेकिन दूसरी रात फिर वही ख्वाब दिखायी पड़ा और सुबह उन्होंने अपने सारे ऊँट कुर्बान कर दिये। लेकिन तीसरी रात फिर उन्हें वही ख्वाब दिखायी पड़ा। तब उन्होंने अपने बेटे इस्माईल को बुलाया और कहा—चलो, एक दावत में चलते हैं। माँ ने उसे नहला-धुलाकर साफ कपड़े पहनाये और वह बाप के साथ चल पड़ा। हजरत इब्राहीम ने झोले में रस्सी और छुरी छिपा ली।

"वे अपने बेटे को लेकर उस जगह गये जहाँ जानवर काटे जाते थे। तब बेटे को शक हुआ और उसने पूछा कि अब्बा जान मुझे आप कहाँ ले आये? इस पर इब्राहीम ने सही बात बता दी और बेटे से कहा कि तुम यहाँ लेट जाओ, मैं तुम्हें राहे-खुदा पर कुर्बान करूँगा। हजरत इस्माईल ने फरमाया कि राहे-खुदा पर मेरे-जैसे सौ इस्माईल कुर्बान हो जायें तो मुझे कोई उज्र नहीं, मगर हे अब्बा जान, आप अपनी आँखों में पट्टी तो बाँध लीजिए, वरना ऐन वक्त पर कहीं आपको ममता न आ जाय।

"और जैसे ही हज़रत इब्राहीम अपनी आंखों में पट्टी बांधकर बेटे को ज़िबह करने के लिए तैयार हुए, फरिश्तों ने खुदा के तख्त का पाया पकड़ लिया और बोले कि या अल्लाह त आला, हज़रत इब्राहीम का अब कितना इम्तहान लिया जायगा? और अर्श से एक फरिश्ता फर्श पर उतरा, जिसने इस्माईल की जगह एक दुम्बा लिटा दिया।

"दुम्बे की गर्दन पर जब छुरी चली तो वह बें करके चिल्लाया, जिससे झल्लाकर हज़रत इब्राहीम ने अपनी छुरी हवा में उछाल दी। उस छुरी से आसमान पर उड़नेवाली टिड्डियां कट गयीं और वह छुरी जब जाकर समन्दर में गिरी तो सारी मछलियों के गलफड़े फट गये। तभी से कुर्बानी फर्ज़ (अनिवार्य) हुई और तभी से टिड्डियां और मछलियां हलाल हुईं। इन्हें दुबारा हलाल करने की ज़रूरत नहीं।"

उधर अलीमुन और मतीन इस बात पर विचार कर रहे थे कि इस साल कुर्बानी कैसे होगी? मतीन का विचार था कि कुर्बानी न की जाय, क्योंकि कर्ज़दार पर कुर्बानी जायज़ नहीं है, पर अलीमुन अड़ी हुई थी। एकठे तो लड़का है, यह किसका मुंह जोहेगा? मतीन ने लाख समझाया कि इफरात गोश्त मिलेगा—जगह-जगह से हिस्सा आयेगा, लेकिन अलीमुन कुछ भी सुनने को तैयार नहीं हुई। उसने अपना बक्सा खोला और उसमें से चालीस रुपये निकालकर मतीन के सामने रख दिये। इन रुपयों से मुहल्ले में किसी की भैंस में एक हिस्सा ले लो। एक भैंस में अगर सात लोगों तक के शामिल होने की सुविधा न होती तो गरीबों का मज़हब कैसे ज़िन्दा रहता?

मतीन इस सवाल का जवाब नहीं जानता। अलीमुन भी नहीं जानती। इकबाल भी नहीं जानता।

हनिफवा की हालत इस इलाके के सभी निम्नवर्गीय बुनकरों से अच्छी है, लेकिन उसने कभी कुर्बानी नहीं करायी। इस साल पता नहीं क्या सोचकर उसने भी एक पड़वा खरीद लिया है। कह रहा है, इसमें किसी भी बाहरी आदमी का कोई हिस्सा नहीं होगा। वह अकेले पूरे पड़वे की कुरबानी करेगा। एक-एक हिस्सा घर के हर सदस्य के नाम और [illegible] करेगा वह मरे हुए दादा-दादी के नाम।

हनिफवा के लड़के [illegible] ने इस बात का प्रचार पूरे मुहल्ले में कर दिया [illegible] वह सब पन्द्रह-सोलह [illegible] हो गया है और लुंगी पहनकर चबूतरों पर [illegible]ता है।

[illegible]सीनी बोले

आज वह हनुमान फाटक की ओर से आ रहा था कि गली में उसे लतीफ़ की लड़की अख्तरुनिया दिखायी पड़ गयी। वह एक लम्बी-सी सुतली लेकर उसके आर-पार कूद रही थी और आस-पास खड़े बच्चे खिलखिला रहे थे। अख्तरुनिया के बदन पर पीले रंग का सूट खूब फब रहा था और जब वह झटके से उछलती थी तो उसकी छोटी-छोटी छातियाँ थिलक-थिलक हिल उठती थीं।

बिराहिम उसके पास पहुँचकर खड़ा हो गया। थोड़ी देर तक वह उसका उछलना देखता रहा, फिर बोला, "एना पारी हमरेव ईहाँ कुरबानी होद ए। कुरबानी देंगे आइयों। पड़वा आवा है।"

और अख्तरुनिया ने उछलना बन्द कर दिया। उसने बिराहिम को मुँह चिढ़ाया और भीतर घुस गयी।

38

बदबू! भयंकर बदबू!

बकरीद बीत गयी है, पर उसकी गन्ध हवा में भिनी हुई है अभी तक। सड़कों पर जगह-जगह कूड़ों के ढेर लगे हैं और कूड़ों पर कुर्बान हुई भैंसों की मन-मन-भर लाद पड़ी सड़ रही है। कहीं उनकी मोटी-मोटी अंतड़ियाँ गिजबिजा रही हैं तो कहीं फूटी हुई लाद से भीतर का सड़ा हुआ मल बाहर निकल आया है। कहीं किसी पड़वे के खुर पड़े हैं तो कहीं किसी भैंस की निकली हुई आँखें।

पूरा माहौल गिजबिजा रहा है।

रेहाना घबरा रही है।

अभी-अभी वह लतीफ़ के छोटे लड़के गुड्‌डा को लेकर बुनकर अस्पताल गयी थी। दवा लेकर आयी है, लेकिन तबीयत सँभल नहीं रही है। उल्टी-पर-उल्टी हुई जा रही हैं। वह रात को मना कर रही थी कि इस गोश्त को मत खाओ, इसमें बदबू आ गयी है। मगर माना ही नहीं। अब हालत एकदम पस्त है। खुदा जाने क्या होगा? लतीफ़ कतान लेने गया है। अभी तक लौटा नहीं।

रेहाना नकाब डालकर अपने नइहर चली जाती है, अम्माँ को बुलाने। बच्चे को अख्तरुनिया के पास छोड़ देती है। शरिफवा नीचे बिन रहा है। बार-बार कहलाने

पर भी असर नहीं आया है। रेहाना की बात तो वह सुनता ही नहीं। अम्मी भी नहीं कहता उसे। न जाने क्या बात है कि भीतर-ही-भीतर रार मानता है। यही बच्चकनिया है जो ठीक से बोलती-चालती है, लेकिन बस उसका इस पर भी नहीं है। बड़ी ख़िलंदड़िन है।

उधर अजीमुन की हालत भी बिगड़ रही है। उसने भी गोश्त खा लिया है। डॉक्टर ने उसे भैंस के गोश्त से परहेज बताया है, लेकिन अपने घर में कुर्बानी हो और उसका गोश्त न खाया जाय, ऐसा भला कभी हो सकता है? गुनाह न होगा! फिर यह भी विश्वास है कि कुरबानी का गोश्त नुकसान नहीं करता, चाहे जितना खाओ।

लेकिन अजीमुन की हालत रात से ही बिगड़ गयी है।

मतीन झल्लाया हुआ है। इस औरत को लाख समझाओ, मगर कोई बात मानती ही नहीं।

और झल्लाहट में ही उठकर वह रऊफ चचा के घर चला गया है।

टकबलवा स्कूल जाते-जाते रुक गया है। अपनी अम्मी के पास बैठकर वह रो रहा है।

अचानक लतीफ के घर में रोहा-रोअट शुरू हो गयी है। बच्चा मर गया है।

थोड़ी ही देर में वहाँ भीड़ लग जाती है।

लतीफ वापस लौटकर रेहाना पर उखड़ गया है। इसी डाइन ने मेरे बच्चे को मार डाला है। इसके पेट का नहीं है न, इसीलिए! मेरे बच्चों से तो इसे जैसे नफरत ही हो गयी है। न जाने कहाँ से जिन-जिन्नात लेकर इस घर में चली आयी है।

रेहाना चुप है। आँखों से आँसू बह रहे हैं, पर मुँह खामोश है। केवल उसके पतले-पतले होंठ थरथरा रहे हैं।

बाहर लतीफ को लोग समझा रहे हैं। रोने-धोने से अब [illegible] फ़ायदा? एक दिन सबको वहीं जाना है। कफ़न-दफ़न का इन्तजाम करो।

तभी लोग देखते हैं कि एक ओर से कमरुन छाती पीटती [illegible] रही है।

मतीन हाजी अमीरुल्ला के करघे पर बैठा हुआ तंज़ई पर एक फूल काढ़ रहा है। अभी-अभी ऊपरी पखुड़ियों का एक हिस्सा पूरा हुआ है। बगल में उसे एक हरी पत्ती बनानी है। वह लाल रंग का धागा छोड़कर हरे रंग का धागा पकड़ लेता है। मतीन की आँखें पत्ते पर अटकी हुई हैं। ढरकी तानी पर चालू होने के लिए तैयार जहाज़ की तरह रखी है। अगल-बगल के कारीगर खटाखट करघे चला रहे हैं।

अचानक एक लड़का वहाँ दौड़ा-दौड़ा आता है और मतीन को सूचना देता है कि रऊफ़ चचा की तबीयत कुछ गड़बड़ हो गयी है।

मतीन धागा छोड़कर खड़ा हो जाता है।

"कहाँ चलेव?" शरफुद्दीन अत्यन्त सख्त लहजे में उससे सवाल करता है और अपनी क्रूर आँखें मतीन के चेहरे पर टिका देता है।

"आइते!" जवाब में मतीन सिर्फ़ इतना ही बोलता है और बाहर निकल जाता है।

सड़क सूनी है। सिर्फ़ इक्के-दुक्के लोग ही आ-जा रहे हैं। मतीन तेज़-तेज़ कदम बढ़ाते हुए भागा जा रहा है। उसके पाँव में प्लास्टिक के जो जूते हैं, वे फट गये हैं। एक जूता ऐड़ी की ओर और दूसरा सामने की ओर काफी दूर तक कट-सा गया है। दो बार मोची से सिलवा चुका, मगर न जाने कैसा धागा लगाता है कि हफ्ता-भर भी सिलाई नहीं चलती। जूते में से पाँव उसके निकले जा रहे हैं, मगर उसकी चाल धीमी नहीं हो रही है।

वह अपने घर के पास पहुँच गया। वहाँ उसे कुछ शोर-शराबा सुनायी पड़ा। किसी के रोने की आवाज़ आयी। कौन हो सकता है? कहीं अलीमुन तो इकबलवा को मार-धार नहीं रही है? लेकिन वह तो स्कूल में होगा। छमाही इम्तहान हो रहा है उसका ··

"भूतिन! जिन्नातिन! निकल हियाँ से अभ्भी! निकल!"

तो लतिफवा है यह! रेहाना को मार रहा लगता है। रात में भी लड़ाई हो रही थी। घर सटा होने से साफ़ सुनायी पड़ता है। रेहनवा तो एक रोज़ अलीमुन से कह रही थी कि रोज़ लड़ाई होती है। अब वह बहुत पीने लगा है। रोज़ रात में वह झूमता हुआ आता है और अण्ड-बण्ड बकने लगता है। रेहनवा को नोचने-खसोटने लगता है। गालियाँ ऊपर से।

रेहनवा का शरीर सूखता जा रहा है। उसकी हालत तो पहले से भी ज़्यादा खराब हो गयी है। चेहरा एकदम काला पड़ गया है। उसकी अम्माँ हर जुमेरात को उसे बहादुर शहीद ले जाती है, पर कोई फायदा नहीं हो रहा है। अब लोग

याद दे रहे हैं कि कहीं हनीफ़ ने जाओ। मगर घर की जब यही हालत रहेगी तो कौनो हनीफ़ न जाओ, क्या होनेवाला है? मतीन की इच्छा होती है कि जाकर छुड़ा दे रेहाना को. लेकिन नतिकवा की बदतमीज़ियों का ख्याल करके इरादा बदल देता है। उसका क्या ठिकाना? मतीन को ही कुछ कह दे!

और वह जल्दी-जल्दी आगे बढ़कर रऊफ़ चचा के द्वार पर खड़ा हो जाता है। बरोठेवाली कोठरी में कोई नहीं है। वह सीढ़ियों की ओर बढ़ता है और दबे पाँव ऊपर चढ़ने लगता है।

उस वक़्त रऊफ़ चचा अपनी खटिया पर चुपचाप लेटे हुए थे और नजबुनिया की अम्माँ उनके सिरहाने बैठी हुई थीं। वे उनके बालों में तेल मल रही थीं और साथ-साथ नजबुनिया के बारे में सोचे जा रही थीं। जिस रोज़ पीली कोठी के पास कब्रस्तान के किनारे एक मरा हुआ नवजात शिशु देखा गया है, उस रोज़ से नजबुनिया की अम्माँ नजबुनिया को लेकर कुछ ज़्यादा ही चिन्तित हो गयी हैं। वे कोई भी काम कर रही हों, ध्यान उनका नजबुनिया पर ही रहता है…

नजबुनिया आँगन में बैठी कोंहड़ौरी डालने के लिए उड़द की दाल पीस रही थी।

मतीन को देखकर वह ज़रा-सा मुस्करायी, फिर लजा गयी। उसने अपना दुपट्टा ठीक किया और नाक पर उड़ रही एक लट को कुहनी से हटाने लगी।

मतीन भीतर जाकर रऊफ़ चचा के पैताने बैठ गया।

"तूँ आ गइव मतीन! देखो हमरा सगा लड़िका हनीफ, बिमारी की खबर पाके भी नैंहि आया।" रऊफ़ चचा बड़ी मुश्किल से इतना बोले और रोने लगे!

"घबराओ नहीं चचा, हम अभी डाक्टर अंसारी के हियाँ जाइते।" मतीन ने उन्हें ढाढ़स बँधाया और धीरे-से उठकर बाहर निकल गया। दस बज रहे हैं। डॉ. अंसारी अभी मिल जायेंगे।

40

बकरीद बाद से ही मुहर्रम की तैयारियाँ शुरू हो गयी हैं। इधर कोयला बाज़ार में पापड़ के नीचे 'शहीद बाबा' के पास और उधर छित्तनपुरा में इमाम चौक के पास अखाड़ों के रिहर्सल शुरू हो गये हैं। इस तरह के रिहर्सल पच्ची बाग, बड़ी बाज़ार और बाकराबाद आदि मुहल्लों में भी शुरू हो चुके हैं।

बनकर दस दिनों तक एक विशेष वेश में सड़कों पर दौड़ते रहते हैं। लुंगी-कमीज के ऊपर गर्दन में बगल से काली-सफेद धारियोंवाली रस्सियाँ फँसाये, नंगे पाँव, दुलकी चाल से चलते हुए ये 'पायट' दूर-दूर का चक्कर लगा आते हैं। इस साल इब्राहिम भी निकला है 'पायट' बनकर। उसने आम लड़कों से अलग हटकर अपना बाना बनाया है—सिर पर एक बड़ा-सा सफेद रुमाल काले कपड़े से बाँधकर खुद को सऊदी अरबियन प्रदर्शित करने की कोशिश उसने की है। इमाम साहब से उसकी बस एक मिन्नत है कि लतीफ़ की बिटिया अख्तरुनिया से उसका विवाह हो जाय।

नवीं की शाम से ताजियों की चहल-पहल शुरू हो जाती है। जगह-जगह इमाम चौक पर ताजिये बैठाये जाते हैं और उन्हें देखने के लिए झुण्ड-की-झुण्ड औरतें, लड़कियाँ, लड़के और बूढ़े सड़कों पर निकल पड़ते हैं। रंग-रंग के ताजिये। पहले उधर लल्लापुरा में रांगे का और इधर छित्तनपुरा में लकड़ी का ताजिया ही मशहूर था, लेकिन अब तो कई तरह के ताजिये बनने लगे हैं। एक ताजिया पेवर (प्यार) कागज का बनता है। बाँस-वाँस का नामोनिशान नहीं उसमें। कोयला बाजार में घास का ताजिया मशहूर है। रुई के ताजिये पर कोई मसाला लगाकर तेजी से उगनेवाली घास के दाने उस पर चिपका दिये जाते हैं और चन्द दिनों में ही इमाम साहब पर हरी-हरी घास लहराने लगती है।

लेकिन ताजिया ही अगर देखना है तो भाई लँगड़े उमर का देखो। नगीना का ताजिया। इस ताजिये के बारे में कहा जाता है कि इसमें जापान का कोई मसाला लगा है और ईरान की कला। सिर्फ़ नग ही बनारस के हैं। लागत ढाई लाख रुपये! पूरा-का-पूरा ताजिया पत्थर के नगों से बनाया गया है और इसे अकेले लँगड़े उमर हाफिज्जी ने कई बरसों में बनाया है। इस ताजिये को विदेशी लोग भी देख चुके हैं और इसकी तारीफ़ कर चुके हैं। इस साल तो 'आज' अखबार में इसका एडवर्टाइज भी निकला है!

नगीना का यह ताजिया पठानी टोला में लँगड़े उमर के बाड़े में नवीं की रात को रख दिया जाता है—एक सजे हुए शामियाने के नीचे। और दसवीं के बाद भी तीन दिनों तक लोगों के दर्शनार्थ यह वहीं रखा रहता है। इस ताजिये को देखने के लिए दूर-दूर के हिन्दू-मुसलमान यहाँ आते हैं और अपनी आँखों को धन्य करते हैं।

यह ताजिया किसी परीलोक के राजमहल-जैसा लगता है। मालूम होता है जैसे जादू का कोई शीशमहल है जिसकी दीवारें, खिड़कियाँ और दरवाज़े सब सपनों के बने हैं और भीतर काँच की कन्दीलें जल रही हैं। शामियाने में लटक रहे बल्बों की रोशनी में नगीने का यह ताजिया दिप्-दिप् करता रहता है और देखनेवाले स्त्री-पुरुष मन्त्रमुग्ध-से खड़े रहते हैं।

लंगड़े उमर हाफिज़जी ने यह साबित कर दिया है कि फन का ताल्लुक आदमी के इन खुरदुरे हाथों से ही है, चाहे वह रेशम का फन हो या नगीने का।

नवीं की रात मलीदे की रात है। कहते हैं कि इमाम हुसैन को मलीदा बहुत प्रिय था, इसलिए रोज उनकी दादी उन्हें बासी रोटी गुड़ के साथ मलकर खिलाया करती थीं। सो, यहाँ न्याज़ के लिए तरह-तरह के मलीदे बनते हैं। मतीन के यहाँ रोटी का मलीदा बना है, हनीफ के घर सूजी-मैदे का और हाजी अमीरुल्ला के यहाँ शीरमाल का।

नसीबुन बुआ आज सुबह-सुबह नजबुनिया से मिलीं, फिर रेहाना, अलीमुन और अन्य कई स्त्रियों के पास गयीं और उन्होंने बताया कि आज रात उनके 'फारेन' याने देहात में औरतें दाहा गाती हैं। जब ताज़िया उठता है तो ये ताज़िये के पीछे-पीछे चलती हैं और मर्दों का मरसिया खत्म होते ही अपना नौहा शुरू कर देती हैं। लेकिन उनकी बात को किसी ने महत्त्व नहीं दिया, इसलिए वे वाकई ग़मगीन हो गयी हैं और इस वक्त अकेले ही दाहा गुनगुना रही हैं। दर्द में डूबी उनकी आवाज़ सड़क पर चल रहे लोगों के शोर-शराबे से छनकर बाहर आ रही है और आस-पास के वातावरण को एक मीठी-मीठी उदासी में डुबो दे रही है।

नसीबुन बुआ गा रही हैं—

छिकते हसन मियाँ त घोड़वा पलानैं
बछेड़वा पलानैं
छिकते भये हैं असवार रे हाय
घोड़े क लगाम धरि समझावैं ओनकर दादी
समझावैं ओनकर अम्मी
दूरि लड़इया मत जायउ हो
दूरि कद लड़इया दादी हम लड़ि अउबै
कतल होइ जाबै
सहिद होइ जाबै
यहि रे उम्मनिया कइ खातिर हो
दूरि कइ लड़इया भइया छुरिया चलायी
कटरिया चलायी
चमचम चलै बरछी भलवा रे हाय
दूरि कद लड़इया बहिनी हम लड़ि अउबै
कतल होइ जाबै
सहिद होइ जाबै

दहि रे उम्मति कइ खातिर हो···

बशीर की बीवी निकली थी नकाब ओढ़कर ताजिया देखने के लिए। यह दर्द भरी आवाज सुनी तो नसीबुन बुआ के घर में घुस गयीं। बुआ उन्हें देखकर खामोश हो गयीं, जैसे उनकी एकान्त साधना में किसी ने बाधा डाल दी हो!

"एकाध्ठे अउर सुनावा बुआ!" बशीर की बीवी ने बुआ से अनुरोध किया तो उन्होंने दुपट्टे से अपनी आँखें पोंछीं और आहिस्ता-आहिस्ता किसी अल्प प्रवाही झरने की तरह फिर गाने लगीं—

तूं त चलय सइयद रन कइ लड़इया
जंगल कइ लड़इया
सुघरी रनियवा केके सौंपिउ हो
सुघरी रनियवा दादी तोहइ के सौंपब
तोहइ के सौंपब
रनिया महल भीतर राखिउ रे
तूं त चलय सइयद रन कइ लड़इया
जंगल कइ लड़इया
तोहरी सूरत कइसे बिसरे हो
हमरी सुरतिया दादी अठई के देखेय
नवईं के देखेय
दसईं सहिद होइ जावे रे
जौने हुसन के मैं दुधवा से पालेवँ
मलिदवा से पालेवँ
उनही क सुरतिया कइसे बिसरे हो···

और नसीबन बुआ बुक्का फाड़कर रो पड़ीं! बशीर की बीवी भी सुबकने लगी!

मतीन इकबाल की उँगली पकड़े, खड़ा-खड़ा लँगड़े उमर का ताजिया देख रहा था कि अचानक एक लड़की ने अपना नकाब उलटा और उसके भीतर पनचक्की-जैसी कोई चीज चलने लगी।

नजबुनिया मुस्करा रही थी। उसके गौरवर्णी गालों पर लाल-पीले नगों की रोशनी पड़ रही थी और वे लाल-पीले गुलाबों की तरह दमक रहे थे। मतीन के पाँव थरथराने लगे। वह इकबाल को लगभग घसीटता हुआ बाहर आया और पठानी टोला की उस भीड़ भरी सड़क पर इस तरह चलने लगा जैसे कर्फ्यूग्रस्त

गुनगान इमारों में चला जा रहा हो।

इकबाल को यह अच्छा नहीं लगा, पर वह खामोश रहा।

जब वे लोग घर पहुँचे तो अलीमुन जाग रही थी और अपनी खटिया पर पड़ी-पड़ी गों-गों खाँस रही थी। मतीन ने धीरे-से उसके माथे को छुआ और थोड़ी देर तक उसी तरह झुका-झुका उसके चेहरे को देखता रहा, फिर अपनी चारपाई पर जाकर लेट गया।

लेकिन रात-भर उसे नींद नहीं आयी।

दसवीं के रोज़ घरों में जितना सन्नाटा रहा, बाहर उतना ही शोर! स्त्रियों ने चूल्हे नहीं सुलगाये, झाड़ू नहीं लगायी, बालों में तेल नहीं डाला। वे बच्चों को मलीदा खिला-खिलाकर बहलाती रहीं और सड़कों पर 'या इमाम हुसैन' के नारे लगते रहे।

दोपहर बाद जब कर्बला के लिए ताज़िये निकले तो नवयुवकों के दल छाती पीट-पीटकर मातम करते हुए आगे-आगे चले! ग़म को उत्सव की तरह मनानेवाले ये नौजवान यह दिखा देना चाहते थे कि हुसैन की हत्या का असली ग़म उन्हीं को है। शिया युवकों ने तो ब्लेड से अपने सीनों पर चीरे लगा रखे थे और उनसे ख़ून की बूँदें छलक रही थीं। अनेक युवक लोहे की सिकड़ियों से अपनी पीठ पर चोट कर रहे थे। इस तरह बनारस के बुनकरों का यह झुण्ड हनुमान फाटक के पास इकट्ठा होकर 'हुस्से-हुस्से' करता हुआ कर्बला[1] की ओर धीरे-धीरे बढ़ा जा रहा था।

हनिफवा ने किसी अखाड़े से एक तलवार ले ली थी और उसे कन्धे पर रखकर चल रहा था। मतीन का लड़का शरिफवा आगे-आगे बढ़कर बनैनियाँ भाँज रहा था। रऊफ़ चचा लुंगी-टोपी में लैस भीड़ से थोड़ा हटकर कमर झुकाये धीरे-धीरे चले जा रहे थे। मतीन हनुमान फाटक पर थोड़ी देर तक खड़ा रहा था, फिर इकबाल को लड़कों के साथ छोड़कर घर लौट आया था। उसे कुछ हिसाब-किताब करना था।

औरतें खिचड़ा पकाने की तैयारी में जुट गयी थीं। जौ की घुरी, चने की दाल और गेहूँ का दलिया, मसाले, भैंस का गोश्त—सब मिलाकर खिचड़ा पकेगा। आख़िर युद्ध के बाद तो बचे-खुचे अन्न को इसी तरह न एक में मिलाकर पकाया गया होगा!

1. कर्बला से यहाँ तात्पर्य उस स्थान से है, जहाँ ताज़ियों को दफ़न किया जाता है।

नसीबुन बुआ बर्तन मांज रही हैं और साथ-साथ गुनगुनाये भी जा रही हैं। इनका शोक अभी ख़त्म नहीं हुआ है। बशीर की बीवी बताती हैं कि यह हुसैन का ग़म नहीं है, बल्कि इनका खुद का ग़म है। इनका इकलौता लड़का दस साल का होकर इसी मुहर्रम के महीने में खुदा को प्यारा हो गया था।

सो, नसीबुन बुआ का ग़म कल रात से ही भड़क उठा है। वे इस वक्त भी गा रही हैं—

हसन क दादी चउक धरि रोवैं
चउक धरि रोवैं
जरै मोर जमिन असमनवा रे हाय
अगिया जो लागत जल से बुझवतेवँ
दुध से बुझवतेवँ
कोन्विया अगिन के बुझावैं रे···

और नसीबन बुआ फिर फूट-फूटकर रो पड़ीं।

उधर, रेहाना को अचानक दौरा पड़ा और वह बेहोश हो गयी।

41

रऊफ चचा लाठी टेकते हुए मतीन के घर आये और नीचेवाली कोठरी में बैठ गये। उन्होंने अपनी लम्बी सफेद दाढ़ी को मुट्ठियों में पकड़कर दूहा, नाक सुड़की और बोले, "बैंकिया कै बजे खुले ले?"

"दस बजे।" मतीन ने जवाब दिया और इकबाल को वहीं से आवाज लगायी।

इकबाल धड़-धड़-धड़-धड़ नीचे उतरा और रऊफ चचा को सलाम करके खड़ा हो गया।

"दुइठे चाय ले आ त दउड़ के! बढ़िया बनवावे। अउर पान भी ले लेवे। भोला किहाँ से। हलचल सुरती डला लेवे।"

इकबाल पैसा लेकर चाय-पान लेने बाहर चला गया।

रऊफ चचा और मतीन सलाह-मशवरे में डूब गये।

सोसायटीवाले कागज पर तीन लोगों के हस्ताक्षर हो गये हैं और पूरा पैसा इकट्ठा हो गया है। बस बैंक जाकर उसे जमा-भर करना है। इधर तर-तेपहार की

वजह से जाना नहीं हो सका, पर अब चिन्ता की कोई बात नहीं है। अपनी काम तो हो ही चुका है।

मतीन का चेहरा धुले हुए रेशम की तरह खिला हुआ है और दिल में फुरहरी-सी उठ रही है। जल्दी ही उसके स्वप्न साकार हो जायेंगे अब। बड़े गिरस्तों की कोई मुहताजी नहीं रहेगी। जोंकों से निजात मिलेगी।

चाय-पान करके ये लोग उठ जाते हैं और बशीर के घर में सभी मेम्बरों को बुलाकर एक मीटिंग करते हैं जिसमें सबसे राय ली जाती है कि सोसाइटी का चेयरमैन किसे बनाया जाय? सभी लोग एक स्वर से मतीन का नाम प्रस्तावित करते हैं, लेकिन वह इनकार कर देता है। वह रऊफ़ चचा का नाम प्रस्तावित करता है और लोग उसके प्रस्ताव को स्वीकार कर लेते हैं। रऊफ़ चचा बहुत ना-नुकुर करते हैं, लेकिन कोई भी आदमी उनकी कुछ भी सुनने को तैयार नहीं होता। अन्त में रऊफ़ चचा खामोश हो जाते हैं।

फिर इस बात पर विचार-विमर्श शुरू होता है कि रथयात्रा कौन-कौन जायेगा? कुछ लोग कहते हैं कि सभी मेम्बरों को चलना चाहिए। लेकिन अल्ताफ़ इस प्रस्ताव की आलोचना करता है और सलाह देता है कि सिर्फ़ रऊफ़ चचा और मतीन चले जायें। लेकिन दबी ज़बान से इस प्रस्ताव की आलोचना लतीफ़ करता है और खुद भी जाने की इच्छा प्रकट करता है। इस पर ज्यादातर लोग उखड़ जाते हैं।

"इ झंटहियो के जाके का करेंगे उँहाँ? गाँड धोवै क सहूर नहीं, जायेंगे चुर-चोदी से बैंक में मनीजर से मिलै!"

और अन्त में बशीर अपना निर्णय सुनाते हैं कि रऊफ़ चचा और मतीन ही चले जायें बैंक, ज्यादा लोग जाके क्या करेंगे? अरे कोई रुपया मिलना है आज?

और लतीफ़ खामोश हो जाता है। जब सब की यही राय है तो वही अकेला चाँय-चाँय करके क्या कर लेगा। लेकिन कहीं बेईमानी हुई तब वह पूछेगा लोगों से। चन्दे में गाढ़ी कमाई का पैसा लगा है, मज़ाक नहीं है!

42

बैंक में बड़ी भीड़ है। काउण्टरों पर लाइनें लगी हैं। किसी काउण्टर पर रुपया लिया जा रहा है तो किसी पर दिया जा रहा है। लोहे की मज़बूत जालियों के

पीछे सौ-सौ, पचास-पचास और दस-दस, बीस-बीस के नोट गिने जा रहे हैं। गड्डियाँ तैयार की जा रही हैं। दरवाजे पर बन्दूकधारी सन्तरी खड़ा है। गन्दे कपड़ों में लिपटे हुए भिखमंगों-जैसे व्यापारी आते हैं और कमर से बसनी खोलकर काउन्टर के भीतर नोटों की गड्डियाँ सहेरा देते हैं, गोया कपड़े से बने हुए उस पाइप से जादू से नोट बन गये हों !

भीतर चश्मेवाली एक लेडी रजिस्टर पर झुकी न जाने क्या-क्या जोड़-घटा रही है। बगल में 'दोस्त' बाबू चेक वगैरह का काम देख रहे हैं। छोटे-छोटे क्लर्क लोग जनता से निपट रहे हैं और सबसे भीतर कई दरवाजों के पार, मैनेजर साहब अपनी झूलिंग चेयर पर बैठे नगर के बड़े-बड़े सेठों से हँसी-ठट्ठा करने में व्यस्त हैं।

रऊफ चचा का दिल धड़-धड़ धड़-धड़ धड़क रहा है। इ मतिनवा कहाँ ले आया यहाँ ? जहाँ बड़े-बड़ों की कोई गिनती नहीं वहाँ भला हमें कौन पूछेगा ?

लेकिन मतीन निडरता के साथ भीतर घुस गया और एक टेबुल के सामने खड़ा हो गया। उनके पीछे काँपते हुए-से रऊफ चचा भी खड़े हो गये। कहीं कोई झिड़क न दे।

"कहो ?" टेबुल के पार बैठे एक अधेड़-से आदमी ने गर्दन ऊँची की तो मतीन ने उसके सामने अपनी दरख्वास्त और तीस मेम्बरों के दस्तखतों से युक्त एक कागज रख दिया। दरख्वास्त पर नीचे रऊफ चचा ने उर्दू में अपना हस्ताक्षर किया था।

"यह क्या है ?" उस आदमी ने फिर एक सवाल ठोंका तो पीछे खड़े रऊफ चचा घबरा उठे। यह बैंक है या कचहरी ? अरे बाप रे ! इतनी जिरह !

मतीन ने सोसाइटी के बारे में विस्तार से उस आदमी को सब बताया और याद दिलाया कि वह एक बार पहले भी उनसे मिल चुका है और उन्हीं के कहने से उसने यह सोसाइटी बनायी है। अब अपनी दरख्वास्त लेकर वह आया है और साथ में पूरे पैसे भी। इस पर थोड़ी देर तक वह आदमी कुछ सोचता रहा, फिर बोला, "लेकिन इसे कानपुर भेजकर वहाँ से अप्रूव भी तो कराना होगा, उसमें भी तो कुछ खर्चा लगेगा। उसका इन्तजाम किया है या नहीं ?"

यह सुनकर मतीन का दिल बैठ गया। जुदा-जुदा करके तो इतने रुपये उसने इकट्ठे किये हैं, अब सोसायटी को अप्रूव कराने का खर्च कहाँ से लाये ? न जाने कितना खर्चा लगेगा इसमें ?

अभी वह यह सब सोच ही रहा था कि दोस्त बाबू अपनी सीट से उठकर उन साहब के पास आये और बोले, "इसे क्यों परेशान करता है पाण्डे, बेचारा गरीब आदमी हय। इसे मैनेजर साब के यहाँ क्यों नहीं भेज देता ? क्या नाम है तोमारा ?"

दोस्त बाबू मतीन की ओर मुखातिब हुए तो मतीन ने अपना नाम बता दिया

उन्हें। उसे लगा कि घोष बाबू के जरिए उसकी परेशानी समाप्त हो सकती है। मुमकिन है बगैर खर्च-वर्च किये ही सोसायटी मंजूर हो जाय। और वह टुकुर-टुकुर उनका मुँह ताकने लगा। रऊफ़ चचा का तो गला ही सूख गया था।

'मतीन बाबू, तुम मैनेजर साहब से मिलो। ये सोसायटी-वोसायटीवाला काम वो ही बोलेगा सब। जाओ। पाण्डे, तुम क्यों हर बात में अपना टाँग घुसेड़ता ?"

घोष बाबू ने पाण्डे बाबू का कन्धा दबाया और पाण्डे ने मतीन की दरख्वास्त मतीन के हवाले कर दी। अब वह अपना कागज़-पत्तर लेकर साहब के केबिन में प्रवेश कर गया। हालाँकि रऊफ़ चचा की हिम्मत नहीं पड़ रही थी, पर चूँकि वे सोसायटी के चेयरमैन मनोनीत किये गये थे, इसलिए उन्हें भी पीछे-पीछे जाना पड़ा। इ मतिनवा आज जो न करा दे!

ये लोग थोड़ी देर तक वहीं यूँ ही खड़े रहे, इन्तज़ार करते रहे कि कुर्सियों पर बैठे हुए बड़े लोग कब बाहर आयें और कब उन्हें मौका मिले; फिर मैनेजर साहब के इशारा करने पर बाहर निकल आये।

मैनेजर साहब ने घण्टी बजायी। भीतर एक चपरासी पहुँचा, जिससे उन्होंने कहा, "लोगों से कहो कि पूछकर ही अन्दर आयें और तुम यहाँ दरवाज़े पर खड़े क्यों नहीं रहते ?"

मतीन को अपनी गलती का एहसास हुआ और वह मन-ही-मन पछताने लगा। वाकई उसे पूछकर ही भीतर जाना चाहिए। अंसारी स्कूल में भी नवाब मास्टर साहब ने एक बार बताया था कि अन्दर आते समय पूछकर आना चाहिए—उसे यह बात तो भूल ही गयी थी। खैर "कोई बात नहीं। गलती इंसान से होती है। भूल-चूक खुदा माफ करेगा।

वे लोग बहुत देर तक बाहर एक बेंच पर बैठे रहे। रऊफ़ चचा तो दीवार से पीठ टिकाकर थोड़ी देर के लिए सो भी गये। फिर अचानक घण्टी बजी और भीतर से लौटकर चपरासी ने उन्हें अन्दर जाने का हुक्म सुनाया।

बड़े लोग जा चुके थे।

"चच्चा उट्ठो!"

मतीन ने रऊफ़ चचा को टोकारा दिया और वे भीतर जाकर मैनेजर साहब के सामने खड़े हो गये।

मैनेजर साहब ने उन्हें कुर्सियों पर बैठने का इशारा किया तो रऊफ़ चचा बेहद लज्जित हुए। इन कुर्सियों पर तो बड़े-बड़े लोग बैठते हैं, वे कैसे बैठें? लेकिन जब देखा कि मतिनवा बेहिचक एक कुर्सी सरकाकर बैठ रहा है तो सहमते-सहमते वे भी एक पुरानी-सी कुर्सी पर बैठ गये।

मतीन ने कागज़ात मैनेजर साहब के सामने रख दिये।

मैनेजर साहब टूटी-फूटी हिन्दी में लिखे उन कागज़ों को गौर से देखते रहे,

फिर अपना चश्मा उतारकर उन्होंने टेबुल पर रखा और मतीन के सामने अपना चेहरा धनुष की तरह तान दिया—

"नाम क्या है ?"

"अब्दुल मतीन अंसारी !"

"फ्राड करना चाहते हो ?" वे गरजे।

लेकिन उनकी गर्जना का अर्थ मतीन की समझ में नहीं आया। रऊफ चचा हिलने लगे।

"क्या साहब ?"

"तुम लोग एक साथ कितनी सोसायटियाँ बनाना चाहते हो ? क्या तुम सोचते हो कि सरकार इतनी बेवकूफ है। वाक़ई रह गये तुम जुलाहे के जुलाहे। वह मुहावरा है न कि 'जुलाहे बेगुनाहे पचास जूता' सो ठीक ही है। थोड़ी कमाई क्या करने लगे, चाहते हो कि सरकार को भी चारा चरा दो। वह देहाती मसल ठीक ही है, 'गगन्ये अनाज, जोलहवै राज !' किसी ने तुम लोगों को 'उल्टी खोपड़ी' का कहा है तो ठीक ही कहा है···"

मतीन को उम्मीद नहीं थी कि उसका स्वागत इस तरह किया जायगा। मैनेजर साहब को एक साथ ही जो इतने सारे मुहावरे याद आ गये हैं और गालियों की जो इन्होंने झड़ी लगा दी है तो इनको इसका मुँहतोड़ उत्तर मिलना ही चाहिए। अरे सरकार देती है, इसलिए लेने आये हैं, कोई आपसे भीख नहीं माँग रहे हैं। मतीन की इच्छा हुई कि मैनेजर साहब को कस-कसकर सुना दे और बाहर निकल जाये, लेकिन इसके परिणाम का ध्यान आते ही उसका खौलता हुआ खून ठण्डा हो गया। उसने एक बार कुर्सी में बीमार मुर्गे की तरह दुबके हुए रऊफ चचा पर अपनी भीगी हुई निगाह डाली, फिर मैनेजर साहब से अत्यन्त सहज भाव से बोला—

"साहब, हम समझे नाँही। कुछ गलती हो गयी का साहब ?"

मैनेजर साहब ने चश्मा उठाकर पहन लिया और टेबुल की दराज में कुछ खोजने लगे। फिर एक कागज निकालकर उसके सामने रख दिया जिस पर हिन्दी अक्षरों में ऊपर कुछ लिखा हुआ था और नीचे उर्दू में कुछ हस्ताक्षर बने हुए थे तथा कुछ अँगूठे लगे हुए थे। कुछ हस्ताक्षर हिन्दी में भी थे।

"यह कागज भी तो तुम्हीं लोगों की तरफ से आया है। इसमें जिन तीस बुनकरों के हस्ताक्षर हैं उनमें तुम्हारा नाम भी है। तुम्हारे अलावा लतीफ, अल्ताफ, रऊफ, बशीर वगैरह बहुत-से जुलाहों के हस्ताक्षर इसमें हैं। तुम्हीं लोगों ने न हाजी अमीरुल्ला साहब को अपना चेयरमैन बनाया है ? अभी कुछ दिन हुए हाजी साहब यहाँ आये थे और रुपया जमा कर गये हैं। उनकी सोसायटी के अप्रूवल के लिए सारे कागज कानपुर भेजे जा चुके हैं। जैसे ही वहाँ से अप्रूवल आयेगा

हाजी साहब को सरकार द्वारा स्वीकृत धनराशि दे दी जायेगी। फिर वे तुम लोगों को उसमें से बराबर-बराबर बाँट देंगे। समझ में आया? अब क्या चाहते हो कि तुम भी अलग से एक सोसायटी बनाओ और उसके तुम चेयरमैन हो जाओ और अपने साथियों को मूर्ख बनाकर सरकार से जो रुपया मिले उसे अकेले ही गड़प कर जाओ? तो जनाब अब्दुल मतीन अंसारी साहब, यह नहीं हो सकता। समझे?"

"लेकिन साहब इस कागज पर हम लोगन से तो दसखत कराया नहिं गोवा!"

"तो क्या इतनी सारी दस्तख़तें मैंने कर दी हैं?"

मैनेजर साहब ने चश्मा फिर टेबुल पर रख दिया और अपनी आँखें इस प्रकार बाहर निकाल लीं जैसे अगले ही क्षण वे कोई ख़तरनाक करतब दिखानेवाले हों!

रऊफ़ चचा अब बहुत ज्यादा डर गये थे। वे खड़े हो गये। मतीन की इच्छा हुई कि फिर कुछ बोले, लेकिन तब तक मैनेजर साहब ने घण्टी बजायी और तेजी से भीतर घुसे हुए चपरासी को आदेश दिया कि दत्त बाबू को भीतर भेजो। फिर वे अपनी जगह खड़े हो गये और मजबूरन मतीन को भी उठ जाना पड़ा। मैनेजर साहब खड़े-खड़े ही फिर बोले, "जनाब अब्दुल मतीन अंसारी साहब, जाइए और चुपचाप अपनी साड़ी बिनिये। फ्राड करना बहुत बड़ा जुर्म है।"

मतीन ख़ामोश रहा। वह सिर झुकाये केबिन से बाहर चला आया।

उसे लगा कि वह हार गया है और हाजी अमीरुल्ला जीत गये हैं। और उसे लगा कि यहाँ दाग है, यहाँ मत्ती है, यहाँ छीट है, यहाँ···

मतीन भूल गया कि उसके साथ रऊफ़ चचा भी हैं।

वह रथयात्रा चउमुहानी पर आकर बायीं ओर मुड़ गया और किसी बीमार व्यक्ति की तरह सड़क पर चलने लगा।

वह कहाँ-से-कहाँ गया, किस सड़क से चलकर किस सड़क पर निकला उसे कुछ भी नहीं मालूम!

और अन्त में वह मलदहिया की ओर से घूमकर सट्टराबीर चउमुहानी पर पहुँच गया। वहाँ चहल-पहल काफ़ी बढ़ गयी थी। सड़कों पर धीरे-धीरे शाम उतरने लगी थी।

मतीन थोड़ी देर तक उन सड़कों को देखता रहा। फिर आगे बढ़ गया।

आगे कबीर मठ था।

मठ में बत्तियाँ जल गयी थीं और भीतर से किसी के गाने की आवाज आ रही थी। मतीन वहीं खड़ा हो गया। कोई साधु कबीर की एक रमैनी गुनगुना रहा था—

मुसि मुसि रोवै कबीर की माई
ऐ बारिक कैसे जीवहि रघुराई
तनना बुनना सब तज्या है कबीर
हरि का नाम लिखि लिये सरीर
जब लग तागा बाहउ बेही
तब लग बिसरै राम सनेही
ओछी मति मेरी जाति जुलाहा
हरि का नाम लह्यो मैं लाहा
कहत कबीर सुनहु मेरी माई
हमरा इनका दाता एक रघुराई ।

"मतीन !"

मतीन चौंक उठा । रऊफ चचा का बूढ़ा, लेकिन चौड़ा मजबूत पंजा उसके कन्धे पर ढरकी की भांति रखा हुआ था और उसका पूरा जिस्म निर्माणाधीन वस्त्र की तरह तना हुआ था ।

"सब खुदा मालिक है बेटा, सबुर करो । चलो !"

और उन्होंने देखा, आकाश पर चांद आज कुछ जल्दी ही निकल आया है, पर उसका रंग पीला, मटमैला और उदास है । गोया किसी ने उसे बता दिया हो कि इस आसमान पर एक सूरज भी रहता है जो तुमसे पहले ही चमक गया है ।

43

मतीन घर से बाहर नहीं निकल रहा है । काम-धाम सब ठप है । रऊफचचा को भेजकर हाजी अमीरुल्ला के यहां से उसने अपना हिसाब मँगवा लिया है और हाजी अमीरुल्ला ने बगैर कोई तर्क-वितर्क किये उसका हिसाब साफ कर दिया है ।

लतीफ, अल्ताफ, बशीर, कल्लू, जमील आदि सभी लोग जानते हैं कि मतीन क्यों नहीं बाहर निकल रहा है । वे यह भी जानते हैं कि जो कुछ हुआ है उसमें मतीन का कोई दोष नहीं है । उन्हें यह भी मालूम है कि हाजी अमीरुल्ला की उस फ़र्जी सोसायटी में उनके भी फ़र्जी हस्ताक्षर हैं । लेकिन वे कुछ नहीं कर सकते । उन्हें इसी बनारस में रहना है और यही काम करना है । वे इस तथ्य से भी भली-भांति परिचित हैं कि इस फर्जी सोसायटी को पचास-साठ हजार की जो सरकारी

धनराशि मिलेगी वह गोमाशटी के चेयरमैन की हैसियत से हाजी अमीरुल्ला को ही मिलेगी और उस धनराशि पर उन्हीं का एकाधिकार होगा। उन जैसे किसी गरीब बुनकर को कानी कौड़ी भी नहीं मिलेगी। लेकिन हाजी अमीरुल्ला का वे कुछ नहीं बिगाड़ सकते। उनके हाथ बड़े लम्बे हैं।

वे सब जानते हैं, पर यह नहीं जानते कि मतीन को कैसे समझाया जाय? अतः वे खामोश हैं और अपने-अपने काम में तल्लीन हैं। गलियों में तानियाँ फैली हुई हैं। छतों पर औरतें और लड़कियाँ नरी भर रही हैं। रेशम के धागे सुलझाये जा रहे हैं। करघों की खटाखुट एक विशेष लय के साथ चालू है और सूती-टोपी पहने, बढ़ी हुई दाढ़ियों और गहराई हुई झुर्रियोंवाले लोग गड्ढों में पाँव डाले करघियों का खेल देख रहे हैं—कि किस तरह दुनिया की यह चादर बिनी जा रही है और किस तरह चन्द लोग इसे मैली किये दे रहे हैं।

अर्थात् छित्तनपुरा से लेकर कच्ची बाग तक और मदनपुरा से बजरडीहा तक सारा कार्य-व्यापार पहले की तरह ही बदस्तूर चल रहा है। यही नहीं, लेमरा, बहादुरपुर, लोहता, लहरतारा, पाण्डेपुर, हरहुआ, चोलापुर और आसपास के गाँवों का कार्य-व्यापार भी पूर्ववत् चल रहा है। गाँव-देहात के सारे बुनकर, जिनमें हिन्दू भी हैं और मुसलमान भी, रोज सुबह-सवेरे काशी नगरी में आते हैं और किसी-न-किसी गिरस्ता के बरधे पर बैठकर चन्द रुपयों के बदले अपना पसीना बेचकर चले जाते हैं। गिरस्ता लोग खुश होकर उन्हें 'आखिरी बुध' और 'दीवाली' के रोज मिठाइयाँ बाँटते हैं। गरी की बर्फी और खोये के लड्डू लोग कल्पना करते हैं कि वे खुश हैं।

मतीन चारपाई पर पड़ा-पड़ा सोचे जा रहा है और काली पड़ती हुई छत को घूरे जा रहा है।

"उठो नाश्ता कर लेव!"

अलीमुन खाँसती हुई आती है और मतीन के पास खड़ी हो जाती है।

मतीन उसे देखता है—एक दुबली-पतली काया, कत्थई रंग की सूती धोती और जम्पर में ढकी हुई। सिर के दो-तीन बाल सफेद हो गये हैं, चेहरा सूखे हुए बेर की तरह मुरझाया हुआ है।

मतीन की आँखें डबडबा आती हैं। वह कथरी में अपना मुँह गड़ा देता है।

देश की राजनीति में कुछ भी उलट-फेर हो जाय, कितनी ही महत्वपूर्ण मौतें हो जायें, कैसी भी दिल हिलानेवाली घटनाएँ घट जायें, दुनिया में चाहे कोई ईमानदार आदमी हार जाय या बेईमान आदमी जीत जाय, पर सामाजिक कार्य चलते रहते हैं। वे बन्द नहीं होते; जैसे हर साल में धरती पर दूब उगती है और रेशम के कीड़े शहतूत के पत्ते खा-खाकर मुलायम, चमकदार और बेशक़ीमती धागे बनाते रहते हैं।

रऊफ़ चचा ने नजबुनिया का ब्याह ठीक कर दिया है और दिन-तारीख भी पक्की हो गयी है।

नजबुनिया का खिल-खिल करना बन्द हो गया है।

लेकिन इसका यह मतलब नहीं कि पूरा बनारस ही खिलखिलाना बन्द कर देगा। किसी का ब्याह होता है तो हुआ करे। कोई ग़म करता है तो किया करे! यहां तो इमाम हुसैन का ग़म भी ऐसा है कि पचास-साठ रोज़ तक त्योहार-जैसी हलचल मचाये रहता है।

आज 'पचासा' है। यह पर्व 'सफ़र' महीने की उन्तीस तारीख को मनाया जाता है। सुबह से ही चहल-पहल बढ़ गयी है। सड़कों पर एक बार फिर 'या इमाम हुसैन' के नारे गूंजने लगे हैं। छोटे-छोटे बच्चे 'हुस्से-हुस्से' कर चारों ओर दौड़ रहे हैं।

दोपहर होते-होते ताज़ियों का जुलूस पूरे मुहर्रमी तामझाम के साथ लाट भैरव की ओर चल देता है। लोग एक बार फिर जोश में आ जाते हैं।

लाट भैरव पर मेला लगा हुआ है। जगह-जगह भैंस के गोश्त से पकौड़ियाँ बन रही हैं और भाई लोग दूकानों पर टूटे पड़ रहे हैं। छोटे-छोटे बच्चे गुब्बारों और बांस की सारंगियों के लिए मचल रहे हैं। औरतें तथा लड़कियां नकाब उलटे कब्रस्तानवाली मस्जिद के पास खड़ी हैं और 'मलाई बरफ' चूसने में तल्लीन हैं। कुछ लड़कियों ने अपने भाइयों से भैंस के कीमेवाली पकौड़ियां भी मँगा ली हैं और मुंह फेरकर उन्हें खा रही हैं।

नजबुनिया को मेले में नहीं आने दिया गया है।

45

'चचागा' और 'गाटा' के मेले बीत गये हैं। 'गाटा' के रोज़ चौहट्टा में झगड़ा होने से बचा। यह त्योहार रबीउल अव्वल की ग्यारह तारीख़ को मनाया जाता है और इसका मेला 'चौहट्टा लाल ख़ाँ' में लगता है। लोग कहते हैं कि पुरानी काशी का यही चौक था और किन्हीं लाल ख़ाँ साहब ने बसाया था। चौहट्टेवालों को अपनी बदमाशियों पर बड़ा गर्व है। 'गाटा' के रोज़ किसी मनचले ने एक लड़की का नक़ाब उलट दिया था और उसके गाल को या पता नहीं किस चीज़ को मसल दिया था और झगड़ा हो गया था। झगड़े में अल्ताफ़ और लतीफ़ भी शामिल थे। अगर रऊफ़ चचा बीच-बचाव न कर देते तो ख़ून-ख़च्चर ज़रूर हो गया होता।

नजबुनिया इस मेले में भी नहीं आयी थी।

रऊफ़ चचा फ़र्श पर बैठे-बैठे कुछ सोच रहे हैं।

मतीन को क्या हो गया है आख़िर? इस ज़रा-सी बात को लेकर वह इतना परेशान क्यों है? अरे नहीं बनी सोसाइटी तो कौन-सा पहाड़ टूट गया? जैसे इतने दिनों तक रहते आये हैं उसी तरह बाक़ी ज़िन्दगी भी काट लेंगे। जुलाहा क्या लेगा, क्या राज लेगा?

उनकी बीवी ऊपर ताना-भरनी कर रही हैं और नजबुनिया खाना बनाने जा रही है। आज जुम्मा होने की वजह से गोश्तबाड़ा बन्द है, अतः खाने में तरकारी बनेगी। वह कद्दू काट रही है।

अचानक नजबुनिया को लगा कि मतीन आ गया है और उससे पूछ रहा है, 'तोरा बियाह कब होइए?' वह लजा जाती है। "भक्क।" वह बोलती है और उदास हो जाती है।

"का है रे?"

अम्मी पूछती हैं तो वह चौंक उठती है।

उसके भीतर धुकुर-पुकुर होने लगती है और वह जल्दी से डब्बा-डब्बा, बर्तन-सर्तन उठा-उठाकर इधर-उधर रखने लगती है।

"सलामवाले कुम।"

यह स्वर सीढ़ियों से ही गूँजता हुआ ऊपर आता है और नजबुनिया बाहर निकलकर नीचे झाँकती है। ये तो उसकी होनेवाली सास आ रही हैं; वह पहचानती

44

देश की राजनीति में कुछ भी उलट-फेर हो जाय, कितनी ही महत्त्वपूर्ण मौतें हो जायें, कैसी भी दिल हिलानेवाली घटनाएँ घट जायें, दुनिया में चाहे कोई ईमानदार आदमी हार जाय या बेईमान आदमी जीत जाय, पर सामाजिक कार्य चलते रहते हैं। वे बन्द नहीं होते; जैसे हर साल में धरती पर दूब उगती है और रेशम के कीड़े शहतूत के पत्ते खा-खाकर मुलायम, चमकदार और बेशक़ीमती धागे बनाते रहते हैं।

रऊफ चचा ने नजबुनिया का ब्याह ठीक कर दिया है और दिन-तारीख भी पक्की हो गयी है।

नजबुनिया का खिल-खिल करना बन्द हो गया है।

लेकिन इसका यह मतलब नहीं कि पूरा बनारस ही खिलखिलाना बन्द कर देगा। किसी का ब्याह होता है तो हुआ करे। कोई ग़म करता है तो किया करे! यहाँ तो इमाम हुसैन का ग़म भी ऐसा है कि पचास-साठ रोज तक त्योहार-जैसी हलचल मचाये रहता है।

आज 'पचासा' है। यह पर्व 'सफ़र' महीने की उन्तीस तारीख को मनाया जाता है। सुबह से ही चहल-पहल बढ़ गयी है। सड़कों पर एक बार फिर 'या इमाम हुसैन' के नारे गूँजने लगे हैं। छोटे-छोटे बच्चे 'हुस्से-हुस्से' कर चारों ओर दौड़ रहे हैं।

दोपहर होते-होते ताजियों का जुलूस पूरे मुहर्रमी तामझाम के साथ लाट भैरव की ओर चल देता है। लोग एक बार फिर जोश में आ जाते हैं।

लाट भैरव पर मेला लगा हुआ है। जगह-जगह भैंस के गोश्त से पकौड़ियाँ बन रही हैं और भाई लोग दूकानों पर टूटे पड़ रहे हैं। छोटे-छोटे बच्चे गुब्बारों और बाँस की सारंगियों के लिए मचल रहे हैं। औरतें तथा लड़कियाँ नक़ाब उलटे क़ब्रस्तानवाली मस्जिद के पास खड़ी हैं और 'मलाई बरफ' चूसने में तल्लीन हैं। कुछ लड़कियों ने अपने भाइयों से भैंस के क़ीमेवाली पकौड़ियाँ भी मँगा ली हैं और मुह फेरकर उन्हें खा रही हैं।

नजबुनिया को मेले में नहीं आने दिया गया है।

45

'दधागा' और 'बारा' के मेले बीत गये हैं। 'बारा' के रोज पोहट्टा में झगड़ा होने से बचा। यह त्योहार रबीउल अव्वल की बारह तारीख को मनाया जाता है और इसका मेला 'पोहट्टा लाल खाँ' में लगता है। लोग कहते हैं कि पुरानी काशी का यही छोर था और किन्हीं लाल खाँ साहब ने बसाया था। पोहट्टेवालों को अपनी बदमाशियों पर बड़ा गर्व है। 'बारा' के रोज किसी मनचले ने एक लड़की का नक़ाब उलट दिया था और उसके गाल को या पता नहीं किस चीज़ को मसल दिया था और झगड़ा हो गया था। झगड़े में अल्ताफ़ और मतीन भी शामिल थे। अगर रऊफ़ चचा बीच-बचाव न कर देते तो खून-खच्चर जरूर हो गया होता।

नजबुनिया इस मेले में भी नहीं आयी थी।

रऊफ़ चचा फ़र्श पर बैठे-बैठे कुछ सोच रहे हैं।

मतीन को क्या हो गया है आख़िर? इस ज़रा-सी बात को लेकर वह इतना परेशान क्यों है? अरे नहीं बनी सोसायटी तो कौन-सा पहाड़ टूट गया? जैसे इतने दिनों तक रहते आये हैं उसी तरह बाकी ज़िन्दगी भी काट लेंगे। जुलाहा क्या लेगा, क्या राज लेगा?

उनकी बीबी ऊपर ताना-भरनी कर रही है और नजबुनिया खाना बनाने जा रही है। आज जुम्मा होने की वजह से गोश्तबाज़ार बन्द है, अतः खाने में तरकारी बनेगी। वह कद्दू काट रही है।

अचानक नजबुनिया को लगा कि मतीन आ गया है और उससे पूछ रहा है, 'तोरा बियाह कब होइए?' वह लजा जाती है। "भक।" वह बोलती है और उदास हो जाती है।

"का है रे?"

अम्मी पूछती है तो वह चौंक उठती है।

उसके भीतर धुकुर-धुकुर होने लगती है और वह जल्दी में डब्बा-डब्बी, बर्तन-भर्तन उठा-उठाकर इधर-उधर रखने लगती है।

"सलामालेकुम।"

यह स्वर सीढ़ियों में ही गूँजता हुआ ऊपर आता है और नजबुनिया बाहर निकलकर नीचे झाँकती है। ये तो उसकी होनेवाली सास आ रही हैं; वह पहचानती

है और दुपट्टा ठीक करती हुई रसोईघर में घुस जाती है।

नजबुनिया की अम्मां अपनी समधिन के सलाम का जवाब देती हैं और खड़ी होकर उनका स्वागत करती हैं।

"आओ हो, वइठो हो···अरे नजबुनिया, मछिया-ओछिया लियो तो रे!"

वे वहीं से नजबुनिया को मचिया लाने के लिए पुकारती हैं, लेकिन तब तक उनकी समधिन वहां बिछे खटोले पर ही बैठ जाती हैं।

"अरे का होइए मछिया-ओछिया, मत मँगाओ हो, यही खटोलवा पर वइठ जाइला।"

"नाहीं हो मछीवा पर बैठो ने!"

वे ज़िद करती हैं और नजबुनिया के हाथ से मचिया लेकर समधिन को उस पर जबर्दस्ती बैठा देती हैं।

वे स्वयं नीचे बैठ जाती हैं और रऊफ चचा को बाजार भेज देती हैं। रऊफ चचा थोड़ी देर बाद मिठाई और पान लेकर आते हैं, जिन्हें तामचीन की तश्तरियों में रखकर नजबुनिया की अम्मां अपनी समधिन के सामने पेश करती हैं।

थोड़ी देर तक दोनों समधिनों में बातचीत होती रहती है, फिर शादी के बारे में अन्तिम वार्ता करके नजबुनिया की सास अपना नकाब उठाती हुई खट्ट-खट्ट सीढ़ियां उतर जाती हैं।

नजबुनिया रसोईघर में गुमसुम बैठी रहती है।

46

दीवार और छत के बीच जो दरार है उसमें गौरैयों ने अपना घोंसला बना लिया है। इन दिनों घोंसले में चोंच निकाले दो छोटे-छोटे बच्चे सदैव चीं-चीं करते रहते हैं और उनके माता-पिता अपनी-अपनी चोंच में दाने लेकर घोंसले में आया करते हैं और बच्चों की चोंच में दाना पकड़ाकर फुर्र से उड़ जाते हैं।

अलीमुन कथरी सिलने के साथ-साथ गौरैयों के घोंसले को भी देखे जा रही है और न जाने क्या-क्या सोचे जा रही है।

इकबाल आज जल्दी ही स्कूल चला गया है।

मतीन चारपाई पर टांग सिकोड़े बैठा है और अलीमुन की उँगलियों को देख रहा है। वह आज टनमन है। दरअस्ल जब से उसने मऊ जाने का निर्णय लिया है

तभी से उसके मन का कोहरा छँटने लगा है। अलीमुन से उसने बता दिया है कि वह अब बनारस में काम नहीं करेगा, मऊ जायेगा। अल्ताफ़ बता रहा था कि वहाँ आमदनी ज़्यादा है। टेरलीन का काम है और मजूरी यहाँ की बनिस्बत डेढ़ गुनी पड़ती है। अरे जहाँ जाँगर चलायेंगे वहीं रुपया मिलेगा। यहाँ बनारस में कोई गुर्धाव के घर तो गड़े नहीं हैं। इकबलवा भी अब बड़ा हो गया है, घर की देख-भाल कर लेगा। फिर बनारस से मऊ है ही कितनी दूर। दो घण्टे का रास्ता। जब जी चाहा चले आये, जब जी चाहा चले गये। कोई नौकरी तो कर नहीं रहे हैं कि छुट्टी लेने की झंझट होगी। अरे अपना काम है, जब चाहेंगे करेंगे, जब चाहेंगे नहीं करेंगे!

उसके इस फ़ैसले से अलीमुन को पीड़ा तो ज़रूर पहुँची, पर विरोध उसने नहीं किया। अरे कहीं भी रहें, खुश तो रहें ये। बचपन से ही तो दुख झेल रहे हैं। जो भी सपना देखा पूरा नहीं हुआ। और इस हार ने तो भीतर तक तोड़कर रख दिया है। नाश हो ऐसे गिरस्ता का! पूरे खानदान के लिए मुनकिर-नकीर (यमदूत) आवें। बिला जायें हरामी सब!

मन-ही-मन अलीमुन ने हाजी अमीरुल्ला के सात पुश्तों को कोसा और खामोश रही। सिर्फ़ दबी ज़बान से एक सवाल पूछा कि कब जाओगे, जिसके उत्तर में थोड़ी देर तक मतीन चुप रहा। फिर बताया कि जल्दी ही जाने का विचार है। और साथ ही यह ताकीद भी की कि अगर तबीयत-वबीयत कभी ज़्यादा ख़राब हो तो किसी से ख़बर कहलाकर बुलवा लेना। यहाँ के बहुत-से लोग मऊ आते-जाते रहते हैं।

अलीमुन ने आधे मन से सबकुछ स्वीकार कर लिया और मतीन को लगा कि उसने ठीक ही निर्णय लिया है। इस जहन्नुम से निकल चलना ही बेहतर होगा। फिर मऊ में अगर ठीक से कमाई-धमाई हो गयी तो उसके बाद देखा जायेगा। वैसे बनारस में अब वह तभी अपना काम जमायेगा, जब अपना करघा और रेशम-भर की अपनी पूँजी उसके पास हो जायेगी। यहाँ के गिरस्तों के यहाँ न तो अब वह मजूरी पर बिनेगा और न बानी पर।

और उसने मन-ही-मन तय किया कि अगले इतवार को वह मऊ के लिए रवाना हो जायेगा।

चो! चो!

गौरैया के बच्चों ने शायद आपस में कोई बातचीत की और मतीन की चारपाई के पास घास का एक लम्बा-सा तिनका आ गिरा। वह मुस्कराया। बच्चे अच्छे ही लगते हैं, चाहे वे आदमी के हों या चिड़िया के। वे भीतर के दुख को हर लेते हैं और ओठों पर पवित्र मुस्कान छाप देते हैं।

"अलीमुन, ऐ अलीमुन !"

अचानक सीढ़ियों पर किसी के चढ़ने की और अलीमुन को पुकारने की आवाज आयी तो मतीन चौंका। यह तो रऊफ चचा की बीवी की आवाज है।

"सलांवाले कुम।"

मतीन और अलीमुन दोनों ने साथ-साथ सलाम किया।

रऊफ चचा की बीवी ने अपनी फूल-कढ़ी सफेद चादर को दोनों हाथों से समेटा और चप्पल उतारकर जमीन पर बैठ गयीं। अलीमुन ने कथरी लपेटकर उसे एक ओर सरका दिया और दीवार से टिककर बैठ गयी। कमर में दर्द होने लगा था।

"जीव ठीक है ने ?"

नजबुनिया की अम्माँ ने एक ही सवाल से पति-पत्नी दोनों की खैरियत का पता लगाया और फिर जल्दी ही अपनी मुख्य बात पर आ गयीं।

"देखो लड़की क बियाह है। आज अबटन लगिये, चार बजे। बुध के रज्जगा है। अँगरेजी बीस तारिक के बरात अइए। घर-भर क दावत है। आवे के है। जरूर से। तनिक्को फरक न पड़ै।"

अलीमुन खिल गयी। लड़की के ब्याह की खबर से टोले-मुहल्ले की स्त्रियाँ अक्सर ही प्रसन्न हो जाती हैं। उसने वादा किया कि आज अबटन के वखत वह जरूर आयेगी और यह भी कहा कि शादी के रोज सभी लोग आयेंगे। बिटिया का बियाह है, भला इसमें भी कोई शामिल न होगा ?

और नजबुनिया की अम्माँ चली गयीं। अलीमुन रसोईघर में जाकर खटर-पटर करने लगी। इकबलवा आज खाकर नहीं गया है। दोपहर का आयेगा तो आते ही खाने के लिए छैला जायेगा। जल्दी से कुछ पका-वका ले। संझा को रऊफ चचा के हियाँ भी जाना है।

नजबुनिया का बियाह हो रहा है। होना ही चाहिए ! क्यों न हो भला ?···मतीन ने सोचा और भीतर-ही-भीतर बरसाती नदी की तरह बिखरने लगा।

नहीं, इस प्रवाह को वह रोक नहीं सकता।

वह लेट गया और अपना चेहरा उसने शुतुरमुर्ग की तरह कथरी की रेत में गाड़ लिया।

उसकी आँखों से बाढ़ का पानी भचर-भचर बहने लगा।

'भक्क् !'

अचानक एक शब्द उसके कानों में ठक्क-से आकर लगता है और वह चिहुक उठता है।

वह खड़ा हो जाता है। लुंगी के टोंके से अपनी आँखें पोंछ लेता है और कमरे

में टहलने लगता है। फिर वह खूँटी से एक झोला उतारता है और उसमें अपने कपड़े-कपड़े भरने लगता है। वह आज ही मऊ चला जायेगा।

असीमुन उसके क्रिया-कलापों को देखती रहती है; बोलती कुछ नहीं। जब से बैंकवाली घटना घटी है मतीन कुछ भी करता है, वह खामोश रहती है। दरअस्ल वह डरती है कि उसकी कोई बात कहीं और न दुःख पहुँचाये उसे।

मतीन झोला लेकर बाहर निकल जाता है।

असीमुन अपनी पानी-पानी आँखों से तब तक अपने शौहर को देखती रहती है जब तक वह गली के मोड़ पर पहुँचकर ओझल नहीं हो जाता।

मऊ की ओर जानेवाली पैसेंजर ट्रेन एक घण्टा लेट है। मतीन अलईपुर स्टेशन के प्लेटफार्म पर अपना झोला लिये इधर-उधर टहल रहा है उसके अन्तरतम में धौंकनी-जैसी कोई चीज चल रही है।

स्टेशन की दीवारों पर तरह-तरह के पोस्टर लगे हुए हैं—'सावधानी हटी कि खतरा हुआ !' 'मैं तुलसी तेरे आँगन की !' 'ठगों से सावधान'···

कुछ भिखमंगे बच्चे किसी फिल्म का गाना गा रहे हैं और एक छोटी-सी बच्ची हाथ मटका-मटकाकर नाच रही है। चायवाला उन्हें दूर भगा रहा है।

तभी पटनी की ओर से एक गाड़ी आती है और उसमें से कुछ ऐसे देहाती स्टेशन पर उतरते हैं जो शक्ल से ही आध्यात्मिक लग रहे हैं। उन्हें देखते ही कन्धे पर गमछा डाले, घुटनों तक की धोती पहने एक आदमी उनकी ओर लपक पड़ता है और उनसे गुपुर-गुपुर बतियाने लगता है। तब तक एक दूसरा गमछाधारी व्यक्ति भी वहाँ पहुँच जाता है, जिसे पहला व्यक्ति गुप्त भाषा में डाँटकर भगा देता है, जैसे किसी माल को खा रहा कोई कुत्ता दूसरे कुत्ते को भौंककर वहाँ से हटा देता है।

पटनी से आनेवाली गाड़ी कैंन्ट की ओर रवाना हो जाती है। मतीन की गाड़ी कैंन्ट से अभी तक नहीं आयी।

मतीन अब तक की सारी घटनाओं को भूल जाना चाहता है—अपनी सोसायटी को भी और नजबुनिया को भी। लेकिन बार-बार उसकी आँखों के सामने बैंक मैनेजर का चेहरा और नजबुनिया के खिस-खिस करते हुए दाँत घूम जाते हैं। बीच-बीच में असीमुन की कपरी घिसती हुई उँगलियाँ और इकबाल की धँसी-धँसी-सी आँखें भी उसकी आँखों में नाचती है और वह थरथराने लगता है।

अचानक वह तय करता है कि वापस लौट चले और अपनी जिन्दगी से समझौता कर ले, लेकिन उसके पाँव गेट की ओर नहीं बढ़ते और वह झोला लिये-लिये टहलता रहता है।

तभी उसकी गाड़ी आ जाती है और एक डिब्बे में घुसकर वह बैठ जाता है। गाड़ी पांच मिनट तक अलईपुर स्टेशन पर रुकती है, फिर चल देती है।

मतीन अपनी गोद में झोला लिये, सिर झुकाये बैठा रहता है। जब सारनाथ स्टेशन आता है तो थोड़ी देर के लिए वह बाहर की दुनिया में खुद को ले जाता है और स्टेशन पर लिखी इबारत को अटक-अटककर पढ़ने लगता है—

बुद्धं शरणम् गच्छामि
धम्मं शरणम् गच्छामि
संघं शरणम् गच्छामि।

1

कैंट !

दिल्ली से आनेवाली काशी विश्वनाथ एक्सप्रेस गाड़ी वाराणसी के कैंट स्टेशन पर सुबह सवा छः बजे के करीब पहुँचती है।

भला हो पं. कमलापति त्रिपाठी का जिन्होंने अपने रेल मन्त्रित्व-काल में इतनी अच्छी-अच्छी गाड़ियाँ चलायीं और बनारस को हिन्दुस्तान की हर महत्त्वपूर्ण जगह से जोड़ दिया। स्टेशन की इमारत भी नयी बनवा दी। उन्होंने और बहूजी ने मिलकर कितने बेचारों को रेल विभाग में नौकरियाँ भी दिलवा दीं।

हाजी अमीरुल्ला 'काशी विश्वनाथ' से उतरकर यही सब सोचते हुए स्टेशन से बाहर आये और रिक्शा ढूँढ़ने लगे।

सूरज अभी नहीं निकला था, लेकिन उजाला काफी हो गया था। बाहर चहल-पहल भी बढ़ गयी थी। रिक्शेवाले यात्रियों के पीछे टूटे पड़ रहे थे। लेकिन हाजी अमीरुल्ला के पास कोई भी रिक्शावाला नहीं आया था। दरअसल सारे-के-सारे रिक्शेवाले या तो विदेशियों के पीछे पड़े हुए थे या गंगा-स्नान करनेवालों के, ताकि उनसे अच्छे पैसे वसूल किये जा सकें। हाजी अमीरुल्ला की लुंगी-टोपी देखकर ही वे समझ गये थे कि वे स्थानीय आदमी हैं और इनके पीछे लगने से कोई फायदा नहीं है।

हाजी अमीरुल्ला बहुत परेशान हुए। एक रिक्शावाला तैयार भी हुआ तो लगा पाँच रुपये माँगने। हाजी साहब तीन रुपये से शुरू होकर चार तक पहुँच गये लेकिन वह टस-से-मस नहीं हुआ। और वे दूसरे रिक्शेवाले के पास पहुँचे, लेकिन जब वहाँ सफलता नहीं मिली तो फिर उसी रिक्शेवाले के पास पहुँचे और पाँच रुपये ही देने को तैयार हो गये। मगर उसने इनकार कर दिया और अपना रिक्शा लेकर आगे बढ़ गया।

तब हाजी अमीरुल्ला थोड़ी देर तक वहीं गुमसुम खड़े रहे, फिर अपना झोला उठाकर पैदल ही चल पड़े। थोड़ा आगे जाने पर एक रिक्शावाला सामने से आता हुआ उन्हें दिखायी पड़ गया जिसे रुकवा करके बगैर कुछ कहे-सुने [illegible]

गये और बोले, "चलो।" हाजी साहब का यह सौभाग्य ही था कि उस रिक्शेवाले ने कोई चूं-चपड़ नहीं की और चुपचाप चल पड़ा।

हाजी अमीरुल्ला हैदराबाद गये थे रेशम का भाव-ताव देखने। वहां से दिल्ली होते हुए लौटे हैं। उनकी सफेद लुंगी यात्रा के कारण बहुत गन्दी हो चुकी है और कुर्ते पर तरह-तरह के दाग लग गये हैं लेकिन उन्हें कोई ग़म नहीं है। बड़े लोग अपने वेश-विन्यास पर ज्यादा ध्यान नहीं देते। इसी में उनका बड़प्पन है। अरे इनके बड़े भाई हाजी मतिउल्ला तो लुंगी पहनकर विदेश भी जा चुके हैं। फ्रांस और अमेरिका की यात्राएँ उन्होंने लुंगी में ही की हैं। कौन भोसड़ियावाला क्या कहेगा? विदेश जा रहे हैं तो क्या अपना तहजीबो-तमद्दुन (सभ्यता और संस्कृति) छोड़ दें? उनके घर के लड़के आज भी लुंगी पहनकर स्कूटर चलाते हैं, फिल्म देखते हैं, सारनाथ घूमते हैं।

रिक्शा अचानक रुक गया। चेन उतर गयी थी। रिक्शेवाले ने चेन चढ़ायी और फिर चल पड़ा।

सड़क बेहद ख़राब थी। जगह-जगह गिट्टियां निकल आयी थीं और गड्ढे बन गये थे। जब किसी गड्ढे में रिक्शे का पहिया पड़ता तो हाजी अमीरुल्ला को लगता कि अब उलट जायेंगे और वे भयभीत हो जाते। लेकिन रिक्शा फिर सँभल जाता। वे फिर मुतमइन हो जाते और सोचने लगते।

रेशम बहुत महँगा हो गया है। कारोबार कैसे चलेगा? जब से हाजी अमीरुल्ला ने अपना कारोबार बढ़ाया है तब से बस यही एक चिन्ता उन्हें खाये जा रही है कि कारोबार कैसे चलेगा?

हाजी अमीरुल्ला ने करघों का काम अब कम कर दिया है और उनके स्थान पर पावरलूम्स बैठा लिये हैं। 'सोसायटी' को सरकार से जो सत्तर हज़ार रुपये मिले थे, हाजी साहब ने उनका सदुपयोग पावरलूम्स बैठाने में ही किया है। हालांकि लतीफ-वतीफ ने थोड़ी चूं-चपड़ की थी, मगर शरफुद्दिनवा ने ऐसा भभका दिया कि एक ही झटके में खामोश हो गये। फिर किसी की हिम्मत नहीं पड़ी। पावरलूम्स लग जाने से बड़ी आसानी हो गयी है। यही नहीं, अब इस कोआपरेटिव सोसायटी के माध्यम से चूंकि उनका माल सीधे एक्सपोर्ट होने लगा है, इसलिए माल भी ज्यादा तैयार कराना पड़ता है। वैसे एक साड़ी को एक बुनकर कम-से-कम चार दिनों में तैयार करता था, अब एक पावरलूम—अगर बिजली रही तो—एक दिन में चार साड़ियाँ तैयार करता है। हालांकि इन साड़ियों में वैसी कारीगरी और नक्क़ाशी नहीं होती, पर आमदनी ज्यादा है। 'बनारसी साड़ी' के आम ख़रीददार तो होते नहीं अब—और इन साड़ियों को हर आमो-ख़ास ख़रीद लेता है। लेकिन करघे पूरी तरह ख़त्म नहीं हुए हैं। कुछ करघे अभी भी चल रहे हैं। दूकान में हर तरह का माल होना चाहिए। बल्कि शरफुद्दीन को एक नया कारोबार भी

उन्होंने शुरू करा दिया है। वह अपने खाली वक़्त में छाते की ताड़ियाँ तैयार करवाता है और अँगूठियों में लगनेवाले नगों का कारोबार भी अब शुरू करनेवाला है।

बनारस में जिधर देखिए उधर ही अब पावरलूम-ही-पावरलूम नज़र आते हैं। हर छोटे-बड़े गिरस्त ने अपने यहाँ पावरलूम लगा रखा है। दुनिया बड़ी तेज़ी से तरक्की कर रही है। बुनकरों की गलियों में रात-रात-भर पावरलूम चला करते हैं। खटर खटर···खटर खटर···खटर खटर ··जैसे कोई अन्तहीन रेलगाड़ी चली जा रही हो।

हाजी अमीरुल्ला के यहाँ दस पावरलूम लगे हुए हैं। हाजी मतिउल्ला, हाजी मिनिस्टर और हबीबुल्ला ने भी अपने-अपने घरों में पावरलूम बैठा लिये हैं। उधर हाजी अमीरुल्ला के भावी समधी हाजी कमीउल्ला गिरस्त के यहाँ तो पहले से ही कई पावरलूम थे, इधर और आ गये हैं और वे गिने-चुने रईस अंसारियों में अब अपना महत्त्वपूर्ण स्थान बना चुके हैं। अपने को वे अलईपुरा इलाके के लाट स्वालेह (बनारस के एक रईस अंसारी) समझते हैं। हाजी रशीद, हाजी सलामतुल्ला, हाजी नज़ीर और बाऊ हम्मा आदि ने भी अपने-अपने यहाँ पावरलूम बैठा लिये हैं। इस प्रकार पूरे इलाके में अब एक अन्तहीन रेलगाड़ी निरन्तर चला करती है और मुहल्लेवालों की नींद हराम किया करती है।

लेकिन हाजी अमीरुल्ला को इससे क्या लेना-देना है? उनकी तो पहली महत्त्वपूर्ण चिन्ता यह है कि रेशम का भाव कैसे नीचे गिरे? इसके लिए उनके सद्प्रयासों से पिछले दिनों बनारस, मऊनाथ भंजन और मुबारकपुर के अनेक बुनकरों ने हड़ताल भी कर दी थी और उनकी हालत और खस्ता हो गयी थी। लेकिन कोई खास फ़र्क़ अभी नहीं पड़ा है। इस मामले को लेकर संसद में सवाल उठाया जानेवाला था, पता नहीं क्या हुआ? मगर कारोबार ठीक-ठाक जम गया तो इस साल दो काम करने हैं। हबीबुल्ला को हज के लिए भेजना है और शरफुद्दीन का ब्याह करना है···

अभी वे कुछ और भी सोचते, लेकिन रिक्शा उनके दरवाज़े पर पहुँच गया और वे उतर पड़े। उतरते वक़्त उनकी लुंगी रिक्शे में कहीं फँसकर चर्र-से फट गयी। कोई बात नहीं।

घर के बच्चों ने हाजी साहब को रिक्शे से उतरते हुए देखकर थोड़ी देर तक शोर किया, फिर आगरेवाला पेठा खाकर ख़ामोश हो गये।

हाजी साहब पखाना गये। वहाँ देर तक बैठे-बैठे कुछ सोचते रहे। फिर बाहर निकलकर उन्होंने स्नान किया और नाश्ता करके गद्दी पर आ बैठे। शरफुद्दीन ने उनके सामने कई दिन के अख़बार रख दिये। 'आज', 'दैनिक जागरण' और 'कौमी एकता'।

गये और बोले, "चलो।" हाजी साहब का यह सौभाग्य ही था कि उस रिक्शेवाले ने कोई चूं-चपड़ नहीं की और चुपचाप चल पड़ा।

हाजी अमीरुल्ला हैदराबाद गये थे रेशम का भाव-ताव देखने। वहां से दिल्ली होते हुए लौटे हैं। उनकी सफेद लुंगी यात्रा के कारण बहुत गन्दी हो चुकी है और कुर्ते पर तरह-तरह के दाग लग गये हैं लेकिन उन्हें कोई ग़म नहीं है। बड़े लोग अपने वेश-विन्यास पर ज्यादा ध्यान नहीं देते। इसी में उनका बड़प्पन है। अरे इनके बड़े भाई हाजी मतिउल्ला तो लुंगी पहनकर विदेश भी जा चुके हैं। फ्रांस और अमेरिका की यात्राएं उन्होंने लुंगी में ही की हैं। कौन भोसड़ियावाला क्या कहेगा? विदेश जा रहे हैं तो क्या अपना तहजीबो-तमद्दुन (सभ्यता और संस्कृति) छोड़ दें? उनके घर के लड़के आज भी लुंगी पहनकर स्कूटर चलाते हैं, फिल्म देखते हैं, सारनाथ घूमते हैं।

रिक्शा अचानक रुक गया। चेन उतर गयी थी। रिक्शेवाले ने चेन चढ़ायी और फिर चल पड़ा।

सड़क बेहद खराब थी। जगह-जगह गिट्टियां निकल आयी थीं और गड्ढे बन गये थे। जब किसी गड्ढे में रिक्शे का पहिया पड़ता तो हाजी अमीरुल्ला को लगता कि अब उलट जायेंगे और वे भयभीत हो जाते। लेकिन रिक्शा फिर सँभल जाता। वे फिर मुतमइन हो जाते और सोचने लगते।

रेशम बहुत महंगा हो गया है। कारोबार कैसे चलेगा? जब से हाजी अमीरुल्ला ने अपना कारोबार बढ़ाया है तब से बस यही एक चिन्ता उन्हें खाये जा रही है कि कारोबार कैसे चलेगा?

हाजी अमीरुल्ला ने करघों का काम अब कम कर दिया है और उनके स्थान पर पावरलूम्स बैठा लिये हैं। 'सोसायटी' को सरकार से जो सत्तर हजार रुपये मिले थे, हाजी साहब ने उनका सदुपयोग पावरलूम्स बैठाने में ही किया है। हालांकि लतीफ-वतीफ ने थोड़ी चूं-चपड़ की थी, मगर शरफुद्दिनवा ने ऐसा भभका दिया कि एक ही झटके में खामोश हो गये। फिर किसी की हिम्मत नहीं पड़ी। पावरलूम्स लग जाने से बड़ी आसानी हो गयी है। यही नहीं, अब इस कोआपरेटिव सोसायटी के माध्यम से चूंकि उनका माल सीधे एक्सपोर्ट होने लगा है, इसलिए माल भी ज्यादा तैयार कराना पड़ता है। वैसे एक साड़ी को एक बुनकर कम-से-कम चार दिनों में तैयार करता था, अब एक पावरलूम—अगर बिजली रही तो—एक दिन में चार साड़ियाँ तैयार करता है। हालांकि इन साड़ियों में वैसी कारीगरी और नक्क़ाशी नहीं होती, पर आमदनी ज्यादा है। 'बनारसी साड़ी' के आम ख़रीददार तो होते नहीं अब—और इन साड़ियों को हर आमो-ख़ास ख़रीद लेता है। लेकिन करघे पूरी तरह ख़त्म नहीं हुए हैं। कुछ करघे अभी भी चल रहे हैं। दूकान में हर तरह का माल होना चाहिए। बल्कि शरफुद्दीन को एक नया कारोबार भी

उन्होंने शुरू करा दिया है। वह अपने खाली वक़्त में छापे की साड़ियाँ तैयार करवाता है और अँगूठियों में लगनेवाले नगों का कारोबार भी अब शुरू करनेवाला है।

बनारस में जिधर देखिए उधर ही अब पावरलूम-ही-पावरलूम नज़र आते हैं। हर छोटे-बड़े गिरस्त ने अपने यहाँ पावरलूम लगा रखा है। दुनिया बड़ी तेजी से तरक्की कर रही है। बुनकरों की गलियों में रात-रात-भर पावरलूम चला करते हैं। खटर खटर···खटर खटर···खटर खटर···जैसे कोई अन्तहीन रेलगाड़ी चली जा रही हो।

हाजी अमीरुल्ला के यहाँ दस पावरलूम लगे हुए हैं। हाजी मतिउल्ला, हाजी मिनिस्टर और हबीबुल्ला ने भी अपने-अपने घरों मे पावरलूम बैठा लिये हैं। उधर हाजी अमीरुल्ला के भावी समधी हाजी वलीउल्ला गिरस्त के यहाँ तो पहले मे ही कई पावरलूम थे, इधर और आ गये हैं और वे गिने-चुने रईस अंसारियों में अब अपना महत्त्वपूर्ण स्थान बना चुके हैं। अपने को वे अलईपुरा इलाके के लाट स्वालेह (बनारस के एक रईस अंसारी) समझते हैं। हाजी रसीद, हाजी सलामतुल्ला, हाजी नजीर और बाऊ हब्बा आदि ने भी अपने-अपने यहाँ पावरलूम बैठा लिये हैं। इस प्रकार पूरे इलाके में अब एक अन्तहीन रेलगाड़ी निरन्तर चला करती है और मुहल्लेवालों की नींद हराम किया करती है।

लेकिन हाजी अमीरुल्ला को इसमे क्या लेना-देना है? उनकी तो पहली महत्त्वपूर्ण चिन्ता यह है कि रेशम का भाव कैसे नीचे गिरे? इसके लिए उनके सद्प्रयासों से पिछले दिनों बनारस, मऊनाथ भंजन और मुबारकपुर के अनेक बुनकरों ने हड़ताल भी कर दी थी और उनकी हालत और खस्ता हो गयी थी। लेकिन कोई ख़ास फ़र्क़ अभी नहीं पड़ा है। इस मामले को लेकर संसद मे सवाल उठाया जानेवाला था, पता नहीं क्या हुआ? अगर कारोबार ठीक-ठाक जम गया तो इस साल दो काम करने हैं। हबीबुल्ला को हज के लिए भेजना है और शरफुद्दीन का ब्याह करना है···

अभी वे कुछ और भी सोचते, लेकिन रिक्शा उनके दरवाजे पर पहुँच गया और वे उतर पड़े। उतरते वक़्त उनकी लुंगी रिक्शे में कहीं फँसकर चर्र-से फट गयी। कोई बात नहीं।

घर के बच्चों ने हाजी साहब को रिक्शे से उतरते हुए देखकर थोड़ी देर तक शोर किया, फिर आगरेवाला पेठा खाकर खामोश हो गये।

हाजी साहब पखाना गये। वहाँ देर तक बैठे-बैठे कुछ सोचते रहे। फिर बाहर निकलकर उन्होंने स्नान किया और नाश्ता करके गद्दी पर आ बैठे। शरफुद्दीन ने उनके सामने कई दिन के अख़बार रख दिये। 'आज', 'दैनिक जागरण' और 'क़ौमी एकता'।

गये और बोले, "चलो।" हाजी साहब का यह सौभाग्य ही था कि उस रिक्शेवाले ने कोई चूं-चपड़ नहीं की और चुपचाप चल पड़ा।

हाजी अमीरुल्ला हैदराबाद गये थे रेशम का भाव-ताव देखने। वहां से दिल्ली होते हुए लौटे हैं। उनकी सफेद लुंगी यात्रा के कारण बहुत गन्दी हो चुकी है और कुर्ते पर तरह-तरह के दाग लग गये हैं लेकिन उन्हें कोई ग़म नहीं है। बड़े लोग अपने वेश-विन्यास पर ज्यादा ध्यान नहीं देते। इसी में उनका बड़प्पन है। अरे इनके बड़े भाई हाजी मतिउल्ला तो लुंगी पहनकर विदेश भी जा चुके हैं। फ्रांस और अमेरिका की यात्राएँ उन्होंने लुंगी में ही की हैं। कौन भोसड़ियावाला क्या कहेगा? विदेश जा रहे हैं तो क्या अपना तहज़ीबो-तमद्दुन (सभ्यता और संस्कृति) छोड़ दें? उनके घर के लड़के आज भी लुंगी पहनकर स्कूटर चलाते हैं, फिल्म देखते हैं, सारनाथ घूमते हैं।

रिक्शा अचानक रुक गया। चेन उतर गयी थी। रिक्शेवाले ने चेन चढ़ायी और फिर चल पड़ा।

सड़क बेहद ख़राब थी। जगह-जगह गिट्टियां निकल आयी थीं और गड्ढे बन गये थे। जब किसी गड्ढे में रिक्शे का पहिया पड़ता तो हाजी अमीरुल्ला को लगता कि अब उलट जायेंगे और वे भयभीत हो जाते। लेकिन रिक्शा फिर सँभल जाता। वे फिर मुतमइन हो जाते और सोचने लगते।

रेशम बहुत महँगा हो गया है। कारोबार कैसे चलेगा? जब से हाजी अमीरुल्ला ने अपना कारोबार बढ़ाया है तब से बस यही एक चिन्ता उन्हें खाये जा रही है कि कारोबार कैसे चलेगा?

हाजी अमीरुल्ला ने करघों का काम अब कम कर दिया है और उनके स्थान पर पावरलूम्स बैठा लिये हैं। 'सोसायटी' को सरकार से जो सत्तर हज़ार रुपये मिले थे, हाजी साहब ने उनका सदुपयोग पावरलूम्स बैठाने में ही किया है। हालाँकि लतीफ-पतीफ ने थोड़ी चूं-चपड़ की थी, मगर शरफुद्दिनवा ने ऐसा भभका दिया कि एक ही झटके में ख़ामोश हो गये। फिर किसी की हिम्मत नहीं पड़ी। पावरलूम्स लग जाने से बड़ी आसानी हो गयी है। यही नहीं, अब इस कोआपरेटिव सोसायटी के माध्यम से चूँकि उनका माल सीधे एक्सपोर्ट होने लगा है, इसलिए माल भी ज्यादा तैयार कराना पड़ता है। वैसे एक साड़ी को एक बुनकर कम-से-कम चार दिनों में तैयार करता था, अब एक पावरलूम—अगर बिजली रही तो—एक दिन में चार साड़ियाँ तैयार करता है। हालाँकि इन साड़ियों में वैसी कारीगरी और नक़्क़ाशी नहीं होती, पर आमदनी ज्यादा है। 'बनारसी साड़ी' के आम ख़रीददार तो होते नहीं अब—और इन साड़ियों को हर आमो-ख़ास ख़रीद लेता है। लेकिन करघे पूरी तरह ख़त्म नहीं हुए हैं। कुछ करघे अभी भी चल रहे हैं। दूकान में हर तरह का माल होना चाहिए। बल्कि शरफुद्दीन को एक नया कारोबार भी

उन्होंने शुरू करा दिया है। वह अपने खाली वक़्त में छापे की साड़ियाँ तैयार करवाता है और अँगूठियों में लगनेवाले नगों का कारोबार भी अब शुरू करनेवाला है।

बनारस मे जिधर देखिए उधर ही अब पावरलूम-ही-पावरलूम नजर आते हैं। हर छोटे-बड़े गिरस ने अपने यहाँ पावरलूम लगा रखा है। दुनिया बड़ी तेजी से तरक्की कर रही है। बुनकरों की गलियों में रात-रात-भर पावरलूम चला करते है। खटर खटर···खटर खटर···खटर खटर···जैसे कोई अन्तहीन रेलगाडी चली जा रही हो।

हाजी अमीरुल्ला के यहाँ दस पावरलूम लगे हुए हैं। हाजी मतिउल्ला, हाजी मिनिस्टर और हबीबुल्ला ने भी अपने-अपने घरों में पावरलूम बैठा लिये हैं। उधर हाजी अमीरुल्ला के भावी समधी हाजी वलीउल्ला गिरस के यहाँ तो पहले से ही कई पावरलूम थे, इधर और आ गये हैं और वे गिने-चुने रईस अंसारियो में अब अपना महत्त्वपूर्ण स्थान बना चुके हैं। अपने को वे अलईपुरा इलाके के लाट स्वालेह (बनारस के एक रईस अंसारी) समझते हैं। हाजी रसीद, हाजी सलामतुल्ला, हाजी नजीर और बाऊ डब्बा आदि ने भी अपने-अपने यहाँ पावरलूम बैठा लिये हैं। इस प्रकार पूरे इलाके मे अब एक अन्तहीन रेलगाड़ी निरन्तर चला करती है और मुहल्लेवालो की नीद हराम किया करती है।

लेकिन हाजी अमीरुल्ला को इससे क्या लेना-देना है? उनकी तो पहली महत्त्वपूर्ण चिन्ता यह है कि रेशम का भाव कैसे नीचे गिरे? इसके लिए उनके सद्‌प्रयासों से पिछले दिनों बनारस, मऊनाथ भंजन और मुबारकपुर के अनेक बुनकरों ने हड़ताल भी कर दी थी और उनकी हालत और खस्ता हो गयी थी। लेकिन कोई खास फ़र्क़ अभी नही पड़ा है। इस मामले को लेकर संसद मे सवाल उठाया जानेवाला था, पता नही क्या हुआ? अगर कारोबार ठीक-ठाक जम गया तो इस साल दो काम करने हैं। हबीबुल्ला को हज के लिए भेजना है और शरफुद्दीन का ब्याह करना है···

अभी वे कुछ और भी सोचते, लेकिन रिक्शा उनके दरवाज़े पर पहुँच गया और वे उतर पड़े। उतरते वक़्त उनकी लुंगी रिक्शे में कहीं फँसकर गर्र-से फट गयी। कोई बात नही।

घर के बच्चो ने हाजी साहब को रिक्शे से उतरते हुए देखकर थोड़ी देर तक शोर किया, फिर आगरेवाला पेठा खाकर खामोश हो गये।

हाजी साहब पखाना गये। वहाँ देर तक बैठे-बैठे कुछ सोचते रहे। फिर बाहर निकलकर उन्होंने स्नान किया और नाश्ता करके गद्दी पर आ बैठे। शरफुद्दीन ने उनके सामने कई दिन के अखबार रख दिये। 'आज', 'दैनिक जागरण' और 'कौमी एकता'।

"कमरवा कहाँ गोवा वे ?"

"गंगाजी गोया है, नहाये।"

हाजी साहब अपने सवाल के उत्तर से थोड़ा असन्तुष्ट हुए और एक-एक अखबार उठा-उठाकर सरसरी तौर पर देखने लगे। हाजी साहब को हिन्दी बहुत कम आती है, पर काम-चलाऊ पढ़-पढ़ा लेते हैं। अचानक 'दैनिक जागरण' में छपे एक समाचार पर उनकी दृष्टि कील की तरह गड़ गयी। वे उस समाचार को गौर के साथ अटक-अटककर पढ़ने लगे—

'वाराणसी के रेशमी वस्त्र के बुनकरों के संकट की चर्चा'

'नयी दिल्ली, 28 नवम्बर। केन्द्र सरकार ने स्वीकार किया है कि उत्तर प्रदेश में वाराणसी के हैण्डलूम सिल्क उद्योग को रेशमी धागों के मूल्य में हुई असाधारण वृद्धि के परिणामस्वरूप संकट का सामना करना पड़ा है। यह स्वीकारोक्ति कल लोकसभा में कांग्रेस (ई) के जैनुल बशर (गाजीपुर) के प्रश्न के उत्तर में केन्द्रीय वाणिज्य राज्यमन्त्री खुर्शीद आलम खाँ ने की है।

श्री खाँ ने बताया कि कच्चे रेशम की कीमत में अनेक कारणों से वृद्धि हुई है, जैसे एक ओर तो सूखे की स्थिति और ऊर्जा संकट की वजह से कर्नाटक में उत्पादन में कमी और दूसरी ओर हथकरघा तथा विद्युत करघा क्षेत्रों में कच्चे रेशम की मात्रा में वृद्धि वर्तमान स्थिति का सामना करने के लिए भारत सरकार ने केन्द्रीय रेशम बोर्ड के माध्यम से 250 मीट्रिक टन रेशम का आयात करने का निश्चय किया है। इसके साथ ही सम्बन्धित राज्य सरकारों के विभिन्न विकास-कार्यक्रमों के अन्तर्गत आनेवाले महीनों से ऊर्जा-संकट को कम करने तथा उत्पादन बढ़ाने के लिए कदम उठाये जा रहे हैं।

श्री खाँ ने प्रश्नकर्ता को यह भी बताया कि केन्द्र सरकार ने छठी पंचवर्षीय योजनावधि में रेशम उद्योग के विकास को प्रोत्साहन प्रदान करने हेतु उत्तर प्रदेश सरकार को नौ करोड़ रुपये की केन्द्रीय सहायता उपलब्ध कराने का निर्णय किया है।[1]

हाजी साहब का दिल खुश हो गया। भला बशर साहब ने यह प्रश्न उठाया तो संसद में। उन्हें तो नहीं विश्वास था कि जुलाहों के मसले को एक मिल्की उठायेगा इस तरह! अरे मिल्कियों का क्या भरोसा? मिल्की कहे न दिल की! फिर जुलाहों से तो इन्हें दिली नफरत है। अरे एक जमाना था कि गांव के जुलाहे इनके यहाँ हुक्कों पर चिलमें चढ़ाया करते थे और अब एक जमाना यह आ गया है कि बनारस के जुलाहे चाहें तो मिल्कियों को अपने यहाँ नौकर रख लें। भला कैसे बर्दाश्त होगा यह सब? लेकिन भई हाँ, कहना होगा कि बशर साहब बहुत आला

1. दैनिक जागरण, 29-11-81 से साभार।

आदमी हैं।

हाजी अमीरुल्ला ने मन-ही-मन गाजीपुर के एम. पी. जैनुल बशर की तारीफ की और 'आज' के अंक देखने लगे। उन्हें 'आज' में भी इसी तरह की एक खबर मिल गयी और वे उसे भी अटक-अटककर ध्यानपूर्वक पढ़ने लगे—

'बुनकरों की दयनीय स्थिति की राज्यसभा में चर्चा'

'नयी दिल्ली, 2 दिसम्बर! भारतीय जनता पार्टी के सदस्य श्री बलराज मिश्र ने आज राज्य सभा में विशेष उल्लेख नियम के अन्तर्गत वाराणसी, मुबारकपुर तथा आसपास के लगभग साढ़े पाँच लाख बुनकरों की दयनीय स्थिति पर सरकार का ध्यान आकृष्ट करते हुए अनुरोध किया कि रेशमी सिल्क धागे के मूल्यों मे बेतहाशा वृद्धि होने के कारण इस क्षेत्र के साठ हजार हथकरघों पर प्रभाव पड़ा है।

श्री मिश्र ने कहा कि पिछले मास पाँच लाख बुनकरों ने हड़ताल की थी, जिसके कारण उनके सामने जीवन-यापन की समस्याएँ गम्भीर हो गयी हैं। यह स्थिति रेशमी सिल्क धागे का मूल्य एकाएक साठ रुपये प्रति किलोग्राम से बढ़कर आठ सौ पचास रुपये से लेकर नौ सौ रुपये तक हो जाने के कारण हुई।

उन्होंने कहा कि कर्नाटक राज्य से रेशमी सिल्क यार्न की खरीद होती थी तथा जिसका क्रय-विक्रय निर्धारित डिपो के माध्यम से होता था, जिसके कारण बुनकरों को किसी प्रकार की कठिनाई नही होती थी, किन्तु सरकार ने इस समय एकाधिकारवादी मनोवृत्ति से प्रेरित होकर नीलामी-प्रणाली के माध्यम से कर्नाटक मे रेशम खरीदना शुरू कर दिया।

कर्नाटक में रेशम का सर्वाधिक उत्पादन होने के कारण सरकार ने उक्त तरीका अपनाया, जिसके कारण कुछ पूँजीपतियों ने रेशम खरीदकर इकट्ठा कर रखा है। परिणामस्वरूप इसके मूल्य मे वृद्धि हुई है।'[1]

समाचार पढ़कर हाजी अमीरुल्ला प्रसन्न हुए। पक्ष और विपक्ष दोनों ओर से सवाल उठ रहे हैं, जल्दी ही इसका फायदा होगा—उन्होंने सोचा, आश्वस्त हुए, फिर गद्दी से उठकर ऊपर गये और तैयार होकर सेठ गजाधर प्रसाद के यहाँ जाने के लिए सीढ़ियाँ उतरने लगे।

---

1. 'आज' 3-12-81 से साभार।

2

लतीफ साड़ी की पेटी दबाये गोलघर की ओर भागा जा रहा है। इस बार बहुत दिनों के बाद उसका रेजा पुजा है। बीच में पेचिश पड़ने लगने से सारा काम ही ठप पड़ गया था। जैसे ही करघे पर बैठता, पेट में बुरी तरह ऐंठन शुरू हो जाती और उठकर पाखाने की ओर भागा जाता। दिन में दस-दस, बारह-बारह टट्टियां। चिरला अस्पतालवाले वैद्यजी की दवा खायी तब जाकर ठीक हुआ। लेकिन कमजोरी अब भी है। शरीर बुरी तरह टूट गया है।

इस बीच कर्ज भी काफी हो गया है। उल्ला तानीवाले को तानी का पूरा पैसा चुकाना है, वरना अब वे तानी नहीं देंगे। तानी भी बेहद महँगी हो गयी है। सुनते हैं यह महँगायी कर्नाटक नामक किसी जगह से चली है और यहां बनारस आते-आते बहुत खतरनाक हो गयी है। जब से रेशम महँगा हुआ है, लतीफ जैसे लोगों की साड़ियाँ ये गिरस्ता लोग रास्ते में ही अब नहीं झपटते और मजबूरन इन्हें गोलघर के सेठों की शरण में जाना पड़ता है।

लतीफ जब गोलघर पहुँचा तो वहाँ चहल-पहल कुछ कम थी। गद्दियों पर पहले जैसी भीड़-भाड़ नहीं थी और धोती-कुर्ता पहने, गोल टोपी लगाये, मुंह में पान भरे, अँगुलियों में सोने की नगदार अँगूठियां पहने से लोग मायूस-से बैठे थे। बाजार मन्दा है। इतनी मँहगी साड़ियां कौन खरीदेगा?

लेकिन दलालों के लिए क्या मन्दा क्या तेजी? अगर एक भी मुर्गा फँस गया तो दाल-रोटी-भर का कमा ही लेंगे। गोलघर की रौशन गलियों में कई-कई दलाल खड़े थे और उनमें से कुछ लोग बाहर खड़े-खड़े ही गद्दी पर बैठे सेठों से 'खरे' और 'व्यवहार' में बातें कर रहे थे।

लतीफ सेठ गजाधर प्रसाद की गद्दी पर जाकर बाहर ही खड़ा हो गया। उस वक्त गद्दी पर सेठ गजाधर प्रसाद स्वयं बैठे हुए थे और पेटी से कुछ कागज-पत्तर निकालकर उन्हें ध्यानपूर्वक पढ़ रहे थे। बगल में उनके सुपुत्र श्री कामता प्रसाद बैठे हुए थे और अत्यन्त सावधानी के साथ साड़ियाँ लपेट रहे थे।

लतीफ को किसी ने लिफ्ट नहीं दी, पर वह गद्दी पर एक किनारे सिकुड़कर बैठ गया और सेठ गजाधर प्रसाद के सामने अपनी पेटी धीरे-से सरका दी।

सेठ गजाधर प्रसाद ने लतीफ की पेटी को छुआ भी नहीं, वे अपने कागज-पत्तरों को पढ़ने में ही लीन रहे।

थोड़ी देर के बाद सेठ कामता प्रसादजी ने उसकी पेटी खोली और उसमें से साड़ी निकालकर उसे खोल-खालकर ध्यानपूर्वक देखने लगे। फिर उन्होंने बिल्कुल नेताओंवाले अन्दाज में 'अच्छी साड़ी क्या होती है' विषय पर एक असंक्षिप्त भाषण-

मा दिया और एहसान करने के मूड में उस साड़ी को रख लिया।

हालांकि लतीफ जानता था कि इसके पैसे तो एक हफ्ते बाद ही मिलेंगे, पर थोड़ी देर तक वह इस आशा में बैठा रहा कि शायद सेठजी की कृपा हो जाय और नकदी ही दे दें।

लेकिन कामता प्रसाद ने पेटी से एक चेकबुक निकाली और लतीफ के सामने एक चेक बढ़ा दिया।

लतीफ की समझ में नहीं आया कि इस कागज का आखिर वह क्या करेगा, अतः वह सेठ कामता प्रसाद की ओर खाली-खाली आँखों से देखने लगा।

तब कामता प्रसादजी ने उसे समझाया कि यह चेक है। किसी बैंक में दस-पांच रुपया देकर एक खाता खोल लो। फिर उस खाते में इस चेक को जमा करने से तुम्हें इस साड़ी के पैसे मिल जायेंगे। इसमें सब लिखा है। लेकिन इस चेक को अभी न जमा करना, क्योंकि यह ऐसा चेक है जिनका पैसा तुम्हें एक महीने बाद ही मिल सकता है। इसलिए इसे एक महीने बाद ही बैंक में जमा करना।

लतीफ का शरीर जैसे सुन्न हो गया। थोड़ी देर के लिए उसने चाहा कि अपनी साड़ी वापस मांग ले, लेकिन अब तो चेक कट चुका था। अब तो वह एक महीने की कैद में फँस चुका था। अब कोई रास्ता नहीं था।

वह थोड़ी देर तक उस चेक को इस प्रकार देखता रहा, जैसे प्यार के साथ दिये गये उस्तरे को कोई जंगली बन्दर देखता है। फिर उठा और बाहर निकलकर सड़क पर आ गया।

एक महीने तक वह क्या करेगा?

यह प्रश्न उसके भीतर फूटे हुए कनस्तर की तरह बजने लगा और वह किसी लँगड़े गधे की तरह सड़क पर थम-थमकर चलने लगा।

शाम हो रही थी और वातावरण में एक अजीब-सी गन्ध भरती जा रही थी। मन्दिरों के कँगूरे सूर्य की आखिरी किरनों में इस प्रकार चमक रहे थे जैसे उन पर अबीर पोत दिया गया हो।

लतीफ ने अपनी जेब टटोली। उसमें ढाई रुपये पड़े हुए थे। वह घर न जाकर सरैयां की ओर चल पड़ा।

आज वह ताड़ी पियेगा, चाहे कुछ हो जाय।

3

रऊफ चचा ने थानी पर बिनना छोड़ दिया है।

हाजी अमीरुल्ला की सूरत से ही उन्हें नफरत हो गयी है। अब वे नजीर गिरस्त के यहाँ से रेशम उधार लाते हैं और उन्हीं के लिए बिक्री पर बिनते हैं। अल्ताफ ने भी हाजी रसीद का काम छोड़ दिया है। वह भी अब नजीर गिरस्त के यहाँ ही बिन रहा है। एक रोज बता रहा था कि सुबरात के बिहान भये हाजी रसीद से उसका खूब झगड़ा हुआ और उसने साफ कह दिया कि तोरा एक्को पइसा हमरे लंग नहिने, जाव जो करत बनै कर लेव। लेकिन ये नजीर गिरस्त भी कम नहीं है। जैसे अमीरुल्ला वैसे ही रसीद और वैसे ही नजीर। एक ही थैली के चट्टे-बट्टे···

कल रऊफ चचा साड़ी लेकर हाजी नजीर के यहाँ गये थे तो उन्होंने पैसे की जगह एक महीने बाद भुननेवाला चेक थमा दिया था। कोठीवाले तो चेक देकर फुर्सत पा जाते हैं और यहाँ हालत ये है कि बनिये की उधारी चढ़ती ही जा रही है। जब तक चेक भुनता है तब तक कर्ज का पहाड़ इतना ऊँचा हो गया होता है कि उससे निजात पाना असम्भव दिखायी पड़ता है। इधर नजबुनिया के ब्याह के बाद से बीबी भी बीमार रहने लगी है। दरअसल काम का भार बढ़ गया है और आराम नाम की चीज जिन्दगी में रह ही नहीं गयी है। इस उम्र में बेचारी को घर के सारे काम करने पड़ रहे हैं। कतान फेरना, नरी-ढोटा भरना, हांड़ी-चूली करना—सभी कुछ। नजबुनिया थी तो बड़ा सहारा था, लेकिन लड़की जात भला कब तक घर में रखी जा सकती है? हालांकि ऐसे अनेक लोग हैं जो ब्याह के बाद भी लड़कियों को नइहर में बुला-बुलाकर रखते हैं, ताकि उनसे नरी-ढोटा भरवा सकें, कतान फेरवा सकें और हांड़ी-चूली करवा सकें। कुछ लोग तो लड़कियों के तलाक भी ले लेते हैं। लेकिन रऊफ चचा उन जुलाहों में से नहीं हैं जो जिन्दगी को करघा बना डालना चाहते हैं। हालांकि उनकी न कोई महत्वाकांक्षा है और न ही वे खुद को कोई विशिष्ट व्यक्ति समझते हैं, लेकिन अपनी जिन्दगी को वे पूरी सफाई के साथ जीना चाहते हैं।

रऊफ चचा गोल गड्डा की ओर से लौट रहे हैं। रास्ते में लतीफ मिला था—नशे में धुत्त। उन्होंने कुछ कहना उचित नहीं समझा। क्या फायदा? यह टके-भर का मजदूर अपना ग़म गलत करने के लिए ताड़ी नहीं पियेगा तो क्या करेगा?

वे सोचते हैं और चलते रहते हैं। सिर झुकाए एक-एक क़दम इस तरह रखते हुए जैसे हर क़दम की अपनी अहमियत है, कोई भी क़दम फालतू नहीं है।

वे मतीन के घर के पास पहुँचकर खड़े हो जाते हैं।

"एकबाल ! ऐ एकबाल !"

रऊफ चचा मतीन के लड़के को पुकारते हैं तो झरोखे में से अलीमुन का चेहरा झाँकता हुआ दिखायी पड़ता है। फिर सीढ़ियों पर किसी के उतरने की आवाज आती है और थोड़ी ही देर बाद इकबाल के साथ वे ऊपर पहुँच जाते हैं।

जब से मतीन मऊ गया, कोई खोज-खबर नहीं आयी। अल्ताफ गया भी मऊ तो बाला-बाला लौट आया। वहाँ से एक आदमी कुछ पैसे लेकर आया तो स्कूल में इकबाल को देकर चला गया, हालचाल का पता नहीं चला। न जाने कैसे हैं वहाँ ? कहाँ रहते होंगे ? कैसे पकाते-खाते होंगे ? पता नहीं, मन लगता होगा कि नहीं···?

रऊफ चचा के सामने अपना दिल खोलते-खोलते अलीमुन फूट पड़ती है। इकबाल भी सिसकने लगता है। रऊफ चचा हिल उठते हैं—जैसे पानी के कटाव से नदी किनारे का वृक्ष हिलने लगता है।

वे बहुत देर तक गुमसुम बैठे रहते हैं, फिर उन्हें ढाँढस बँधाकर खड़े हो जाते हैं। इससे ज्यादा और क्या कर सकते हैं वे ? क्या किसी प्रकार की नसीहत का लाभ हो सकता है इन्हें ?

रऊफ चचा सड़क पर आकर थोड़ी देर तक कुछ सोचते रहते हैं, फिर अपनी लम्बी सफेद दाढ़ी को दाहिने हाथ से सहलाते हुए तेज-तेज आगे बढ़ जाते हैं। बुढ़िया इन्तजार कर रही होगी।

4

अल्ताफ अभी सो रहा था और उसकी बीवी सोच ही रही थी कि चाय बनाकर बउवा के अब्बा को जगा दे, कि हाजी नजीर दरवाजे पर हाजिर हो गये।

"करे हबुनी, अल्तफवा का करेते ? ओके भेज देबे त !"

उन्होंने बाहर से ही अल्ताफ की बीवी को यह आदेश दिया और विदेशी लाइटर से खाकी सिगरेट (बीड़ी) सुलगाकर खड़े-खड़े धुआँ छोड़ने लगे।

हब्बुन अपने शौहर को झकझोर-झकझोरकर जगाने लगी, "ए हो बउवा के अब्बा, उट्ठो, देखो हाजी चचा बुलाय रहेंने। उट्ठो !" और उठते ही अल्ताफ बिफर उठा, "तैं का हरदम चिल्लावा करेती रे, बुरचोदी के सोये के भी नांही मिलेते इ घर में। का कहेती बोल ?"

"हम का कहीला, जाव देखो, नीचे गिरस खड़े हैं, उनही से पूछो।"

गिरस का नाम सुनते ही अल्ताफ के बदन में जैसे आग लग गयी। गिरस न हो गये संदहियों के अल्ला मियां हो गये! जब देखो हाजिर! अरे कर्ज खाया है तो क्या भरेंगे नहीं? भरना तो हमीं को है। क्या कोई दूसरा भोसड़ीवाला आकर भर देगा! मगर नहीं, इन्हें भला सबुर होने लगा? इनकी कोठी में जाकर रात-दिन करघे में जुते रहो तो इन्हें चैन मिले।

वह आंख मलता हुआ मन-ही-मन हाजी नजीर को डेढ़ हजार गालियां बकता हुआ और बीड़ी सुलगाता हुआ नीचे उतरा तो हाजी नजीर उसी तरह खड़े थे, जैसे कभी हाजी रसीद इस दरवाजे पर खड़े होते थे। वही मगरमच्छों-जैसी अदा और वही भेड़ियों-जैसा भाव···

"का है गिरस?"

"अभी पूछे तो कि का हैं गिरस। सड़िया बिनि हो के नांहीं? आज तूं सफा बता दो हम्में।" गिरस गरजे।

अल्ताफ ने यह गर्जना सुनी और उसकी ऊंघ खत्म हो गयी। बोला, "हमरा जब मन होइए तब बिनेंगे। कर्जा खाये हैं मगर गुलामी नांहीं लिखाये हैं। समझैव हाई साव!"

और इतना कहकर अल्ताफ वापस मुड़ गया। हाजी नजीर टुकुर-टुकुर उसकी फड़फड़ाती हुई लुंगी को देखते रहे।

5

इस बीच शहर बनारस, मुल्क हिन्दुस्तान और पूरे बैनुल अकवाम (अन्तर्राष्ट्रीय परिवेश) में अनेक रद्दोबदल हुए। अनेक जदीदियतें (आधुनिकताएँ) पैदा हुईं, पर एक लोअर-मिडिल क्लास जुलाहे का दिल नहीं बदला।

हनिफवा ने सरे आम एलान कर दिया कि न तो वह अपने माँ-बाप से कोई ताल्लुक रखेगा और न हाजी अमीरुल्ला के बगीचे से अपना सम्बन्ध विच्छेद करेगा।

यह जनमटिर्रा आदमी जरा-सी बात को लेकर कई बरस हुए, अपने बाप से नाराज हो गया है और अलग रहने लगा है। दरअसल रऊफ चचा उन दिनों हाल ही में इस काबिल हुए थे कि अपने गिरस की मजदूरी छोड़कर बानी पर बिन सकें, और वे चाहते थे कि उनका एकमात्र लायक लड़का मोहम्मद हनीफ अंसारी उनके

काम में मदद करे। रऊफ चचा सोच रहे थे कि लड़का दिनकारी करेगा और वे गिरस के यहाँ से रेशम लाने तथा साड़ी पहुँचाने का काम कर दिया करेंगे। इसके अलावा उनकी इच्छा थी कि खाली वक्त में वे हाजी वलीउल्ला के कारचोबीदाने कारखाने में जाकर अंग्रेजों के लिए बेंच बनाया करेंगे।

लेकिन मोहम्मद हनीफ अंसारी को यह बात मंजूर नहीं हुई। उसने सोचा, यह जो अब्दुल रऊफ अंसारी नामक बूढ़ा है, यह बहुत चालाक है। यह खुद तो मौज उड़ाना चाहता है और अपने बेटे के पाँव करघे में डाल देना चाहता है। यह नहीं हो सकता। और उसने साफ-साफ कह दिया कि वह अपना कारोबार अलग से शुरू करना चाहता है और एक हफ्ते के अन्दर-अन्दर उसने सारा जुगाड़ फिट कर लिया।

उस वक्त माँ ने कुछ कटु वचन जरूर बोले होंगे और नयी-नयी आयी बहू ने उन वचनों को जरूर सुना होगा। अतः अलगउझी कुछ इस किस्म की हुई कि लोगों को दुश्मनों के इस कथन पर विश्वास करना पड़ा कि जुलाहा अपने बाप का भी सगा नहीं होता।

खैर'''उस वक्त हाजी अमीरुल्ला ने हनिफवा की बड़ी मदद की। रुपया दिया, करघा गड़वाया और उनके पुण्य-प्रताप से धीरे-धीरे यह एक छोटा-मोटा गिरस बन बैठा। लेकिन यह सहायता एक तरफ नहीं हुई। हनिफवा का दिमाग बचपन से ही बहुत चलता था सो उसका इसने उन दिनों फायदा उठाया और गोलघर के एक दलाल को फाँसकर बाहर के कई-कई थोक व्यापारियों को हाजी अमीरुल्ला की गद्दी में लाकर जोड़ दिया। नतीजा यह हुआ कि हाजी साहब धीरे-धीरे 'बड़े गिरस' में बदलते चले गये और हनिफवा उनके बगीचे का एक प्रमुख 'नवरत्न' बन बैठा।

बगीचे में आज 'सैल' है। हाजी अमीरुल्ला के सभी मुसाहिब जुटे हुए हैं और हा-हा हू-हू का बाजार गर्म है। बाड़े से पड़वे का गोश्त आया है जो एक बड़े-से पतीले में ईंटों के चूल्हे पर पक रहा है। दूपियाजा बन रहा है। इसके बाद बनेगा पुलाव। फिर इलायचीवाली स्पेशल रोटी और उसके बाद चावल की खीर। खाना पकाने के कार्यक्रम में चंद स्पेशलिस्ट जुटे हुए हैं और बाकी लोग मनोरंजन कर रहे हैं। कुछ लोग शहतूत के नीचे चटाई बिछाकर ताश खेल रहे हैं। गन, जिसमें अपने ही पार्टनर को पिसवाने में रस लिया जाता है। शरफुद्दीन और हनीफ शतरंज खेल रहे हैं। हनीफ आज काले मोहरों से खेल रहा है। शरफुद्दीन का एक घोड़ा मर चुका है और दूसरा फँसा हुआ है। हाजी अमीरुल्ला निवरी चारपाई पर बैठे-बैठे यह दृश्य देख रहे हैं। उन्हें शतरंज का बड़ा शौक रहा है किसी जमाने में, लेकिन

सब देखकर ही अपना शौक मिटा लिया करते हैं। शरफुद्दीन अपना घोड़ा बचाने के लिए परेशान है, लेकिन कोई युक्ति नहीं सूझ रही है। हाजी साहब मुस्कराते हैं और इशारों-ही-इशारों में उसे एक ऐसी चाल बताते हैं कि हनीफ का फर्जी ज़द में आ जाता है।

"अब बोलो?" वे चहक उठते हैं।

शरफुद्दीन का चेहरा खिल उठता है। उसे अपने बाप पर गर्व होता है। शतरंज हो चाहे जिन्दगी, चाल का हमेशा वही तरीका सही होता है जो सामने-वाले को लाजवाब कर दे।

"का म्यां गोसवा पक गोवा के नाहीं?"

हाजी मिनिस्टर मल्लाहिन की कोठरी से निकलकर झटके से इधर आये और आते ही उन्होंने एक सवाल दाग दिया। इस पर कुछ लोगों की इच्छा हुई कि उनका थोड़ा मज़ाक बनाया जाय, पर हाजी अमीरुल्ला के लिहाज से वे खामोश रहे। हाजी मिनिस्टर ने जब देखा कि उनके सवाल का कोई जवाब नहीं मिला तब वे खुद आगे बढ़कर चूल्हे के पास बैठ गये और ढपना उतारकर पतीले में से एक बोटी गोश्त निकालकर उँगलियों से उसे टोने लगे। जब उन्हें लग गया कि बोटी कुछ गल चुकी है तो पहले उन्होंने फूंक-फूंककर उसे ठण्डा किया, फिर मुंह में डाल-कर खड़े हो गये।

हाजी मिनिस्टर शहतूत के पास खड़े-खड़े देर तक पड़वे की बोटी चबाते रहे और कुएँ के चबूतरे पर नहाती हुई मल्लाहिन को देखते रहे।

हाजी अमीरुल्ला उठे और चप्पल पहनकर पाखाने की ओर चल पड़े।

6

हनिफवा ने लाख कोशिश की, पर उसके बेटे बिराहिम के साथ अपनी बिटिया अख्तरुन्निसा का ब्याह करने के लिए लतीफ तैयार नहीं हुआ और उसका ब्याह एक अन्य लड़के से कर दिया। इसका नतीजा यह हुआ कि बिराहिम ने काम-धन्धा सब छोड़ दिया और बाप से बगैर छिपाये ताड़ के बगीचों की ओर जाने लगा। अम्माँ से पैसे झटककर दिन में दो शो सिनेमा देखता—एक शो 'जमुना' में और

दूसरा 'चित्रा' में— और शाम को ताड़ी पीता। सिगरेट-पान अलग से। बाकी वक़्त में वह चौराहे पर या तो खड़ा रहता या किसी चबूतरे पर बैठकर जिस किसी को भद्दी-भद्दी गालियाँ दिया करता। कभी-कभी वह लतिफवा के घर की ओर भी चला जाया करता, क्योंकि अख़्तरुनिया शादी के बाद भी प्रायः नइहर में ही रहती थी और बिराहिम का ऐसा विचार था कि अख़्तरुनिया उसे देखने के लिए किसी-न-किसी दिन अपनी खिड़की से ज़रूर झाँकेगी।

लेकिन अख़्तरुनिया के इतने काम थे कि बिराहिम के बारे में वह सोचती भी नहीं थी। दिन-दिन-भर उसे कतान फेरना पड़ता था या नरी-ढोटा के काम में लगे रहना होता था। उसकी नयी अम्माँ रेहाना का हाल ये था कि दिन-ब-दिन वह कमज़ोर होती जा रही थी और हबुआना भी उसका अब बहुत ज़्यादा बढ़ गया था। लतिफवा उसे अब बुरी तरह पीटने भी लगा था।

एक दिन बाप की चोरी से अख़्तरुनिया अपनी अम्माँ के घर चली गयी थी। वहाँ उसे देखते ही उसकी नानी और कमरुन इस क़दर रोने लगी थीं कि अख़्तरुनिया का दिल थर्रा उठा था; अब वह नन्ही-सी बच्ची नहीं थी, बल्कि एक विवाहिता किशोरी थी। अब वह औरत के दर्द को भली-भाँति समझने लगी थी और अपनी माँ की हालत उससे देखी नहीं जाती थी। लेकिन वह अवश थी। हर तरह से कमज़ोर और बे-चारा।

अगले दिन लतिफवा को इस बात का पता चल गया था कि अख़्तरुनिया अपनी माँ से मिलने गयी थी और उसने फौरन उसे हुक्म दिया था कि वह अपनी ससुराल चली जाय। यहाँ रहने का कोई काम नहीं है।

अख़्तरुनिया नकाब ओढ़े, एक हाथ में प्लास्टिक की डोलची लिये और दूसरे हाथ से नकाब का पर्दा थामे चली जा रही थी और सोचे जा रही थी। अपनी माँ के बारे में, अपने बारे में, बाप के बारे में, अपनी नयी माँ के बारे में और अपने छोटे भाई-बहिन के बारे में, अपने नइहर और अपनी ससुराल के बारे में—कहीं भी, किसी को भी सुकून नहीं था। सब एक जैसी ज़िन्दगी जी रहे थे—घुटन और बदबू से भरी हुई।

"कहाँ जाती रे?"

अख़्तरुनिया अचानक चौंकी। पीछे से टेढ़-मेढ़ चलती हुई उसकी सहेली, कल्लू की बिटिया बशिरनी उसकी बगल में आ गयी थी और साथ-साथ चलने लगी थी।

"जाइला अपनी ससरार।" अख़्तरुनिया बड़े गर्व के साथ बताती है और नकाब उलट लेती है।

"तोरी ससुरिया कहाँ है ?"
"रसूलपुरा, फद्दन कोयें।"
"तोरे अदमी क का नाँव है ?"
"भकक, हम नाँहीं बतइबा।"
और अन्नकनिया खिलखिलाकर हँस पड़ती है।
मन का सारा गुबार क्षण-भर में धुल जाता है।

7

पीली कोठी बस स्टेशन में बड़ा कीचड़ हो गया है। चाय, मिठाई, पान और अन्य प्रकार की दूकानों से बहकर आनेवाला पानी सड़क पर जमा हो जाता है और बसों के पहियों में लगी हुई धूल-मिट्टी से मिलकर वह कीचड़ का रूप धारण कर लेता है। मिर्जापुर और गाजीपुर की बसें जब इस कीचड़ में से गुजरती हैं तो धरती पर इस प्रकार के निशान बन जाते हैं मानो महाभारत के युद्ध में खून के दलदल में से अर्जुन और कर्ण के रथ गुजरे हों। कीचड़ पर पड़ी हुई पान की पीकें और कफ़ की खखारें इसके सौन्दर्य में चार चांद लगा देती हैं।

मिर्जापुरवाली बस इस मुद्रा में कि अब वह एक मिनट भी यहाँ नहीं रुकेगी, स्टार्ट होकर भर्र-भर्र कर रही है और गन्दा धुआँ फेंक रही है। लेकिन सारे यात्री जानते हैं कि यह अभी कम-से-कम आध घण्टे तक रुकेगी। यह भर्र-भर्र तो यात्रियों को बेचैन करने के लिए है, ताकि वे जल्दी-से-जल्दी इसी बस में आकर बैठ जायें, वरना पीछे लगी हुई मेल बस के चक्कर में कई यात्री छूट सकते हैं।

बसवाले ने यात्रियों को बनफ देने के उद्देश्य से सामने कांच पर 'तुफान' लिख रखा है—हालांकि लोग जानते हैं कि यह 'पैसेंजर' बनकर ही जायेगी। 'तूफान' तो क्या यह 'हवा' की तरह भी नहीं चल सकती। लेकिन इस 'तुफान' शब्द में इतना आकर्षण है कि लोग उस खटारा बस में चढ़ने के लिए अपने कीमती जूतों को कीचड़ में सानते हुए दौड़े आ रहे हैं।

एक नाटा-सा आदमी—जिसके बदन पर खाकी ड्रेस है, गन्दा और कालिख लगा हुआ—पटरी पर खड़ा चिल्ला रहा है—

"चलो भाई तुफान से नरायनपुर, चुनार, मिर्जापुर, तुफान से चलो तुफान से..."

इस आदमी को इस चिल्लाने की एवज में पचीस पैसे मिलेंगे। प्रति बस पचीस पैसे के हिसाब से यह चिल्लाता है। यही इसकी रोजी है। लेकिन यह बहुत बडी गलतफहमी है कि लोग इस आदमी की वजह से इन बसों में यात्रा करते हैं। दरअस्ल यात्रा करना इन लोगो की मजबूरी है। ये जितने भी लोग इस वक्त पीली कोठी के इस दलदल मे खड़े नजर आ रहे हैं, ये ऐसे लोग हैं जो बिना यात्रा किये मान नही सकते।

इसमे से ज्यादातर लोग बनारस के जुलाहे हैं और ये चुनार जा रहे हैं। चुनार में आज हज़रत कासिम सुलेमानी की दरगाह का उर्स है। झुण्ड-की-झुण्ड स्त्रियाँ-मर्द और बच्चे पीली कोठी की ओर भागे आ रहे हैं और मिर्जापुरवाली बस मे ठुँसे जा रहे हैं। सबके दिल मे बस एक ही अरमान है—दरगाह की जियारत। लेकिन युवकों के दिलों में इसके अलावा भी कुछ है। वे जियारत कम करेंगे, मेला ज्यादा घूमेंगे। 'अउर टैम निकाल के किलाविला भी घूमा जइए बे!'

हनिफवा की बीवी महरुन अपने बारह वर्षीय बेटे के साथ जब बस मे घुसकर बैठी तो उसने देखा कि कण्डक्टर एक आदमी को डाँट रहा है। दरअस्ल उस आदमी के साथ भी एक लड़का था और लड़के का टिकट आदमी ने नही लिया था। कण्डक्टर को जब यह बात मालूम हुई तो वह विगड उठा। महरुन यह दृश्य देखकर सतर्क हो गयी। उसने घर से ही तय कर लिया है कि जबिदवा का टिकट नही लेना है। पैसा बचाने के उद्देश्य से ही वह बिराहिम और बिबिया को साथ मे नहीं लायी। उनका टिकट तो लगना ही था। लेकिन अगर छटकी जितने लड़को का टिकट भी लगने लगे तब तो फिर इस मुल्क मे जीना ही मुश्किल हो जायेगा। अरे यही पैसा बचेगा तो चुनार से कोई वर्तन-वर्तन खरीद लेगी वह। वहाँ चुनारी मिट्टी के बर्तन—खासकर अचार रखने के बोरियाम—बहुत सस्ते मिलते हैं।

और महरुन ने फौरन अपने जबिदवा को पैरो के पास अपने नकाब के भीतर छिपा लिया। अपनी बिरादरी की एक औरत की यह चालाकी देखकर चुनार-यात्रा पर निकले लगभग सभी मर्द खुश हुए। लेकिन इ जबिदवा हरामी का वार-बार अपनी मुण्डी निकालने की कोशिश में लगा रहा। वो तो गनीमत रही कि कण्डक्टर जिस वक्त पास से गुजरा, महरुन ने उसे दोनों पाँवों के बीच इस तरह दबा लिया कि हिलने-डुलने मे वह असमर्थ हो गया, वरना बिरादरी की सारी इज्जत मिट्टी में मिल जाती।

बस चली तो भीतर एक अजीब तरह का चें-चें, पें-पें शुरू हो गया।

8

चुनार का मेला बीत गया है और शादी-ब्याह शुरू हो गये हैं। शरफुद्दीन की शादी भी हो रही है। शरफुद्दिनवा ने हालांकि प्रेम-विवाह करना चाहा था और इसके लिए उसने बी. एच. यू. की एक लड़की देख भी रखी थी, पर हाजी अमीरुल्ला ने उसके प्रस्ताव को ठुकरा दिया। 'हाजी वलिउल्ला क्या सोचेंगे म्यां?' उन्होंने लोगों से कहा और जल्दी ही दिन-तारीख़ मुकर्रर करके शादी का कार्यक्रम तय कर दिया।

चूंकि शरफुद्दिनवा किसी मजनूं-फरहाद किस्म का प्रेमी नहीं था और वह बी. एच. यू. वाली लड़की भी किसी लैला-शीरीं किस्म की प्रेमिका नहीं थी, इसलिए इस मामले को लेकर कोई क्रान्तिकारी घटना नहीं घटी और जनाब शरफुद्दीन अंसारी साहब ने अपना सारा ध्यान अब इन सवालों पर केन्द्रित कर दिया कि शादी के लिए किस रंग का सूट बनवाया जाय? (शेरवानी-वेरवानी के पहिनिए म्यां!) अपने किस-किस फ्रेण्ड को इनवाइट किया जाय? कार्ड किस कलात्मक ढंग से छपवाया जाय? फोटो के लिए पाकिस्तानवाला रंगीन कैमरा किस फ्रेण्ड से मांगा जाय? और सुहागरात के रोज़ किस फिल्मी हीरो के अन्दाज़ में वलिउल्ला की बिटिया शहिनवा का घूंघट उठाया जाय? इत्यादि।

सुबह का वक़्त है। मुहल्ले में दावत जा रही है। इस काम के लिए चार-पांच आदमियों की एक टोली हाजी साहब के घर से निकलती है और चल पड़ती है। हनिफवा सबसे आगे-आगे चल रहा है। दावतवाला चिट्ठा, जिसमें लोगों के नाम दर्ज हैं, उसी के हाथ में है। इसी चिट्ठे के अनुसार दावत देनी है।

टोली एक मकान के सामने रुकती है और सम्मिलित स्वर में लोग पुकारते हैं, "का मियां हो?"

भीतर करघे पर बैठा हुआ आदमी झांकता है तो उससे पूछा जाता है, "हाफिज्जी हैं?"

और तब तक हाफिज्जी बाहर निकल आते हैं, सलांवाले कुम! चलउवा है म्यां!"

"कहां का?"

"हाजी अमीरुल्ला मियें का! आज साम के चार बजे बरात पहुंचावे के है। बहर दोनों विदा करावे के है। अउर घर आके एक आदमी की दावत है। तइसा

ध्याने रखियो। बिना बत्ती की बरात है। सरई![1] अमिर पड़ के फौरन निकल जइए। अच्छा चलें···"

"अरे मियाँ काहे जाए लगेव ? पनवा मँगवावा है, खाके जाओ। लड़कौवा गोवा है। बस अवतै होइए। तइसा बइठ जाओ।"

तब तक पान आ ही गया। लोगों ने पान खाये और चल पड़े। चलते-चलते हाफिज्जी को फिर याद दिलाया, "अच्छा चलें। देखो खयाले रखियो। भून मत जइयो। सलावाले कुम !"

इसी तरह घर-घर 'बलउवा' कहती हुई यह टोली हाजी अमीरुल्ला के समधी और कमरुद्दीन के ससुर हाजी उस्मान गिरस्त के घर पहुँचती है। यहाँ टोली के सबसे बुजुर्ग सज्जन आगे हो जाते हैं और पुचकारते हैं, "का मियाँ हाजी साहब हौ ?"

भीतर हाजी उस्मान साहब जमीन पर बिछे गद्दे पर बैठे हैं और सामने खड़े किसी कारीगर को कुछ समझा रहे हैं। इन्हें देखकर वे खिल उठते हैं।

"हाँ आओ।"

"सलावाले कुम !"

"वाले-ए-कुम अस्सलाम ! आओ मियाँ बइठो !"

बलउवा देनेवाले समधी के लिहाज में नीचे ही एक किनारे सकुचाते हुए-से बैठ गये।

"अमाँ काहे हुवाँ बइठ गयेव। आओ-आओ इधर गदवा पर बइठो ने।"

"अरे ठीक है, का बेजाँ है एज्जन !"

लोग शिष्टाचारवश ऐसा कहते हैं। लेकिन हाजी साहब के बार-बार कहने पर वे गद्दे पर बैठ जाते हैं। थोड़ी देर बाद ही तामचीन की फूलदार तश्तरियों में मिठाई, नमकीन, पान इत्यादि पदार्थ आ जाते हैं और गद्दे पर सजा दिये जाते हैं।

"लो मियाँ खाओ। शुरू करो। लो।"

हाजी उस्मान टोली के सामने तश्तरियाँ पेश कर रहे हैं और टोली है कि समधी के लिहाज में सिकुड़ी चली जा रही है। खैर···किसी-न-किसी तरह लोग मिठाई, नमकीन वगैरह खाते हैं, फिर टोली के सबसे बुजुर्ग सज्जन अलीमुद्दीन साहब बलाउवा सुनाते हैं—

"अच्छा अब बलाउवा सुन लो। तोरे समधी हाजी अमीरुल्ला किये का

---

1. शरई, यानी शास्त्रानुसार। इस्लामी शरीयत के अन्तर्गत विवाहादि में बाजा वगैरह बजाने पर पाबन्दी है। यहाँ उसी की ओर संकेत है।

बलउवा हैं। आज साम को चार बजे उनके लड़के की बरात निकलिये। सवेरवें से उनके संग तुवें रहना है। सब इन्तजाम बात देखना है। अउर संझा के चार बजे बरात पहुँचावे के है। डोली बिदा करावे के है। अउर सब कोई की दावत है।"

चाहे दिन की शादी हो चाहे रात की, चाहे बड़े गिरस्त के यहाँ की शादी हो चाहे मामूली मजूर के यहाँ, नसीबन बुआ हर जगह पहुँच जाती हैं। हाजी अमीरुल्ला की कोठी में, तिमंजिले पर एक बड़ी-सी कोठरी में नसीबन बुआ ढोलक लेकर बैठी हैं और गा रही हैं—

दादा मनावैं ठण्डे जूड़ हो हरियाला बन्ना
दादी मनावैं अल्ला पीर हो हरियाला बन्ना

"तोरे संग एवकैठे गाना है का बुआ?" कोई लड़की टोकती है तो बुआ फौरन दूसरा गीत शुरू कर देती है—

घोड़े के आगे घुँघरा बाजे
सिर सोहै टैल बेल का सेहरा
मकना के आगे मोरला नाचे रे
कमर में है गुजराती पटुका
झल्लर के आगे मोरला नाचे रे
पाँव सो है मखमल का जूता
छत्तर के आगे मोरला नाचे रे!

तब तक बाहर चिल्लहरो शुरू हो जाता है। लोग एक-दूसरे को पुकारने लगते हैं। असिर का वक्त हो रहा है। बारात की तैयारी अब शुरू कर देनी चाहिए। मुहल्ले के मशहूर इन्तजामकार अलीमुद्दीन गिरस परेशान हैं।

"चलो लड़कन, ए जमिलवा, अगां चलो सब कोई, दड़ी चालनी (दरी-चाँदनी) कहाँ रक्खी है, लीयाओ, बीछाओ।"

फिर दूसरी ओर घूमकर, "क मा दमाद के पगड़ी बान्हें क सनेसा गोवा ने?"

"हाँ हाँ गोवा, बस अब उठते होइएँ।"

हाजी अमीरुल्ला पास से गुजरते हुए इन्तजामकार अलीमुद्दीन गिरस को आश्वस्त करते हैं और आगे बढ़ जाते हैं। वे बहुत व्यस्त हैं। कई बड़े-बड़े लोग आये हैं। स्टेट बैंक के मनीजर, कलक्टर के पेशकार—इन्हीं से कहकर इमरजेंसी में उन्होंने हाजी रहमतुल्ला को डी. आई. आर. में बन्द करवाया था। थाना आदमपुरा के नायब दरोगा, अंसारी स्कूल के पुनुसपल (प्रिंसिपल) साहब आदि बड़े-बड़े लोगों की ख़ातिर करने में वे व्यस्त हैं।

कमरुद्दीन फोटो वगैरह का इन्तजाम देख रहा है और साथ ही अपने तथा शरफुद्दीन के दोस्तों की खातिर में लगा हुआ है। दोस्तों में बहस छिड़ी हुई है कि शरफुद्दीन को किस तरह दूल्हा बनाया जाय? कमरुद्दीन की राय है कि जैसे सऊदी अरब के लोग सिर पर काली पट्टी से सफेद दुपट्टा बाँधते है, उसी तरह शरफुद्दीन के सिर को भी सफेद दुपट्टे और काली पट्टी से सऊदी अरब टाइप का बनाया जाय। उसके बाद फिर सेहरा। एकदम नयी चीज। और थोड़ी देर के वाद-विवाद के बाद यह बात मान ली जाती है, लेकिन शरफुद्दीन की यह बात नही स्वीकार की जाती कि सूट के ऊपर से वह चादर नही ओढ़ेगा। यह तो बिरादरी का रिवाज है, रिवाज के खिलाफ कोई कैसे चल सकता है?

दामाद आ रहे हैं। दामाद का आना मामूली बात नही है। दामाद अकेले नही आते, उनके साथ उनके दोस्त-मित्र भी आते हैं। साथ मे एक किलो मीठा ले आते हैं, जिसके बदले यहाँ से उन्हे एक कटोरा और कुछ नकदी दी जाती है।

"सलाँवाले कुम!"

दामाद सलाम करते हैं और एक बुजुर्ग के हाथ मे मीठा थमा दिया जाता है।

"वालेकुम सलाम! आओ मियाँ बइठो। अबे जमिलवा, देख ओज्जन पान की किस्ती रक्खी होइए उठा लियाओ तो, इनके पान खियाओ।"

एक लड़का पान लाता है। दामाद और उनके साथी पान खाते है। फिर अलीमुद्दीन गिरस खड़े हो जाते हैं। शादी-ब्याह में भला इन्तजामकार से बढकर और किसका महत्त्व हो सकता है? वे भीड को सम्बोधित करते हुए बोलने लगते हैं, "सरदार साहब कहाँ हैं? अउर महतो साहब कहाँ हैं? सबके बलाओ। चलो, दमाद भी आ गयेन हैं। अउर सब तैयारे हैं।"

सरदार महतो आते है और दूल्हे की तैयारी उनकी उपस्थिति मे शुरू हो जाती है। सारे कपड़े दूल्हा स्वयं पहनता है, पर पगड़ी बाँधते है दामाद साहब—शरफुद्दीन के बहनोई। फिर उसके ऊपर से सऊदी अरबियो-जैसा दुपट्टा बाँधा जाता है और शरफुद्दीन का एक दोस्त नसीम अहमद रंगीन कैमरे से फोटो खीचता है। कई-कई फोटो। एक बार शरफुद्दीन के आसपास उसके सारे दोस्त खड़े हो जाते है। फिर अपने बाप के कन्धे पर वह हाथ रखकर फोटो खिंचाता है। फिर हाजी मतीउल्ला, हाजी मिनिस्टर और हबीबुल्ला बुलाये जाते हैं। बारी-बारी से शरफुद्दीन उनके कन्धो पर भी हाथ रखकर फोटो खिंचाता है और फिर बाहर निकलकर सजी हुई घोड़ी पर सवार हो जाता है।

बारात चल देती है। सभी बारातियो ने साफ लुंगियाँ पहन रखी है और प्रायः

सफ़ेद कुर्ते। कुछ विद्यार्थी क़िस्म के लौण्डे पैण्ट-बुशर्ट में भी हैं। सभी लोगों के मुँहों में पान भरा हुआ है और सभी की छातियों पर फूल-मालाएँ झूल रही हैं। आगे-आगे सूट के ऊपर से चादर ओढ़े, घोड़ी पर बैठा शरफुद्दीन चला जा रहा है और पीछे-पीछे बाराती। किसी शान्त जुलूस की तरह। न बाजा न गाजा। एक-दम शरई बारात।

रास्ते में कोई पूछता है, "कहाँ बरात जइए?"

"बरतिया बड़ी बजार जइए!" पान की पीक में डूबा हुआ, गलगलाता हुआ जवाब मिलता है और बारात चलती रहती है। लगभग एक हज़ार लोगों की भीड़। पूरी सड़क भरी हुई है।

दरवाजे पर बारात पहुँचते ही शरफुद्दीन के बहनोई की पुकार शुरू हो जाती है। घोड़ी से दूल्हे को तो वही उतारेंगे। दूल्हा भला अपने से कैसे उतरेगा?

"कहाँ हैं मियाँ, बहनोई साहब कहाँ हैं? चलो दुलहा के उतारो।"

सलीमुज्ज़माँ अपने साले को घोड़ी से उतारते हैं और भीतर ले जाकर गलीचे पर बैठा देते हैं। बाहर पूरी बारात गली में लाइन से खड़ी हो जाती है। 'बेलबट्टा' होता है। लोग पान खाते हैं और नाई, धोबी बारातियों से पैसा उतारते हैं। फिर निकाह होता है और कुछ लोगों को छोड़कर सारे बाराती अपने-अपने घर चले जाते हैं। खाने की दावत कुछ ही लोगों को है, बाक़ी लोग लौटकर हाजी अमीरुल्ला के यहाँ खायेंगे।

यहाँ निकाह के बाद खाने की तैयारी शुरू हो जाती है। हालांकि 'बिना बत्ती' की बारात थी, पर बत्तियाँ जल गयी हैं। रात हो रही है। हाजी अमीरुल्ला को बड़ी जल्दी है। लौटकर वहाँ का इन्तजाम भी देखना है, लेकिन कुछ लोगों को खाना तो खाकर ही चलना है।

सबसे पहले दूल्हे के सामने थाल आता है। एक बड़ी-सी थाली में ज़र्दा रखा हुआ है और उस पर चाँदी के वरक़ चिपके हुए हैं। फिर बरातियों के आगे प्लेटें लगा दी जाती हैं। देग के पास मचिया रखकर सरदार और महतो बैठे हैं। कटोरों में वे बोटियाँ गिन-गिनकर लगा रहे हैं और बाल्टियों में चने की मसालेदार दाल उड़ेली जा रही है। बोटियाँ जब लग जाती हैं तो खाना सप्लाई होने लगता है। चीज़ें एक हाथ से दूसरे हाथ में होती हुई बारातियों तक पहुँचने लगती हैं और फिर एक अजीब किस्म का शोर शुरू हो जाता है।

"अमाँ खाना बढ़ाओ तो। थरिया बढ़ाओ। रोटिया भी बढ़ाओ मियाँ। चावल नियाओ। देगो गज्जन अबहुन तक चावल नाँहीं आवा। ए चावल क बखरा लियाओ तो। अमाँ पानी का जग लियाओ। काड़ेवाला घमचा लियाओ।"

"सब हो गोवा मियाँ ?"

"हाँ हाँ सब हो गोवा। सरदार साहब कहाँ हैं, उनके बुलाओ, कहो के एज्जन सबके हो गोवा, अब बिसमिल्ला करावें।"

लोगों के सामने खाना लग गया है, पर लोग हाथ बाँधे चुपचाप बैठे हैं। बग़ैर सरदार साहब की इजाज़त के कोई खा नही सकता।

अचानक सरदार साहब, पी गयी बीड़ी को एक तरफ फेंकते हुए वहाँ आते हैं, चारों ओर नज़र दौड़ाते हैं। फिर पूछते हैं, "सब हो गोवा ने ?"

"हाँ हाँ सब हो गोवा !"

और जब वे आश्वस्त हो जाते हैं तो आदेश देते हैं, "चलो शुरू करो. बिस्मिल्लाहिर्रहमानिर्रहीम !"

और लोग दाल गोश्त के साथ नान खाने मे व्यस्त हो जाते है।

खाने के बाद बिदाई होती है। चूंकि बिरादरी के कानून के अनुसार पाँच बर्तनों से ज्यादा दहेज दिया नही जा सकता और चूंकि हाजी वलिउल्ला के सम्मान को इससे ठेस पहुँचती है, इसलिए बैंकडोर से सारा दहेज सुबह पहुँचाने की बात तय होती है। टू-इन-वन, सोफासेट, पलँग, साइकिल, घड़ियाँ, बर्तन तथा और भी कई बहुमूल्य वस्तुएँ हैं। सरदार-महतो के सामने इन्हे देना उचित नही। अत: केवल रस्मी दहेज दिया जाता है और कार्यक्रम समाप्त किया जाता है। हाजी अमीरुल्ला को कोफ़्त होती है। अगर सरदार और महतो भी घूस खाने लगते तो बिरादरी का काम कितना आसान हो जाता, वे सोचते हैं और '555' सिगरेट सुलगाकर एक ओर खड़े हो जाते हैं। शरफुद्दीन का दोस्त डोली का फोटो खींचने के लिए एंगिल ठीक करने लगता है। लड़की का बाप हाजी वलिउल्ला पेट पर हाथ बाँधे खड़े रहते हैं।

9

कमरुन पठानी टोला के पीछे नयी-नयी बसी आबादी अंसाराबाद में एक कोठरी किराये पर लेकर रह रही है। साथ मे उसका बड़ा लड़का शरिफवा भी है। एक रोज वह अपने बाप से झगड़ा करके ननिहाल पहुँच गया और कमरुन से बोला कि

अब वह कभी उस घर में नहीं जायेगा।

लतिफवा अब पहले से भी ज्यादा पीने लगा था और रोज रात में ऊधम मचाता था। रेहनवा को इस क़दर सताता था कि वह दिन-रात रोती रहती थी और आये दिन उसे दौरे पड़ा करते थे। शरिफवा इन सारी स्थितियों से ऊब गया था।

भागते वक़्त अपने साथ वह कुछ रुपये भी ले आया था—चुराकर। उसी रुपये में कुछ उधारी के रुपये मिलाकर उसने एक पुराने करघे का इन्तजाम कर लिया था और अपनी माँ को लेकर अलग रहने लगा था।

शरिफवा अपने बाप की तरह नहीं था। वह एक मजहबी लड़का था और पाँचों वक़्त नमाज पढ़ा करता था। कमरुन इस लड़के को देखती तो गर्व से फूल उठती। लेकिन न जाने क्यों लतिफवा की याद उसे अब भी आती थी। जब भी उसकी दृष्टि अंसारावादवाली मस्जिद के कँगूरों पर पड़ती तो उसे वह शाम याद आ जाती जब वह नकाब ओढ़कर इसी मस्जिद में चन्दा देने आयी थी। दूसरे या तीसरे रोज शायद लतीफ भी आया था। 'कुछ भी हो, आदमी वह बुरा नहीं था', कमरुन ने मन-ही-मन सोचा और उदास हो गयी।

शरिफवा करघे पर बैठा फल्ली तैयार कर रहा था और कमरुन बाहर जमीन पर बैठी कतान फेर रही थी। एक ही कोठरी में उनकी सारी गृहस्थी थी। एक ओर गड्ढा खोदकर करघा गाड़ दिया गया था और दूसरी ओर गृहस्थी की अन्य चीजें करीने से सजा दी गयी थीं। एक के ऊपर एक रखे हुए दो पुराने सन्दूक—जिन्हें कमरुन अपनी माँ के यहाँ से ले आयी थी, दो कनस्तर और कुछ डिब्बे, दो-तीन पुराने घड़े, शीशियाँ और अल्मूनियम के चन्द बर्तन—उस कोठरी की यही कुल कायनात थी।

कोठरी के बाहर एक छोटा-सा छप्पर डालकर रसोईघर बना लिया गया था, जहाँ बुनाई (लकड़ी का बुरादा) वाली अँगीठी रखी हुई थी और थोड़ी दूर पर टाट का आड़ कर उठउवा पाखाना बना दिया गया था। शरीफ ने द्वार पर सँहिजन का एक पेड़ लगा दिया था जो अब काफी छतनार हो गया था। आने-जानेवाले इसी पेड़ के नीचे चौरे पर बैठा करते थे और कमरुन तो इस पेड़ को अपने लड़के की तरह ही मानती थी।

दरअस्ल यह अकेली कोठरी थी जो बिल्कुल अलग-थलग बनी हुई थी और इसका मालिक छित्तनपुरा में रहता था। वह एक शरीफ आदमी था और किराये के लिए ही कभी-कभी इधर आता था। शरिफवा और कमरुन को उसने पूरी स्वतन्त्रता दे रखी थी कि वे अपने निवास को किसी भी तरह रहने योग्य बना

सकते हैं।

पश्चिम में सूरज डूब रहा था। उसकी लाल-लाल किरनें [illegible] पर गुलाल-रंगी बच्चियों की तरह थिरक रही थीं। पूरा माहौल [illegible] बना हुआ था। पर कमरुन उदास थी। न जाने क्यों आज उसे [illegible] बहुत तेजी के साथ सता रही थी। कतान के धागे उसके [illegible] रहे थे।

अचानक नजबुनिया की अम्मी उधर आ निकलती हैं और कमरुन के पास आकर बैठ जाती हैं।

"का हो कमरुन कइसी उदास बनी हो? जीउ मजे मा है ने?"

वे पूछती हैं तो कमरुन का गला भर आता है। उसकी आँखों में पहले [illegible] का चेहरा आता है, फिर अल्लारखिया का और फिर [illegible], और फिर तहरुनिया का···वह फफक-फफककर रोने लगती है।

सूरज डूब जाता है।

"अल्ला हो अकबर···अल्ला हो अकबर!"

अंसाराबाद की मस्जिद से अजान की आवाज आती है और उस आवाज में कमरुन की सिसकियाँ भी डूब जाती हैं।

भीतर करघे पर बैठा शरीफ झाँककर यह दृश्य देखता है और खड़ा हो जाता है। एक बार वह सोचता है कि बाहर चलकर माँ को डाँटे, लेकिन फिर वह अपना इरादा बदल देता है और दूर के मकान से ली गयी अस्थायी बिजली का तार ठीक करने लगता है। सावधानी के साथ दोनों तारों को वह दो उँगलियों से पकड़ता है और उन्हें प्लग के छिद्रों में डाल देता है। छत से लटक रहा चालीस वाट का बल्ब फुट्ट से जल उठता है।

10

हबीबुल्ला का पासपोर्ट बन गया है। वे हज के लिए जा रहे हैं।

सुबह-सुबह हाजी अमीरुल्ला की कोठी पर लोगों की भीड़ जुटने लगती है। हर आदमी के हाथ में माला है। हबीबुल्ला का गला तरह-तरह की मालाओं से भर जाता है।

हबीबुल्ला नाटे कद के खिचड़ी बालोंवाले एक ऐसे अधेड़ हैं [illegible]

पड़ते हैं जिनका चेहरा गहरे अनुभवों के कारण सपाट हो गया है। उन्होंने अपने सपाट-साँवले चेहरे पर अब एक विचित्र प्रकार की आध्यात्मिक गरिमा पोत ली है। माला-वाला पहनकर वे मुहल्ले में सबसे अपने कसूर मुआफ करवाने निकल पड़ते हैं। पीछे-पीछे लुंगी-टोपी लगाये, पान खाये, दीन-दुनिया की बातों में लीन—पूरा एक झुण्ड !

हबीबुल्ला एक दरवाजे पर रुकते हैं और पुकारते हैं, "का मियाँ हाजी साहब हो ?"

और भीतर से एक हाजी साहब निकलकर हबीबुल्ला को गले से लगा लेते हैं। यह निकट भविष्य में होनेवाले हाजी का पूर्व स्वागत है।

"हाजी साहब, कहा-सुना माफ किहो !"

हबीबुल्ला का गला भर आता है। सबसे माफी-वाफी माँग लें। अब पता नहीं दयारे-मदीना से लौटना हो या नहीं !

"खुदा माफ करिहैं म्याँ ! हमरियो खातिर सरकारे दोआलम से दोआ करियो !"

हाजी साहब हबीबुल्ला का कन्धा थपथपाते हैं और वे आगे बढ़ चलते हैं।

यह क्रम पूरे मुहल्ले-भर चलता है। छज्जों और खिड़कियों पर स्त्रियों की भीड़ लग जाती है—हज के लिए जानेवाले हबीबुल्ला को देखने के लिए। शायद इसी से उनके गुनाह बख्श दिये जायें।

अचानक एक दरवाजे पर हबीबुल्ला इस तरह ठिठककर खड़े हो जाते हैं जैसे कुछ तय कर रहे हों। साथ के लोग समझ जाते हैं। यह घर हाजी अनवारुल्ला का है। हाजी अनवारुल्ला और हबीबुल्ला की पुरानी दुश्मनी है। यही हाजी अनवारुल्ला हैं जिन्होंने हाजी अमीरुल्ला और हबीबुल्ला के खिलाफ इमर्जेन्सी के दिनों में रिपोर्ट लिखायी थी और इनकी कोठी में तलाशी हुई थी, जिसमें तस्करी का कुछ माल निकला था। वह तो कहो कलक्टर अपना आदमी था, वरना न जाने क्या दुर्गति होती। फिर भी कलक्टर को खुश करने के लिए नसबन्दी के दस फर्जी केस देने पड़े थे।

"हबीबुल्ला, मिल ल्यो म्याँ, हज करै जाय तो, सब किना भुला देव !" एक सज्जन सलाह देते हैं और खुद ही आवाज लगाते हैं, "अमाँ हाजी साहब हैं न ! देखो इ हबीबुल्ला आये नें मिलै खातिर हज के जाय रहे ने।"

हाजी अनवारुल्ला बाहर निकलने में थोड़ी देर करते हैं। ये वही हबीबुल्ला हैं जिन्होंने उनकी जमीन पर कब्जा कर लिया था कभी और फौजदारी तक हो गयी थी। वो तो कहो वकील साहब अपने आदमी थे, सब ठीक करा दिया, वरना···

"सलावाले कुम !"

हाजी अनवारुल्ला बाहर निकलकर पूरे झुण्ड से सलाम करते हैं और हबीबुल्ला उनसे जाकर लिपट जाते हैं, "गल्ती-खता माफ किया हाजी साहब !"

एक बार फिर हबीबुल्ला का गला भर आता है और लगता है कि वे वाकई बहुत दुखी हो गये हैं। हाजी अनवारुल्ला का दिल भी पिघल जाता है, "जाओ, म्याँ, सब अल्ला मियाँ माफ करेंगें। जाओ, हमरो खातिर दोवा करियो।"

और हबीबुल्ला भरे मन से आगे बढ़ जाते हैं।

स्टेशन पर लुंगियाँ-ही-लुंगियाँ, टोपियाँ-ही-टोपियाँ और बुर्के-ही-बुर्के नजर आ रहे हैं। आज कई लोग हज के लिए रवाना हो रहे हैं। 'दादर एक्सप्रेस' छूटने में अभी काफी देर है। प्लेटफार्म पर चादर बिछाकर हबीबुल्ला को लोगों ने बैठा दिया है और बारी-बारी से आ-आकर लोग उनसे मुसाफा[1] कर रहे हैं। साथ ही अपने गुनाहों को बख्शवाने की अपील भी किये जा रहे हैं। हबीबुल्ला गम्भीर बने बैठे हैं।

फिर थोड़ी देर बाद ही वे अपने स्थान से उठकर जनाना मण्डल की ओर जाते हैं और उनकी अपीलें भी सुनते हैं, उनका सलाम भी लेते हैं—अपने लिए भी और कमलीवाले के लिए भी। उनका दिल रह-रहकर भरा आ रहा है।

"चलो म्याँ गड़िया अब छुटिए।" तब तक कोई आकर कहता है और हबीबुल्ला जल्दी-जल्दी डिब्बे की ओर बढ़ने लगते हैं। शरफुद्दीन, कमरुद्दीन, हाजी अमीरुल्ला, हाजी मिनिस्टर और हाजी मतिउल्ला सब मिलकर उन्हें सवार कराते हैं। एक बार फिर मालाएं पहनायी जाती हैं। कमरुद्दीन तो बम्बई तक साथ जायेगा। वहाँ से दस तारीख को उन्हें 'अकबरी जहाज' पर चढ़ाकर तब वापस लौटेगा।

हबीबुल्ला कम्पार्टमेण्ट में घुसकर अपनी सीट पर बैठ जाते हैं। गाड़ी धीरे-धीरे मूव करने लगती है। स्टेशन पर सगे सम्बन्धी, यार-दोस्त हाथ हिलाते हुए खड़े रहते हैं। दिल में बस एक ही भावना है, 'रसूले अरबी से हमारा भी सलाम कह देना हबीबुल्ला ! हम गुनाहों में डूबे हुए हैं। हम जमाने के सताये हुए हैं। सिर्फ हम ही नहीं, हिन्दुस्तान के सारे मुसलमान मजलूम है, सबके लिए दुआ करना।'

---

1. हाथ मिलाने की क्रिया। मुसाफ़े में दोनों हाथ पकड़कर [illegible] जाता है।

11

इधर हाजी नज़ीर गिरस्त ने भी पावरलूम बैठा लिया है और अपने अनेक कारीगरों को जवाब दे दिया है। जो लोग सेमरा, बहादुरपुर, पड़ाव आदि गाँवों से बिनकारी करने आते थे वे लोग तो अपने-अपने गाँव लौट गये, पर बशीर मियाँ कहाँ जायें ? हालांकि मतीन की तरह वे भी मऊ या मुबारकपुर की राह ले सकते थे, पर ऐसा करना उन्हें उचित नहीं जँचा, क्योंकि मतीन के घर की हालत वे देख ही रहे हैं। अलीमुन की हालत दिन-ब-दिन बिगड़ती ही जा रही है और वह है कि घर-दुआर छोड़कर परदेश जा बसा है। यह भी तो नहीं है कि कभी-कभी इधर आकर खोज-खबर ही ले लिया करे। अरे हारी तुम्हारी हाजी अमीरुल्ला से हुई है कि पूरे बनारस से हो गयी है ? लेकिन कौन समझाये ? एकाध बार अल्ताफ के जरिये सनेसा भी भेजा गया, पर जवाब में सिर्फ ढाढ़स के चन्द शब्द ही आये। वो तो अलीमुन-जैसी औरत है कि सब्र किये बैठी है। दूसरी होती तो कब की चली गयी होती।

लेकिन कहाँ चली गयी होती ? टी. बी. की उस मरीजा को कौन शरण देता ? नइहरवाले भी तो नहीं पूछते। वरना कितनी ही औरतें हैं कि नइहर में ही अपनी जिन्दगी काट देती हैं। बाप भी खुश होता है कि चलो नहीं कुछ करेगी तो बैठी-बैठी बोटा में कलाबत्तू ही भरा करेगी। लेकिन अलीमुन का तो कहीं ठिकाना नहीं है। एक ठे लड़का है, वह भी किसी काम का नहीं। कितनी बार उसे समझाया गया कि कहीं से कुछ जुगाड़ करके एक करघा गाड़ लो और अपना काम-धन्धा करो, लेकिन वे हजरत हैं कि पढ़-लिखकर न जाने क्या बनेंगे ? पता नहीं जज बनेंगे कि कलट्टर ? अरे जोलहा क लड़िका अँगरेजी पढ़ के का करिए ?

देश-दुनिया की हालत को देखते हुए बशीर ने घर छोड़ना मुनासिब नहीं समझा और अन्य लोगों की तरह ही उन्होंने भी कर्ज लेकर एक करघा गाड़ लिया। जिस कोठरी में वे लोग सोया करते थे उसी में एक ओर गड्ढा खोदकर करघे का सरंजाम जमा लिया और बाकी हिस्से में गृहस्थी की और चीजें 'तरे-उप्पर' करके किसी तरह ठूँस दी गयी।

हालांकि बशीर मियाँ जानते हैं कि यह कर्ज वे कभी नहीं उतार सकेंगे—हो सकता है बड़ा होकर मुनुवा ही इसे उतारे—पर इसके सिवा कोई चारा नहीं था। दरअसल बशीर मियाँ देख रहे थे कि पावरलूम नाम के इस शैतान ने जिस तरह हाथ के कारीगरों को बेकार किया है और जिस तरह लोगों ने कर्ज ले-लेकर करघा गाड़ा है, वह काफी महँगा पड़ रहा है अब, क्योंकि एक भी चीज तो अपनी नहीं है। कर्ज का करघा, कर्ज का कतान—सिर्फ जाँगर ही तो अपनी है। वह भी सरकारी कर्ज नहीं। सरकारी कर्ज पर तो बड़े-बड़े गिरस्तों का पुश्तैनी अधिकार

है। बैंक भी बड़े लोगों के लिए ही है। पहले तो सोसायटी को कर्ज मिलता था, अब तो वह सिस्टम खत्म हो गया है। सोर्स लगाकर अब हर आदमी कर्ज ले सकता है, लेकिन गरीबों को भला कहाँ मिल पाता है इस तरह का कर्ज। बशीर जैसे लोगों के बैंक तो यही गिरस्त लोग है। इनमे भी जो नये-नये धनी हुए गिरस्त हैं, कर्ज देने में उनकी ज्यादा रुचि रही है, ताकि कर्ज के करघे पर बुनी हुई साड़ियाँ उन्हीं के हाथों बेची जायें। और बशीर मियाँ लगातार देख रहे हैं कि उन लोगों से साड़ियाँ किस तरह खरीदी जाती हैं। बाजार से कितना कम मूल्य उन्हें दिया जाता है। उसमें भी कर्ज की राशि का एक भाग काटकर ! और अब तो नकदी नही, चेक मिलता है, जो एक महीना बाद भुनता है। चाहे गोलघर हो या गिरस्तों की कोठी हो, सब जगह लूट है। सुकून कही नही है।

बशीर मियाँ करघे पर बैठे हैं और सोच रहे हैं। सोच रहे हैं और फल्ली पर फू (मुँह से पानी का फुहारा) दे रहे हैं। बगल में मुनुवा बैठा है। उसे भी सिखा रहे हैं कि कैसे क्या किया जाता है। कुछ दिनो में जोड़िया[1] बनाने लायक हो जायेगा।

"सलांवाले कुम !"

अरे ये तो रऊफ चचा की बीवी हैं, इधर कैसे आ टपकी ?

"वालेकुम सलाम !"

बशीर की बीवी सलाम का जवाब देती हैं और उन्हे लेकर दूसरी कोठरी मे —जिसमे खाना-वाना पकता है—चली जाती हैं। वहाँ दोनो स्त्रियाँ फसर्रा मारकर बैठ जाती हैं और बातों मे मशगूल हो जाती हैं।

अचानक बशीर की बीवी एक रहस्योद्घाटन करती हैं—

"अरे कि रे ऊ समसुन चाची क बेटउवा काने उ महिन्ना मे ब्या है !"

"कउन बेटउवा, ऊ छोटकावाला ? अरे अल्ला ओका अभइने ब्या होइए ? ऊ केतना बड़ा हइए है ?"

तभी दरवाजे पर किसी के आने की आहट होती है और दोनों स्त्रियाँ खामोश हो जाती हैं।

एक बीमार-सी, मरियल, काली-कलूटी, पिचके हुए गालो और मरे हुए मुर्गे की टाँगो जैसे हाथों-पावोवाली एक लड़की दरवाजे पर खड़ी है और रो रही है।

"कउन ? रेहनवा ?"

बशीर की बीवी चौंकती हैं और खड़ी हो जाती हैं। बशीर भी वहाँ आ जाते हैं।

---

1. बिनकारी सीखनेवाला लड़का।

"का भोवा रे ?"

वे पूछते हैं और रेहाना के सिर पर हाथ फेरते हैं। रेहाना कुछ नहीं बोलती, चुपचाप आँसू बहाती रहती है, फिर थोड़ी देर बाद काँपने लगती है और दीवार का सहारा लेकर बैठ जाती है।

"का भोवा रे, बतउती काहे ने ?"

बशीर मियाँ उसके पास बैठकर दुबारा पूछते हैं तो वह अपना चेहरा उठाती है और बाप की आँखों में उसे टिका देती है—

"ऊ हम्में छोड़ दिये न अब्बा !"

बड़ी मुश्किल से वह कह पाती है और जोर-जोर से रोने लगती है। रोते-रोते बेहोश हो जाती है।

क्षेपक

हाजी अमीरुल्ला को जब यह मालूम हुआ कि उनसे मिलने के लिए एक ऐसे सज्जन उनकी कोठी पर पधारे हैं जो मुसलमान होते हुए भी हिन्दी और संस्कृत के अध्यापक हैं तो वे बहुत खुश हुए। उन्होंने झट से उन्हें गद्दी पर बैठाया और एक जोड़िया को चाय-पान लेने के लिए बाज़ार भेज दिया।

"तोरा नाँव का है मट्टर साव ?" हाजी अमीरुल्ला ने उनसे उनका नाम पूछा और आगन्तुक महाशय उनका लहजा देखकर थोड़ा चकरा-से गये। फिर भी उन्होंने अपना नाम निहायत रोब के साथ बताया, "मुझे अब्दुल बिस्मिल्लाह कहते हैं !"

हाजी साहब चौंके। ऐसा नाम उन्होंने अपनी जिन्दगी-भर नहीं सुना था। बोले, "इ केत्तर क नाँव है मियाँ ? अरे अब्दुल्ला कहो त ठीक भी है, इ अब्दुल भी अउर बिसमिल्ला भी; का मतलब भोवा म्याँ ?"

महाशयजी झेंपे : उन्हें उम्मीद नहीं थी कि सिर मुड़ाते ही ओले पड़ेंगे। लेकिन बहुत धैर्य के साथ उन्होंने काम लिया और स्वीकार किया कि हाँ, अरबी ग्रामर के लिहाज से यह नाम गलत और निरर्थक है, मगर उनके गुरुजी ने बिस्मिल्लाह के साथ अब्दुल जोड़ दिया तो वे क्या करें ?

"ऊ उस्ताद हिन्दू रहे होइएँ ?"

हाजी साहब ने स्पष्टीकरण चाहा और उन्होंने उनके कयास को स्वीकृति प्रदान की। फिर वे अपने मक़सद पर आये, "दरअस्ल हाजी साहब, मैं लेखक भी हूँ और···

"इ लेखक का होते म्याँ ?"

"अरे लेखक नाहीं जनतो ? सायर ! सायर के हिन्दी मे लेखक कहेते न !"

शरफुद्दीन ने हाजी साहब को लेखक का अर्थ बताया तो वे प्रसन्न हो गये। बोले, "तब एत्तर के बताओ न मट्टर साव कि तूं सायरी भी करेतो। बहुत बढ़ियाँ। कभी सुनाओ आपन कलाम। हम्मैं त नूर इन्दौरी क कलाम बहुत जमेते···"

"जी नहीं, मैं शायर नहीं हूँ हाजी साहब, मैं नावेल निगार हूँ।"

"ओ! जइसे हमरे इब्ने सफी अउर ए. हमीद हैं। वाह मट्टर साब! इब्ने सफी का त कोई जवाब नहीं। ऊ नवलिया क का नाँव है रे सरफुद्दिनवा जेके रस्मे एजरा[1] में लाल बहादुर सास्त्री आये रहे न?"

"हाजी साहब, मैं इब्ने सफी और ए. हमीद जैसा नावेल निगार नहीं हूँ। मैं तो..."

"अच्छा म्याँ छोड़ो, तूँ आपन काम बताओ। बीबी के खातिर बढ़िया-बढ़िया चाहे त बोलो..."

"अरे अब्बा मट्टर साहब पूरे पण्डितजी हैं। गीता-रामायन सब पढ़े हैं। जइसा चाहो, वइसा इस्लोक सुन लो इनसे। चाहे वेद से चाहे कुरान से..."

शरफुद्दीन फिर महाशयजी का परिचय देने लगा तो हाजी साहब क्षुब्ध हो उठे। दूसरों की ज्यादा तारीफ सुनने के वे आदी नहीं थे। बोले, "क मट्टर साब? तूँ वाकई संस्कीरतो पढ़े हो? मगर संस्कीरत क बादसाह तो हम एवकै जने के देखा। अब्बास चतुरवेदी के। चौहट्टा लालखाँ में रहत रहेन! चारों वेद उन्हें हिफ्ज[2] रहा। एक मरतबा एक पण्डिज्जी से मुनाजरा (शास्त्रार्थ) होय लगा, अब्बास उन्हें अऊ इस्लोक सुनायेन कि पण्डिज्जी आपन डण्ड-कमण्डल ले के सीधे मनिकनिका[3] के संग भाग चलेन!"

"दरअस्ल हाजी साहब, मैं एक नावेल लिखना चाहता हूँ बनारस के साड़ी बुनकरों पर। मैं उसी सिलसिले में कुछ जानकारी लेने के लिए आपके पास आया हूँ।"

अब्दुल बिस्मिल्लाह साहब ने जब अपना उद्देश्य हाजी साहब को बताया तो वे खिल उठे। बोले, "बहुतै बढ़िया मट्टर साब! बहुतै बढ़िया! लिक्खो! का-का लिखियो ओम्मे?"

इस पर बिस्मिल्लाह साहब ने हाजी साहब को विस्तार से बताया कि वे इनकी पूरी जिन्दगी को अपनी किताब में उतार देना चाहते हैं। बनारसी साड़ी बनानेवाले साधारण मजदूरों की जो दुर्दशा है, उनके शोषण का जो भयानक चक्र बड़े गिरस्ता लोगों और गोलघर के सेठों के बीच फैला हुआ है, अपने उपन्यास में वे इन सब चीजों को दर्शाना चाहते हैं। वे यह दिखाना चाहते हैं कि कीमती-से-कीमती साड़ियाँ बुनकर देश-विदेश के बाजारों में पहुँचानेवाला एक आम बुनकर खुद कैसी जिन्दगी जी रहा है?

---

1. विमोचन-समारोह।
2. कण्ठस्थ।
3. गंगा का मणिकर्णिका घाट, जहाँ मुर्दे जलाये जाते हैं।

"ग़लत ! बिल्कुल ग़लत !"

हाजी साहब भड़क उठे। उन्होंने इस बात का तीव्र विरोध किया कि गिरस्ता लोग मजदूरों का शोषण करते हैं। उन्होंने चिल्ला-चिल्लाकर बताया कि यहाँ का हर बुनकर मजे में गोश्त-रोटी खाता है और ठाट में रहता है। उसके सामने जिन्दगी की कोई समस्या नहीं है। यही नहीं, गिरस्ता तो खुद ही इन मजदूरों के मुहताज रहते हैं। ये बड़े टेढ़े और घमन्डी हैं। ये बुरचोदी के बेईमान और मादरचोद हैं। गिरस्त तो खुद इनका कर्जदार होता है। एक कारीगर जे इंच साड़ी रोज बुनता है ते इंच की मजदूरी का कर्ज गिरस्त पर चढ़ता जाता है···तूं मट्टर साब इन भोंसड़ियावालेन के बारे में एत्तर की बात कइसे लिखे तो ?

और अन्त में उन्होंने अपना सुझाव इस प्रकार दिया, "तूं लिक्खो, सौक से लिक्खो मट्टर साब ! मगर अइसा लिक्खौ कि हम अंसारी भाइन का सर ऊँचा होय। चारों संग हमारा नाँव होय···"

और जनाब अब्दुल बिस्मिल्लाह साहब इस भाषण को सुनकर पस्त हो जाते हैं।

हाजी साहब उनकी पस्ती को महसूस करते हैं और मन-ही-मन खुश होते हैं। चले हैं मेंटहियोंवाले हम्में नाविलनिगारी सिखावें···

12

मऊ पहुँचकर मतीन ने खोरी बाग नामक मुहल्ले में किराये की एक कोठरी ले ली है और कस्बे के चेयरमैन जनाब सुल्तान अहमद के कारीगरों के साथ मिलकर काम करने लगा है। यहाँ सूती धागों से सटर पर हैण्डलूम की साड़ियाँ बिनी जाती हैं। लेकिन यहाँ भी एक ही बात उसे विचित्र लग रही है कि करघे पर प्रायः औरतें ही बैठा करती हैं, मर्द बाहरी काम किया करते हैं। अर्थात यहाँ बनारस में औरत की ज़िन्दगी कतान में बन्द है और यहाँ करघे में। बच्चे पैदा करना, खाना पकाना, शौहर की ख़िदमत करना और पर्दे में रहना—ये सब चीज़ें अतिरिक्त और समान हैं।

मतीन जिस आदमी के घर में रहता है उसकी बीवी भी सुबह्-सवेरे करघे पर बैठ जाती है और खटा-खुट खटा-खुट शुरू हो जाता है। उसका शौहर चेयरमैन के यहाँ कोई और काम करता है। लेकिन तनख्वाह उसे शायद ही मिलती हो, इस-लिए घर में ख़र्च की तंगी अक्सर ही बनी रहती है। लगता है चेयरमैन साहब की झूठी ख़ुशनूदी हासिल करने के लिए ही यह आदमी उनकी पूँछ के पीछे लगा रहता है।

इधर मऊ के बुनकर काफी परेशान हैं। सूत बहुत महँगा हो गया है और मिल नहीं रहा है। सरकार ने कोआपरेटिव से सूत देने की जो व्यवस्था की है उसका लाभ चेयरमैन सुल्तान अहमद, हाजी जमाल अहमद, मंज़ूरुल हसन अंसारी आदि लोगों को ही मिल पा रहा है। जिन साधारण बुनकरों के पास अपने निजी करघे हैं, उन्हें ब्लैकबाज़ार में दुगने मूल्य पर सूत ख़रीदना पड़ रहा है। पिछले दिनों मऊ में बुनकरों का एक बहुत बड़ा सम्मेलन हुआ था जिसमें यह बात उठायी गयी थी, लेकिन बुन-कर नेताओं ने इस पर ध्यान देना ज़रूरी नहीं समझा। वे अपने राजनीतिक मसलों में ही उलझे रहे और इधर मऊ, कोपागंज, घोसी, दोहरीघाट आदि के गरीब बुन-

करों की हालत बद से बदतर होती जा रही है।

इन दिनो मतीन भी सोच रहा था कि अपना एक निजी करघा बना ले। इसके लिए काट-कपटकर उसने कुछ रुपये भी बचा लिये थे, लेकिन बाजार की हालत को देखते हुए हिम्मत नहीं पड़ रही है।

आठ बज गये हैं, लेकिन धुंध अभी नही छँटी है। कुछ दिनों से शीतलहर शुरू हो गयी है और पटापट लोग मरने लगे हैं। इस इलाके में वैसे भी मौतें ज्यादा हो रही हैं इन दिनो। अभी दशहरे और मुहर्रम के मौके पर यहाँ भयंकर दंगा हुआ, जिसमें सैकड़ों जानें गयीं। सरकारी भाषा में 'संवेदनशील मुहल्लों' में बारह दिनों तक लगातार कर्फ़्यू जारी रहा—चौबीस घण्टे का। भीतर लोग पानी बिना मर गये। लाशें सड़ गयीं, लेकिन दफनाने की छूट नही मिली। लोग खिड़कियों से पुर्जी फेंकने लगे कि उनके बच्चे भूखों मर रहे हैं, कर्फ़्यू में छूट दी जाय, लेकिन लोगों की प्रार्थनाओं पर कोई ध्यान नही दिया गया।

इस दंगे और इस कर्फ़्यू से मऊ ही नहीं, आसपास का सारा धंधा ठप हो गया। आजमगढ़ जिले के कोपागंज, अदरी, पूराघाट, घोसी, सिपाह, मधुबन तथा गाजीपुर जिले के बहादुरगंज, कासिमाबाद, गंगौली, जहूराबाद, मरदह, जंगीपुर आदि स्थानों के बुनकर मऊ से ही सूत लाकर साड़ी बुनते हैं और साड़ी तैयार करके उसे मऊ ले जाकर अपनी मजदूरी प्राप्त करते हैं। कर्फ़्यू के कारण तैयार माल लोगों के घर मे ही पडा रहा और उन्हें सूत भी नहीं मिल सका, जिससे साडी तैयार की जा सके। इस तरह पिछले कई महीनों से यहाँ के बुनकर तबाही के शिकार होते आ रहे हैं।

तो, इस मऊ और बनारस मे क्या फ़र्क़ है? मतीन ने सोचने की कोशिश की, लेकिन अपने सवाल का उसे कोई जवाब नही मिला।

मतीन टट्टी करने गया था। खेतों मे इतनी ओस थी कि उसकी लुंगी बुरी तरह भीग गयी थी और उस पर घास की टूटी हुई पत्तियाँ चिपक गयी थी। मतीन एक हाथ मे लोटा थामे और दूसरे हाथ से अपनी लुंगी का टोका उठाये चला आ रहा था। अचानक उसे ऐसा लगा कि मंसूर चा'वाले के यहाँ लोगो की भीड़ इकट्ठी हो रही है।

उनमे से कइयों को वह अब पहचानने लगा था। वे खोरीबाग, बात की मस्जिद, रघुनाथपुरा आदि के बुनकर थे जो डेली इसी दूकान पर चाय पिया करते थे। मतीन भी यहाँ आया करता था। इस वक़्त भीड़ देखकर वह चाय की दूकान पर खडा हो गया। वहाँ एक आदमी के हाथ मे 'आज' अखबार था और लोग उचक-उचककर किसी ख़बर को पढ़ने की कोशिश कर रहे थे। मतीन अपना

नोटा पीछे किये आगे बढ़ गया और अखबारवाले की बगल में खड़ा होकर खुद भी उस समाचार को पढ़ने लगा, जिस पर पूरी भीड़ की नजरें जमी हुई थीं—

—मऊ में बिचौलियों द्वारा गरीब बुनकरों का शोषण !

'बुनकरों के शहर मऊ में बुनकरों की दयनीय स्थिति इस बात का प्रमाण है कि सरकार द्वारा बुनकरों को मिलनेवाली सहायता एवं सुविधाओं का लाभ चन्द बिचौलिये ही उठा रहे हैं। ये बिचौलिये मिल, साइजिंग खोलकर उसमें गरीब बुनकरों से काम लेते हैं और इसके बदले बहुत कम पारिश्रमिक देते हैं।

'आर्थिक शिकंजे में ग्रस्त यहां के बुनकरों का रहन-सहन इतना निम्नस्तर का है कि वे स्वयं कपड़ा बुनकर भी अपने बच्चों को कपड़ा पहना नहीं पाते। घर के नाम पर इन्हें कच्चे सीलन-युक्त अथवा टीन शेड के मकानों में रहना पड़ता है। मामूली-सी वर्षा में घर कीचड़युक्त हो जाता है, फिर भी वे इस नारकीय जीवन को बिताने के लिए मजबूर हैं।

'बुनकरों ने बताया कि सरकार की निगाह में हम बुनकर नहीं हैं। बुनकर वे हैं जो मिल तथा साइजिंग खोलकर शोषण तथा ऋण-अदायगी में आनाकानी करते हैं। हम तो इनके यहां मजदूरी पर कार्य करते हैं।

'एक या दो करघा लगाकर कपड़ा बुननेवालों के समक्ष बिक्री की समस्या है, क्योंकि उनके समक्ष सम्पन्न प्रतियोगी खड़े रहते हैं। बुनकरों ने आरोप लगाया कि स्थानीय हस्थकरघा निगम में गरीब बुनकरों का कपड़ा नहीं खरीदा जाता, क्योंकि वे निगमवालों को खुश नहीं कर पाते।

'सूत, रेशम, ऊन, स्टेपुल तथा केमिकल्स आदि के मूल्यों में वृद्धि से बुनकर अलग परेशान हैं।

'बुनकरों ने सरकार से मांग की है कि वास्तविक गरीब बुनकरों द्वारा उत्पादित कपड़े को खरीदने की व्यवस्था की जाय तथा उन्हें ऋण की सहायता सुलभ करायी जाय।'[1]

"बढ़िया लिखे हन !"

"इ के छपावे होइया ?"

"मोरे ख्याल से इ झारखण्डे राय छपावे होइहन।"

"हां हां ठीक कहेव !"

मतीन चल पड़ा वहां से। प्रतिक्रियाएं होती रहीं।

---

1. 'आज' से साभार।

तो बनारस और मऊ में क्या फर्क है? मतीन फिर सोचने लगा। उसे अपनी गोसायटीवाली बात याद आ गयी। वह आरम्भ से अन्त तक उस प्रकरण को सोच गया और अचानक ही उसका मन सूखने लगा।

उसने अपनी टिनशेडवाली कोठरी के किवाड़ खोले और भीतर जाकर ज़मीन पर बिछी नथरी पर गुमसुम-सा बैठ गया। उसे अलीमुन और इकबाल की याद आने लगी। कहीं अलीमुन की तबीयत अब ज्यादा ख़राब तो नहीं हो गयी होगी? इकबलवा आवारा तो न हो गया होगा? और वह पजमुर्दा होने लगा। उसने काम पर जाने का विचार त्याग दिया।

और यह सोचकर ही कि आज उसे नागा करना है, उसके भीतर एक विचित्र क़िस्म का उत्साह भर गया। जैसे कोई त्यौहार आने पर बच्चे उत्साहित हो उठते हैं, कुछ उसी तरह; और वह चूल्हा सुलगाने लगा।

"का करतेव हो?"

मतीन चौंका। दरवाजे पर मकान मालकिन खड़ी थी।

"जाइते खाना पकावे।"

"म सोचऊँ तनी पूछ लेवें, आज देखाव्यो नाँही। सबेरवें से केहर गायब रहेव?"

मतीन ने उस स्त्री को सुबह की सारी घटना समझायी, कि वह टट्टी से लौटते वक़्त मंसूर चा'वाले के यहाँ रुक गया था और अखबार में ऐसी-ऐसी बात छपी है। मऊ के ग़रीब बुनकरों के बारे में ऐसा-ऐसा लिखा जा रहा है।

"इ सब इन्निरो गाँधी पढ़िहन कि नाँही?"

उस औरत ने अत्यन्त भोलेपन के साथ यह सवाल किया तो अपनी उदासी मे भी मतीन मुस्करा उठा। उसने इन्दिरा गाँधी की अहमियत उस औरत को समझायी और हँसी करते हुए कहा, "न त हमरे अल्ला मियाँ अंसारी हैं अउर न इन्निरा गाँधी जुलाहिन हैं, कि हमरा दरद ऊ लोगन के होइए।"

और बकरीदन चाची हँस पड़ी। वे थोड़ी देर तक मतीन का चूल्हा सुलगाना देखती रही, फिर चल पड़ी।

"चलौं अभिन बहुतै काम करै के पड़ा ह।"

मतीन ने अलमूनियम की एक टेढ़ी-सी थाली मे दो दिन से रखी हुई काली पड़ी लौकी के टुकड़े किये, फिर उन टुकड़ों को एक पतीली मे रखकर उसी थाली मे आटा सानने लगा। थाली बीच मे थोड़ी फूटी हुई थी, इसलिए मतीन जब हुमच-कर आटे को गूँथता तो फर्श की गीली मिट्टी पानी के साथ मिलकर थाली मे आ जाती और मतीन उसे आटे से अलग न कर पाता। इस तरह धीरे-धीरे आटे का रंग काला होता जा रहा था।" कितनी भी गरीबी सही पर क्या अलीमुन के रहते वह ऐसे आटे की रोटी खा सकता था? मतीन को फिर अलीमुन की याद आयी

और वह भीतर से विचलित हो उठा।

जिन्दगी में जब इसी तरह की चीजें हर जगह हैं तो बनारस ही क्या बुरा है? अब तो उसके पास इतने पैसे भी बच गये हैं कि थोड़ा-बहुत कर्ज-वर्ज लेकर वह अपने लिए एक करघे का इन्तजाम कर सकता है। तो क्यों न वह बनारस लौट चले? मऊ और बनारस में फ़र्क ही क्या है? ग़रीब तो हर जगह एक ही जैसे हैं। और मतीन अपने-आप से ही उलझ गया। उसका चित्त डगमगाने लगा। उसकी आंखों में अपना पूरा घर नाचने लगा। कभी लगता कि चूली-दुआर में अलीमुन खड़र-मड़र कर रही है और कभी महसूस होता कि इकबाल धम्म-धम्म सीढ़ियाँ चढ़ रहा है। कभी लतीफ तो कभी अल्ताफ, कभी रऊफ चच्चा तो कभी नजबुनिया···

मतीन से खाना नहीं खाया गया। वह बाहर निकल गया।

मतीन ने वह पूरा दिन किसी प्रकार घूम-टहलकर काटा और अगले दिन वह अपना डेरा-डण्डा लेकर सुबहवाली गाड़ी से बनारस के लिए रवाना हो गया।

13

गली में दो साल से लेकर चार साल तक की उम्र के चार-पांच लड़के खेल रहे थे। उनमें से एक लड़का नंगा था और उसकी नाक से पीला-पीला कीचड़ लुढ़का पड़ रहा था, जिसे वह बार-बार सुड़क ले रहा था। नंगे लड़के की छुन्नी में एक लम्बी-सी सुतली बंधी हुई थी, जिसे एक लड़का दूर खड़ा होकर खींच रहा था और बाकी लड़के हो-हो करके हँस रहे थे। वह नंगा लड़का भी रह-रहकर हँस देता था।

मुहल्ले में मतीन के पहुँचने की खबर सबसे पहले उन्हीं लड़कों में से किसी ने अलीमुन को दी और वह ऊपरवाली खिड़की खोलकर झांकने लगी। तब तक मतीन अपना डल्ला-पल्ला लिये भीतर पहुँच गया था और अपने ही घर में वह इस तरह खड़ा था, जैसे कहीं से मेहमान होकर आया हो।

थोड़ी देर तक मतीन उसी तरह चुपचाप खड़ा रहा। अलीमुन उसे एकटक देखती रही। फिर उसने मतीन के हाथों से झोला-झक्कड़ लेकर एक कोने में सारा सामान टिका दिया और खटिया का बिस्तरा हाथ से झाड़-झाड़कर साफ करने लगी।

मतीन बिस्तरे पर बैठ गया। उसके बाल अब पक चले थे और बढ़ी हुई दाढ़ी

मे सफेद-सफेद गूँटियाँ अलग से चमक रही थी। उसके गाल भी अब पिचक गये थे और हाथों-पाँवों की नसें बाहर की ओर निकल आयी थी।

"मजे मे रहेव ने?" अलीमुन ने खटिया के पास ही जमीन पर बैठते हुए अपने शौहर की खैरियत पूछी तो मतीन का दिल भर आया। वह कुछ बोल नही सका। एकटक अलीमुन के सिर की ओर देखता रहा।

अलीमुन सिर पर दोनों हाथ रखे उकड़ूँ बैठी थी। उसके बाल भी धीरे-धीरे खिचड़ी हो रहे थे और उँगलियों के नाखून घिसने लगे थे। चमड़ी पर झुर्रियाँ पड़ गयी थीं। चेहरा काला हो गया था।

अचानक अलीमुन को खाँसी आ गयी और उठकर वह बाहर चली गयी। मतीन ने खटिया पर बैठे-बैठे ही देखा कि अलीमुन के मुँह से लाली लिये हुए बलगम का एक भारी-सा थक्का नीचे गिरा है और वह लस्त हो गयी है।

"दवाई नाँही खात रहे का?"

उसने यूँ ही सिर्फ कुछ बोलने के लिए यह सवाल किया जिसके जवाब मे अलीमुन अपने इलाज का पूरा ब्योरा ही बता गयी।

"बिल्कुल फायदा नाहिं ने!"

और वह कँहरने लगी।

"इकबाल कहाँ गोवा है?"

"गोवा है बसीर किहें!"

"इस्कूल नाँही गोवा का?"

अलीमुन को फिर खाँसी आ गयी।

"आज रात मे रेहनवा क इन्तकाल हो गोवा। मट्टी का बनउवा आवा रहा, त इस्कूल नाँही गोवा, हुँअइन चला गोवा!"

और वह फिर खाँसने लगी।

मतीन जड़ हो गया, जैसे किसी ऐसे साँप ने उसे काट लिया हो जिसका लहर भी आदमी को नही आता।

अलीमुन ने बड़ी मुश्किल से उसे सारा वृतान्त बताया—खाँसते-खाँसते. कि किस तरह रेहनवा का तलाक हुआ और किन तरह वह नइहर में आकर बदतर हालत मे रहने लगी। जिन्न ने उसके पूरे जिस्म को चूस डाला था। सिर्फ हड्डियाँ ही बच रही थी। इतना सुन्दर शरीर तवा की तरह काला हो गया था और हाथ-पाँव बाँस की कनइयो की तरह पतले। आये दिन हड़कना। हर जुमेरात को माँ के साथ बहादुर शहीद जाती थी, पर कोई फर्क नहीं पड़ा। दिन-ब-दिन हालत गिरती ही गयी। आखिर मे उसने चारपाई पकड़ ली और आज रात को बेचारी चल बसी।

मतीन खड़ा हो गया।

"कहाँ ?"

"जाड़ते बशीर किये !"

"चहिया त पिये जाव !"

और अमीमुन वहाँ से उठकर रसोईघर में घुस गयी। लेकिन मतीन ने चाय के लिए मना कर दिया। बोला, गाड़ी में पी ली है। ख्वाहिश नहीं है।

और वह सीढ़ियाँ उतरकर गली में आ गया।

अमीमुन चूल्हा जलाकर खाना पकाने की तैयारी करने लगी।

बशीर के घर में भीतर खूब रोआ-रोहट मचा था और बाहर कफनाने-दफनाने पर बुजुर्गाना चर्चाएँ हो रही थीं। कब्र के लिए जमीन का टुकड़ा तय किया जा चुका था। कफ़न का कपड़ा और कब्र के भीतर लगनेवाली लकड़ियों का इन्तजाम होना बाक़ी था। एक लड़का बेर की झाड़ियों के लिए जा चुका था और अब एक कागज पर यह लिखा जा रहा था कि कफ़न के अलावा और किन-किन सामग्रियों की आवश्यकता है ?

इस शोर-शराबे में मतीन चुपचाप खड़ा रहा। वह सोचता रहा कि जिन्दगी में आदमी को कितनी-कितनी जरूरतें हुआ करती हैं कि उन्हें वह आजीवन पूरा नहीं कर पाता, जबकि मर जाने पर वे जरूरतें किस क़दर सिमट जाती हैं। बस थोड़ा-सा कपड़ा, एक शीशी केवड़ा जल, थोड़ी-सी मुल्तानी मिट्टी, एक पैकेट अगर-बत्ती और थोड़ा-सा कपूर। कुल मिलाकर एक लाश के लिए बस इतनी-सी चीजों की जरूरत होती है। बस ! यह भी न मिले तो क्या ? लाश भला क्या शिकायत करेगी बेचारी ? यहाँ आदमी की तमाम जरूरतों का ख़ात्मा हो जाता है।

"अरे मतीन तूँ कब आएव ?"

सहसा एक बुजुर्ग मतीन को टोकते हैं तो उसका ध्यान भंग होता है। वह उनसे सलाम करता है और फिर बारी-बारी से सारे लोगों के पास जाकर उनसे सलाम करता है। लोगों को संक्षेप में वह अपना हालचाल बताता है और फिर रेहाना के लिए कफ़न लाने के लिए खुद ही चल पड़ता है।

मौलवीजी के बाड़े में लकड़ियों की एक टाल है, जहाँ जलाऊ लकड़ियों के अलावा कब्र में बिछानेवाली लकड़ियाँ भी मिला करती हैं। मोटी-मोटी, सीधी और कब्र के नाप से गाठी हुई। केवल कब्र की लम्बाई बता देने से ही काम-भर की लकड़ियाँ दे दी जाती हैं। इस टाल पर एक मौलवी साहब बैठते हैं जो लकड़ियाँ भी बेचते

हैं और मुहल्ले के लड़के-लड़कियों को सिपारे[1] भी पढ़ाते हैं। अपनी दुकान में वे कफ़न का कपड़ा और मुल्तानी मिट्टी आदि अन्य चीजें भी रखा करते हैं, जिससे आसपास के लोगों को कफ़न-दफ़न के लिए परेशान नहीं होना पड़ता। और सबसे बड़ी बात तो यह है कि इस पवित्र काम के लिए उन्हें हिन्दू दूकानदारों के यहाँ नहीं जाना पड़ता!

मतीन जिस वक़्त टाल में पहुँचा, मोलवी साहब एक दस-ग्यारह साल की लड़की के गालों को मसल रहे थे और हँस-हँसकर डाँट रहे थे कि अभी तक तुम्हें 'अलिफ़ लाम मीम' याद नहीं हुआ। लड़की मोलवी साहब की इस हरकत को निहायत शर्मिन्दगी के साथ झेल रही थी और पढ़ रही थी—

अलिफ़ लाम मीम
ज़ालिकल किताबो
लारैब फ़ीह
हुदँल्लिल मुत्तकीनलज़ीन
यौ मे नून···

"सलाँवाले कुम!" मतीन ने मोलवी साहब को सलाम किया तो बेचारे बुरी तरह झेंप गये और लड़की का गाल छोड़कर उठ खड़े हुए। उन्होंने अपने को फ़ौरन इस तरह उदास बना लिया मानो बशीर की बिटिया नहीं, उन्हीं की बिटिया मरी है। झट-से उन्होंने सारे बच्चों की छुट्टी कर दी और मतीन को कफ़न का कपड़ा दिखाने में तल्लीन हो गये।

कई-कई जनाना लाशों का कफ़न बना चुकी चार अनुभवी महिलाओं ने मिलकर रेहाना का कफ़न तैयार किया, उस पर कपूर मला और फिर रेहाना की लाश को नहला-धुलाकर कफ़न में लपेट दिया गया।

थोड़ी देर में मस्जिद से पंचायती ताबूत आ गया और उसमें रेहाना को लिटा दिया गया। जनाज़ा चल पड़ा।

घर में रोने की आवाज फिर यकबयक तेज हो गयी। बशीर की बीवी दीवार पर अपना सिर पटकने लगी और अन्य औरतें रेहाना का गुणगान कर-करके रोने लगीं।

मुनुवा सुसुक-सुसुककर रो रहा था।

---

1. कुरान शरीफ़ के खण्ड।

कब्रिस्तान में मुहल्ले के लगभग सभी लोग आये थे। सिर्फ लतीफ नहीं था। हालाँकि उनके यहाँ भी मिट्टी का बुलउवा भेजा गया था, पर वह घर से ही गायब हो गया था।

कब्र अभी तैयार नहीं थी, अतः जनाजा उतारकर लोग इधर-उधर धूप में बैठ गये थे और यह भूलकर कि वे किसी लाश को मिट्टी देने आये हैं, तरह-तरह की राजनीतिक और सामाजिक चर्चाओं में मशगूल हो गये थे।

लेकिन रऊफ चचा सबसे अलग-थलग एक पेड़ की जड़ पर बैठे थे और सिर पर दोनों हाथ रखे न जाने किस विचार में गुम थे।

मतीन भी उन्हीं के पास जाकर बैठ गया।

"ऊ लतिफवा रेहनवा के काहे तिलाक दै दियेस चचा?" उसने अत्यन्त भरे मन से यह सवाल रऊफ चचा से किया तो वे नजर उठाकर उसकी ओर देखने लगे मानो इस सवाल के भीतर भी कोई एक सवाल है, जो खुद उनकी ही आँखों में गड़ रहा है। वे खामोश रहे।

"आखिर भोवा का रहा चच्चा?"

मतीन ने फिर उन्हें छेड़ा तो इस बार वे बुरी तरह हिल गये। उनकी खामोशी मानो गायी कच्ची दीवार की तरह ढह गयी।

"अब का बताएँ मतीन, नजबुनियो क त तिलाक हो गोवा है।"

"ऐं!"

और आगे मतीन कुछ नहीं बोल सका। वह बर्फ की तरह ठण्डा हो गया। उसके भीतर की सारी हलचल समाप्त हो गयी। लगा कि वह खुद ही एक कब्रस्तान हो गया है···और जब 'चलो साहबो मट्टी देओ' की पुकार लगायी जाने लगी तो उसकी समझ में यह नहीं आया कि वह किसे मिट्टी दे? रेहाना को? नजबुनिया को? खुद को? या बिरादरी के इस कोढ़ को?

14

इलाके के बुनकरों में फिर गुनगुनाहट होने लगी।

मतीन आ गया है। देखें अब क्या करता है यह?

इस बीच लोगों ने उसे सूचना दे दी है कि कोठीवाल अब उन्हें चेक देते हैं जो एक महीने के बाद भुना करते हैं, इसलिए ज्यादातर लोग अपने चेक कम दाम में

दूसरों को दे देते हैं। दाम-मजूरी-रफूगीरी की कटौती तो चल ही रही है। पावरलूम ने हाथ के कारीगरों की अहमियत कम कर दी है…

रेहाना का जिस रोज 'चउथम' था उसी रोज दोपहर के वक्त अचानक ही मतीन के यहाँ अल्ताफ टपक पड़ा। एक नजर में तो वह पहचान में ही नहीं आया। एकदम से हुलिया ही बदली हुई। न लुंगी, न टोपी, न दाढ़ी की खूँटियाँ। खद्दर का पाजामा-कुर्ता पहने, नंगे सिर, क्लीन शेव, पान दबाये—किसी नेता जैसे अन्दाज में वह आया और सलाम करके मचिया पर बैठ गया।

"खैरियत न है न?"

मतीन ने यह सवाल इस जवाब की उम्मीद में किया था कि वह रिवाज के अनुसार 'खुदा का फजल है' कहेगा, लेकिन उसने तो ऐसी खैरियत शुरू की कि मतीन दंग रह गया।

"देखो मतीन, अब एत्तर के काम नाईं चलिए। अब कुछ करे के होइए। एक दिन हम गये रहे दीपक मल्लिक किंयें, अउर एक दिन कोलसला अदल किंयें। ऊ कहेन कि लाल झण्डा पार्टी क मेम्बर हो जाओ, त कुछ किया जाय। अउर हम हो गयेन। अब त हम भामड़-वामड़ भी देइते। देखो तूं कुछ करो अब। हमरी बिरादरी में इ जो का कहेंतेन, भरस्टाचार फइला है, एके खिलाफ कुछ करो। हमरी लाल झण्डा पार्टी तोरा साथ देइए। साथी ऊदल हमसे कहेंन्हें अउर साथी मोबीन मास्टर भी…"

वह देर तक बड़बड़ाता रहा और मतीन सुनता रहा।

तो यह कम्युनिस्ट पार्टी का लीडर हो गया है अब। और कुछ तो इससे हो नहीं सका। चला है अब लीडरी करने!…मतीन सोचता है और अल्ताफ को सिगरेट पेश करता है। यह सिगरेट उसे मऊ में मिली थी। किसी ने दी थी। चार-पाँच सिगरेटें थीं उस पैकेट में, जिनमें से एक अभी तक बची हुई थी। खुद तो पी नहीं, दोस्त-मित्रों को पिला दी थीं। एक अल्ताफ भी पी ले। लेकिन उसने इनकार कर दिया। अपनी जेब से उसने बीड़ी का बण्डल निकाला और उसमें से एक बीड़ी निकालकर माचिस की तीली रगड़ने लगा।

"तू पियो म्याँ, हम त बिड़ियै पीएने। सिगरेट त बुरजवा लोग पियेतेन!"

"इ बुरजवा का होते म्याँ? कउनो गाली है का?"

अल्ताफ हँसने लगा।

"गालियै समझ लेव, मगर गाली नाहिने। इ एक कलाम होते। तुँहूँ न समझ में अइए। हमहूँ नाहीं जनते कि का होते इ कलाम-फलाम। हमरे कुछ समझ में नाहीं अउते। इ सब उ कमरेट लोग बोलेतेन, त हमहूँ सीख लीयेन!"

"इ कमरेट का होते म्याँ?"

"कहा न कि हम नाहीं जनतेन। बस हम्मैं एतना मालूम है कि इ पार्टी तोरा

साथ देइए। इ गिरस्ता लोगन के खिलाफ है। इ सेठ लोगन के खिलाफ है। कब्बों चलियो हमरे साथ !"

"हम का करेंगे जा के म्याँ ? तुंही जाओ। हम्में बहुत काम है।"

"काम त बुरचोदी के लगें रहे त म्याँ ?"

"मगर काम त करे के होइए के नाहीं ?"

और अल्ताफ चुप हो गया। उसकी बीड़ी बुझ गयी थी। उसने कई बार उसे फू-फू करके जिन्दा करने की कोशिश की, लेकिन जब एक भी चिनगारी नजर नहीं आयी तो उसने दुबारा माचिस की तीली घिसी और खड़ा हो गया, "अच्छा सलांवाले कुम ! फिर आएंगे।"

और वह जिस झटके से आया था, उसी झटके से बाहर चला गया।

15

बैठके में तिल रखने को जगह नहीं है। हबीबुल्ला आज ही हज से लौटे हैं। मुलाकातियों का तांता लगा हुआ है। जहाज से उतरते ही बम्बई से ही उन्होंने ट्रंककाल कर दिया था कि 'महानगरी' से फलां तारीख को पहुँच रहे हैं, लेकिन उस तारीख को न पहुँचकर वे आज पहुँचे हैं। कस्टमवालों ने बखेड़ा खड़ा कर दिया था। अरे अब पहलेवाला हज तो रहा नहीं कि अल्ला मियाँ की गाय की तरह सीधे-सीधे चले गये और सीधे-सीधे चले आये। अरे भाई दुनिया बहुत आगे बढ़ गयी है ! बाल-बच्चों का खयाल रखना ही पड़ता है। अब चलते वक्त बीवी ने दो लेडिस घड़ियों के लिए कह रक्खा था, बिटिया ने टेपरिकार्डर मँगवाया था, साहबजादे ने सीको-5 जापानी घड़ी और एक कैमरे के लिए आखिरी दम तक ताक़ीद की थी, भला कैसे छोड़ देते ? 'फिर एम्मन कउन गुनाह है, घर के वास्ते ला रहे हैं, कउनों तस्करी-फस्करी थोड़े कर रहे हैं कि बुरचोदी के अल्लामियाँ के बुरा लगिए !'

लेकिन कस्टमवाले इस तर्क को कहाँ समझते हैं ? आप हाजी हों चाहे कुछ भी हों, उन्हें तो अपने हिस्से से मतलब। हबीबुल्ला ने लाख मिन्नत-समाजत की कि भाई अब तो मैं हाजी हो गया हूँ, मुझे क्यों सताते हो, एक गरीब हाजी पर रहम करो ! मगर साहब, कस्टमवालों से खुदा ही बचाये तो बचाये। छिनरी के ऐंठ लिये पाँच सौ रुपये !

हाजी हब्बीबुल्ला अपने संस्मरण सुना रहे हैं और लोग बड़े ही भक्ति-भाव से

उनकी ओर टुकुर-टुकुर ताक रहे हैं। वे दीवार से टेक लगाये, आराम के साथ फूल-मालाओं से लदे बैठे हैं और उनके चेहरे पर एक आध्यात्मिक वमाशत खिली हुई है। अरबियन कट दाढ़ी से नूर टपका पड़ रहा है।

"अउर सुनाओ मियाँ हाजी साव, कहाँ ठहरे रहेव ? जमजम का पानी मिल गोवा रहा आसानी से ?"

एक अनुभव-सम्पन्न हाजी ने हबीबुल्ला से जब यह सवाल किया तो उन्हें मौका मिल गया अपने संस्मरणों को आद्यन्त सुना डालने का। और वे शुरू हो गये।

उन्होंने बताया कि जद्दा में ही उन्हें ऐसा लगने लगा था कि वे अहराम बाँधे हुए जन्नत में पहुँच गये हैं। अहराम (एक पवित्र सफ़ेद कपड़ा, जिसे हज-यात्री अपने सिर पर बाँध लेते हैं।) तो समुन्दर में ही बँधवा दिया गया। अरे म्याँ समुन्दर का भी क्या कहना ! बुरचोदी के,जेहर देखो, पनियै-पानी ! एद्दम नीला ! ई बडकी-बड़की मछरी बुड़की मारैं ! मगर पानी खारा। जहाज में भी वही पानी दिया जाता था कभी-कभी। तोबा-तोबा ! बाल में नमक जम जाता था नहाते वक़्त।

तो ख़ैर, मक्का पहुँचकर यह देखा कि न कोई थाना है न कचहरी। जरायम नाम की चीज ही नहीं है वहाँ। अल्लाह के घर में भी म्याँ जरायम होइए ? वहाँ तो एक मुल्क है जहाँ चोरों के हाथ अब भी काट लिये जाते हैं और दुर्रों (कोड़ों) की सजायें मिलती हैं। सर क़लम कर दिया जाता है।

ख़ैर···रहने के लिए बड़ा बढ़ियाँ इन्तज़ाम हो गया था। एक कोठरी सस्ते में मिल गयी थी, जिसमें चार हाजी लोग एक साथ रहते थे। इत्तेफ़ाक से चारों हिन्दुस्तानी रहेन। वहाँ हिन्दुस्तानी हाजिन से मियाँ चिढ़तेन सब। और यहाँ के लोग ऐसे हैं जो बुढ़ापे में हज करने जाते हैं, वरना और जगह से तो जवान-जवान लड़कियाँ हज के लिए आती हैं। मगर क्या मजाल है कोई उन्हें बुरी निगाह से ताक दे। कोई बत्तमीजी नहीं होती वहाँ। अरे इण्डोनेशिया में तो यह कानून ही बना दिया गया है कि हज करने के बाद ही लड़के-लड़की की शादी हो सकती है।

ख़ैर···तो वहाँ बड़ा आराम रहा। मोअल्लिम भी बढ़ियाँ आदमी रहेन। ('मोअल्लिम' अर्थात् हाजियों के सहायक जो अरब के ही होते हैं।) दोनों टैम भेड़ का गोश्त पकता था और रोटी। हिन्दुस्तानी हाजी ज्यादातर अपने हाथ से ही पका लिया करते थे। वहाँ एक हज्जिन बेचारी बीमारी पड़ गयी। सब लोग उनकी तीमारदारी में लग गये।

मगर मियाँ कमाल देखा 'सफा-मरवा' की पहाड़ी पर जहाँ एद्दम सुजलुज बुड्ढे भी बछेड़े की तरह दौड़ रहे थे। अउर हरम शरीफ़ का तो पूछो ही मत ! संगे-असवद (काबे में लगा एक काला पत्थर) का बोसा लेने के लिए इतनी भीड़,

इतनी भीड़ कि कुछ मत पूछो ! लेकिन मियाँ 'ज़मज़म' का पानी हमें आसानी से मिल गोया। बाकी लोग तो नकली पानी भर लाये हैं···

हाजी हबीबुल्ला तो मैं भरे बोले जा रहे थे और लोग तल्लीन होकर सुने जा रहे थे। बीच में कुछ लोग उठकर चले जाते थे तो दूसरे लोग आ टपकते थे। हबीबुल्ला का लड़का ट्रे में खजूर और जमजम (पवित्र जल) के प्याले लेकर आता तो लोग भक्ति-भाव से तबर्रुक ग्रहण करते और फिर तल्लीन हो जाते। यह सिलसिला दोपहर तक चलता रहा। फिर हाजी साहब उठकर नमाज़ पढ़ने चले गये और भीड़ धीरे-धीरे छँट गयी। हबीबुल्ला का लड़का स्कूटर लेकर तबर्रुक बाँटने के लिए निकल पड़ा। खजूर, अरब की मिट्टी, आबे-जमजम, तस्बीह और चाकलेट। यह चाकलेट नये फैशन का प्रतीक है। अपने दोस्तों की थैली में उसने एक-एक चाइनीज़ पेन भी डाल दिया था।

16

शाम का वक़्त है। आकाश पर बदली छायी हुई है। लगता है पानी जोरों से बरसेगा। इकबाल अभी तक स्कूल से नहीं लौटा। मतीन और अलीमुन चिन्तित हैं। मतीन के पास कतान बिल्कुल ख़तम हो गयी है, मगर उल्ला तानीवाले ने उधारी पर कतान देने से इनकार कर दिया है, अतः वह चुपचाप हाथ-पर-हाथ धरे बैठा है। करघा कई दिन से ख़ामोश पड़ा है। अलीमुन रोज सुबह खाँसती-खाँसती नीचे उतरती है और करघे पर जमी धूल साफ करती है। मगर कोई फ़ायदा नहीं। जब कतान ही नहीं है तो करघा क्या अपने से साड़ी बिन देगा ?

नौकरीवालों की जब तनख्वाह बढ़ती है तो वे खुश होते हैं कि अब पहले से ज्यादा पैसे मिलेंगे, लेकिन जब वे बाज़ार की ओर निकलते है तो पता चलता है कि दाल अब पाँच रुपये किलो की जगह आठ रुपये किलो बिक रही है और उन बेचारों के सारे उत्साह पर पानी फिर जाता है। ठीक यही दशा इन दिनों यहाँ के बुनकरों की है। पहले तो इस बात के लिए जी-तोड़ कोशिशें की गयीं कि एक सोसायटी बन जाय तो सबों की स्थिति सुधर जाय लेकिन वह नहीं बन पायी। फिर पावरलूम की बाढ़ आयी, लेकिन जल्दी ही उसका जादू उतर गया। हाथ की कला के आगे मशीन की कला का चमत्कार नहीं चल सका। तब गिरस्तों को अपने कारीगरों की अहमियत फिर समझ में आयी, लेकिन अब ज्यादातर

कारीगरों ने कर्ज-वर्ज लेकर अपना कारोबार शुरू कर दिया था। हालांकि इस स्थिति ने इन्हें पहले से भी बदतर हालत में ला दिया है। पहले तो बस एक ही ग़म था कि गिरस्ता की तावेदारी करनी पड़ती थी, लेकिन यह तो चिन्ता नहीं रहती थी कि बतान कहाँ से आयेगी? उसका इन्तजाम तो गिरस्ता ही करता था, लेकिन अब तो कर्ज की कई-कई पर्तें जिस्म पर चढ़ती जा रही हैं और मुक्ति का कोई उपाय नजर नहीं आता। करघे का कर्ज अलग, कतान का कर्ज अलग, बनिये का कर्ज अलग, कपड़े-लत्ते का कर्ज अलग, बीमारी-ईमारी का कर्ज अलग···भला यह भी कोई जिन्दगी है। कितनी-कितनी मेहनत से साड़ी विनो, फिर उसे बाजार ले जाओ और वहाँ क्या मिलता है? चेक! जो महीने-भर बाद भुनता है। सोसायटी के जरिये तो बड़े-बड़ों की साड़ियाँ ही बिकती हैं, ग़रीबों को भला कौन पूछता है? मतीन ने सुना है कि अब तो कुछ फालतू की कटौतियाँ भी शुरू हो गयी हैं। गोलघर में भी और गिरस्ता लोगों की कोठियों में भी। आठ सौ की साड़ी पर पचीस रुपये, छः सौ की साड़ी पर बीस रुपये, चार सौ की साड़ी पर पन्द्रह रुपये···इसी दर से कोठीवाल हर साड़ी में से काट लेता है। क्यों काट लेता है, पता नहीं।

कड़कड़ कड़कड़ फड़ाक!

आकाश पर बिजली चमकती है और बादलों की गर्जना से वातावरण गूँज उठता है। अलीमुन भयभीत हो जाती है।

"इ एकवलवा हरमिया कहाँ रहि गोवा?"

वह भुनभुनाती है और अँगीठी में कोयला दहकाने लगती है। ठण्ड अचानक ही बढ़ गयी है।

बाहर बारिश शुरू हो जाती है।

तभी इक़बाल दौड़ता हुआ घर में घुसता है और ऊपर पहुँचकर अपने भीगे बालों को निचोड़ने लगता है। उसके कपड़े भी भीग गये हैं, लेकिन बदलने के लिए दूसरे कपड़े नहीं हैं। अतः वह बुशर्ट उतारकर अँगीठी के पास बैठ जाता है और उसे आग में सेंकने लगता है।

मतीन अपने बेटे के चेहरे को गौर से देखता है। उसे लगता है कि इकबाल अब बड़ा हो गया है। और इसके साथ ही वह यह भी सोचता है कि शायद यह लड़का कुछ सोचने लगा है अब। क्या सोचता है इकबाल?

"कहाँ रहि गये रहे एकवाल?"

वह धीरे-से पूछता है तो इकबाल थोड़ी देर तक चुप रहता है, फिर बताता है कि वह अपने दोस्त के घर चला गया था। दोस्त का नाम है एजलाक। उसके अब्बा अल्ताफ चचा के साथी हैं। छोहरा के प्राइमरी स्कूल में पढ़ाते हैं। नाम है उनका मोबीन अहमद अंसारी।···और वह जोश में भरकर बताता है कि उनके

वहाँ बहुत-सी किताबें देखीं उसने। और बहुत-से अखबार। उनमें बड़े अच्छे-अच्छे लेख थे। उन्हीं लेखों को वह पढ़ता रहा।

और बातों-ही-बातों में उसने यह भी बताया कि एखलाक के अब्बा उन दोनों से बहुत देर तक बतियाते रहे और तरह-तरह के सवाल पूछते रहे। फिर उसने अत्यन्त भोलेपन के साथ अपनी अम्माँ से एक बहुत ही विचित्र सवाल पूछा, "अम्माँ तोरे लगे एकठो बनारसी साड़ी नहिने?"

अलीमुन इस सवाल के लिए तैयार नहीं थी। वह दुखी हो गयी। दरअस्ल उसकी प्रबल इच्छा थी कि वह भी एक बार बनारसी साड़ी पहने, लेकिन यह इच्छा उसकी अभी तक पूरी नहीं हो सकी। इकबाल ने उसकी दुखती रग पर हाथ रख दिया था। वह रुआँसी हो गयी। मतीन सिर झुकाये चुपचाप जलते-बुझते कोयलों को देखता रहा।

बारिश अब रुक गयी थी और हवा तेज-तेज चलने लगी थी। मतीन उठा और अपना टूटा हुआ छाता उठाकर बाहर निकल गया। न जाने क्यों उसका दिल बेहद घबरा रहा था और वह रऊफ चचा के घर जाने के लिए व्याकुल हो रहा था।

इकबाल ने अपनी सेंकी हुई कमीज पहन ली और अंग्रेजी का ट्रांसलेशन करने के लिए बैठ गया। अलीमुन हाँडी-चूल्हे में व्यस्त हो गयी।

थोड़ी देर बाद बारिश फिर शुरू हो गयी।

17

हाजी अमीरुल्ला विशेसरगंज तक पैदल आये, फिर एक रिक्शे पर बैठ गये। चेतगंज।

सेठ गजाधर प्रसाद से मिलना बहुत जरूरी है। सुना है कामता प्रसाद भी इलेक्शन में खड़े हो रहे हैं—एम. पी. के लिए। इस बार शरफुद्दीन को एम. एल. ए. के लिए खड़ा करना है। अल्ला रहमान को समझायेंगे कि अब वे बहुत रह लिये एम. एल. ए., दूसरों को मौका दें। अपना क़ीमती वक्त 'क़ौमी एकता' में लगायें। खाली सिनेमा का एडवरटाइज छापने से काम नहीं चलेगा। कुछ दीन-इस्लाम की, हदीस-कुरान की बातें भी छापें।

हाजी अमीरुल्ला रिक्शे पर बैठे हुए थे और बहुत तेजी के साथ सोचते चले जा रहे थे। अगर अल्ताफुर्रहमान न माने तब ? अगर शरफुद्दीन को टिकट न मिला तब ? लेकिन हर समस्या का इलाज उनके पास मौजूद था। अल्ताफुर्रहमान अगर रास्ते पर नहीं आते तो देखते हैं बिरादरी का चन्दा कैसे मिलता है उन्हें ? फिर सैकडों वोट तो उनकी रिश्तेदारी में ही हैं सिर्फ ! देखते हैं कैसे जीतते हैं ? अगर शरफुद्दीन को टिकट न मिला तो वह निर्दल लड़ेगा। लेकिन लड़ेगा जरूर। चाहे कुछ हो जाय। घर का एक लड़का सरकार में भी होना चाहिए। देखें कामता प्रसाद क्या राय देते हैं ?

रिक्शा चौराहे पर रोकवा दिया उन्होंने और उतर पड़े। रिक्शेवाले को पैसे दिये और तेज-तेज क़दम रखते हुए गली में चल पड़े।

सेठ गजाधर प्रसाद गद्दी पर बैठे किसी को फोन कर रहे थे और कामता प्रसाद बहियाँ उलट-पलट रहे थे। आँगन में एक आदमी बड़ी मुस्तैदी के साथ भाँग घोट रहा था। थोड़ी-थोड़ी देर बाद वह सिल पर से बट्टा उठा-उठाकर देख रहा था लेकिन अभी बट्टे के साथ चिपककर सिल उठ नहीं रही थी। भाँग की घोटाई में कुछ कसर रह गयी थी। वह उस कसर को निकाल देना चाहता था। सेठ गजाधर प्रसाद स्वाद में ही पहचान जाते हैं कि भाँग को अच्छी तरह घोटा गया है या नहीं। 'विजया'(भाँग) के मर्म को आसानी के साथ समझ लेना सबके बस की बात नहीं है।

हाजी अमीरुल्ला चप्पल उतारकर गद्दी पर बैठ गये। कामता प्रसाद ने पान का चौघड़ा उनके सामने कर दिया और वे पान निकालकर उसमें सुर्ती भरने लगे।

"हलो ! हाँ, हम हई गजाधर। जयरामजी की। ऊ मिलल रहलँ ! का कहत रहलँ ? हम त कहली की···हाँ, ख़ैर कउनो बात नाँहीं, देखल जाई ! रक्खो ?"

और सेठ गजाधर प्रसाद ने फोन रख दिया। अब तक हाजी साहब का पान भली प्रकार घुल गया था और वे मगन थे।

कामता प्रसाद ने एक बही खोलते हुए सेठ गजाधर प्रसाद को संकेत में कुछ समझाया, फिर वे उठकर भीतर जाने लगे, लेकिन हाजी अमीरुल्ला ने उन्हें रोक लिया।

"त कामता खड़े होइएँ न ?"

"हाँ-हाँ, बस आपकी दुआ चाही।"

"हम सोची ते, सरफुद्दीनो खड़े हो जायँ एमेले खातिर। साथ-साथ लड़ै !"

"वाह ! इ बात भैल न काम की।"

और सेठ गजाधर प्रसाद इस प्रकार खुश हो गये मानो उन्हें माँगी मुराद मिल

गयी। अब हाजी अमीरुल्ला समर्थक अंसारियों के वोट भी उन्हें आसानी से मिल जायेंगे, वरना शहर उत्तरी में बड़ा संकट था उनके लिए।

कामता प्रसाद ने झट से चाय मँगायी, पान के कुछ चौघड़े और आये, और देर तक इलेक्शन की गुफ्तगू चलती रही।

हाजी साहब जब बाहर निकलकर चौराहे पर आये तो दोपहर हो चुकी थी। वे पैदल ही चल पड़े। चौराहे पर एक भी रिक्शा नहीं था। रास्ते में कोई मिला तो ले लेंगे। टिकट के लिए अब पूरा जोर लगा देना है।

18

एक आदमी सरैया की ओर से लुंगी पहने, पान दबाये, कान से ट्रांजिस्टर लगाये, भागा-भागा चला आ रहा था। लाट भैरव के पास कब्रस्तान में लतीफ उससे टकरा गया। वह ताड़ी की तलाश में निकला था। उस आदमी को देखते ही लतिफवा को याद आया कि द इण्डिया का पाकिस्तान से क्रिकेट टेस्ट चल रहा है। उसकी दुनिया में ये दो चीजें अभी पुरानी रंगीनियों के साथ ही मौजूद थी—ताड़ी और कमेण्ट्री। उसे इस बात में बेहद रुचि थी कि पाकिस्तान के कितने रन हुए और भारत के कितने खिलाड़ी आउट हुए।

"कै रन भोवा मियाँ?" लतिफवा उस आदमी के सामने खड़ा हो गया। उस आदमी ने हाथ के इशारे से बताया कि कुछ नहीं मालूम।

"गेंगसरकरवा आउट भोवा के नाँही?"

"गवसकरवा बहुत पहिलवें आउट हो गोवा!"

"वाली के फेंकते म्याँ? जहिर अब्बसवा क खेल कइसा है?"

"कुछ समझ में नाँहीं अउते म्याँ!"

उसने अपनी लाचारी प्रकट की तो लतिफवा ने उसके हाथ से ट्रांजिस्टर ले लिया और अपने कान से लगा लिया, लेकिन कमेण्ट्री तो अंग्रेजी में आ रही थी, अतः वह भी ताजा हाल जान सकने में लाचार हो गया। लेकिन तालियों की गड़गड़ाहट से उसने यह अनुमान जरूर लगा लिया कि खेल जमा हुआ है और बोला—

"पाकिस्तान जिनिए म्याँ! पिच इनके मन माफिक है।"

"हमरा खियाल है कि मैच ड्रा हो जइए।"

"सर्त बदियो ! देख लियो पाकिस्तान जरूर से जितिए ! अउर काफी रन से !"

और लतिफवा आश्वस्त होकर सरैया की ओर चल पड़ा। वह आदमी गोल गड्‌ढा की ओर जाने के लिए सड़क की दाहिनी ओर मुड़ गया।

ये लोग न पिच का अर्थ समझते हैं न ड्रा का, लेकिन ये शब्द इन्हें रट-से गये हैं। यही नहीं, मिड ऑन और मिड ऑफ जैसे शब्दों का उच्चारण भी ये उसी विश्वास के साथ करते हैं, जैसे क्रिकेट इनका पुश्तैनी खेल हो, जबकि इनके लौंडे-लपाडियों ने जो बल्ला पकड़ा है वह या तो बाँस का है या सन्तरे की पेटी का कोई टुकड़ा। लेकिन इन्हें यहाँ तक याद है कि किस टेस्ट में किस खिलाड़ी ने कितने रन बनाये थे और किसने किसको आउट किया था। वेस्टइण्डीज और आस्ट्रेलिया के खिलाड़ियों के नाम इन्हें जबानी याद हैं, बल्कि रेडियो-ट्रांजिस्टर में कमेण्ट्री सुनकर ही ये इस बात का अनुमान लगा लेते हैं कि इन देशों का कौन खिलाड़ी भविष्य में क्या कर सकता है ?

लतीफ जब घर पहुँचा तो अख्तरुनिया अपने घर जा चुकी थी। खाना पकाकर उसने चूली-दुआर में ढकना से ढाँक दिया था और अपने छोटे भाई-बहिन को सहेज-कर चली गयी थी कि अब्बा को खाना दे देना। बच्चे बहुत देर तक बाप का इन्तजार करते रहे थे, फिर वे गुडी-मुड़ी होकर सो गये थे। लतिफवा सरैया से लौटकर गोलगड्‌ढा में बैठ गया था।

अब तक उसका नशा थोड़ा कम हो गया था और न जाने क्यों आज उसे कमरुन की याद आ रही थी। वैसे तो कभी-कभी वह रेहाना को भी याद कर लिया करता था, लेकिन कमरुन की याद का आना उसके लिए बेहद कष्टदायक होता था। बिस्तर में दुबके हुए मासूम बच्चों का चेहरा देखकर उसे कमरुन की याद और भी जोरों से सताने लगी। जब से इस इलाक़े में आकर वह रहने लगी है, कभी-कभी बच्चे उससे मिल आते हैं, लेकिन डरते-डरते। एकाध बार उसने भी कोशिश की कि शरिफवा से मिलने के बहाने उधर जाय, पर यह मुमकिन नहीं हो सका। उसका अपराध भाव उस पर बुरी तरह छाने लगता था।

खाना खाने की इच्छा नहीं हुई उसे और वह दरवाजा उढ़काकर बाहर निकल आया। थोड़ी देर तक गली में खड़ा-खड़ा वह कुछ तय करता रहा, फिर पान की दूकान की ओर निकल गया।

इधर इस मुहल्ले में एक बिरादरीवाले लड़के ने पान की दूकान खोल ली है। वह 'किक्की पानवाले' के नाम से मशहूर है। मोटा-तगड़ा, काला-कलूटा जिस्म, धारीदार बनियान पहने वह दूकान पर बैठा रहता है और कमेण्ट्री सुनता रहता

है। अपनी दूकान में उसने मक्का-मदीना, अजमेर शरीफ़, कुरान पढ़कर दुआ माँगती हुई खूबसूरत लड़की, दुर्राक़ घोड़ा आदि कई तरह के कैलेण्डर टाँग रखे हैं और सिगरेट पीनेवालों के लिए एक ओर एक जलती हुई डोरी लटका दी है।

इस वक़्त उनकी दूकान में बड़ी भीड़ है। किक्की पान लगाये जा रहा है और बड़बड़ाये जा रहा है। लोग खूब हँसी-ठट्ठा कर रहे हैं। लतिफवा समझ गया कि पाकिस्तान जीत गया है। जब भी पाकिस्तान जीतता है, यह किक्की मुफ्त पान बाँटने लगता है और हार की खबर सुनते ही दूकान बन्द कर देता है।

लतिफवा ने भी पाकिस्तानी खिलाड़ियों की विजय के उपलक्ष्य में किक्की का एक मुफ्त पान हस्तगत किया और वहाँ से धीरे-धीरे वापस लौट पड़ा—घर की ओर।

19

इस बीच एक ऐसी घटना घट गयी जिस पर स्वयं हाजी अमीरुल्ला को भी विश्वास नहीं हुआ। बी.एच.यू. के एक छात्रनेता का मर्डर हो गया और शरफुद्दीन गिरफ्तार कर लिया गया। पूरी बिरादरी में इस समाचार की बड़ी चर्चा रही, लेकिन हाजी मतिउल्ला और हाजी अमीरुल्ला के लिहाज में सारी चर्चाएँ चन्द दिनों के बाद ही दब गयीं। वक़ील हाजी हबीबुल्ला, उन लोगों ने पानी की तरह रुपया बहाकर शरफुद्दीन को बेदाग़ छुड़ा लिया।

मौसम बदलने के कारण ही शायद शरफुद्दीन को जुकाम हो गया था। उसे बार-बार छींकें आ रही थीं और नाक से पानी बह रहा था। चेहरा लाल हो गया था। लेकिन कामता प्रसाद से तय था कि वह आज सुबह सवेरे दशाश्वमेध घाट पर उनसे जरूर मिलेगा। इलेक्शन को लेकर कुछ गम्भीर चर्चा करनी थी उन्हें। सो, वह सूर्योदय से पहले ही उठा और कपड़े पहनकर बाहर आ गया।

मैदागिन पर कई रिक्शेवाले खड़े थे और दो हिप्पियों को अपनी-अपनी ओर आकर्षित कर रहे थे। 'कम आन, कम आन', 'ओनली फोर रुपीज', 'ओन ली थ्री रुपीज'-जैसे अंग्रेजी शब्दों का भोंडा उच्चारण वे किये जा रहे थे और हिप्पियों को चीलों के समान घेरे हुए थे।

शरफुद्दीन को दशाश्वमेध तक ले चलने के लिए कोई भी रिक्शावाला तैयार नहीं हुआ, अतः वह पैदल ही चल पड़ा।

इधर कुछ बरसों से इस शहर में हिप्पियों की आमद बहुत तेज हो गयी है। पैन्ट में पैबन्द लगाये, नंगे बदन या कोई सूती कपड़ा ओढ़े, बाल बढ़ाये, गाँजे का दम लगाते हुए और रास्ता चलते अपनी संगिनी से प्यार करते हुए ये हिप्पी पूरे शहर में बिखर गये हैं। 'ये हमारे मुल्क को फिर से गुलाम बनाने की साजिश तो नहीं रच रहे हैं?' शरफुद्दीन सोचता जा रहा है और आते-जाते रिक्शेवालों को देखे जा रहा है। शायद कोई खाली रिक्शा नजर आये, लेकिन हर रिक्शे पर कोई-न-कोई बैठा हुआ है। सड़क पर पैदल चलनेवाले कम ही लोग हैं। ज्यादा भीड़-भाड़ नहीं है। सिर्फ कुछ मेहतर इधर-उधर झाड़ू लगाते हुए दिखायी पड़ जाते हैं। कभी-कभी हिप्पियों का कोई पैदल जोड़ा भी झटके के साथ बगल से गुजर जाता है। शरफुद्दीन चौक में पहुँचकर विसनाथ गली की ओर मुड़ जाता है। फिर गली-गली चलकर वह दशाश्वमेध पहुँच जाता है।

घाट पर ज्यादा भीड़ नहीं है। चन्द धार्मिक किस्म की स्त्रियाँ नहा रही हैं, जिन्हें चन्द शोहदे किस्म के लोग देख रहे हैं। कुछ मर्द भी नहा रहे हैं और जलार्पण कर रहे हैं। घाट-किनारे के मन्दिरों में रामचरित मानस और कीर्तन के कैसेट बज रहे हैं। नाववाले मल्लाह यहाँ भी हिप्पियों के पीछे पड़े हुए हैं। 'कम आन', 'ओनली टेन रुपीज', 'वोटिंग' आदि जुमलों के बनारसी उच्चारण यहाँ भी सुनायी पड़ रहे हैं। घाट की सीढ़ियों पर कुछ भिखारी कटोरे लिये खड़े हैं और गंगा मैया की जय-जयकार कर रहे हैं। एक ओर एक धर्मशाले के बरामदे में चन्द लोग सोये हुए हैं, जिनमें दो लड़कियाँ भी हैं। एक लगभग पाँच वर्ष की और दूसरी लगभग चौदह वर्ष की। पहली लड़की ने एक गन्दा-सा फ्रॉक पहन रखा है और दूसरी लड़की के शरीर पर एक फटी-सी धोती लिपटी हुई है। उसकी धोती अस्त-व्यस्त हो गयी है और चित लेटी उस लड़की का एक तन्हा स्तन कबूतर के बच्चे की तरह झाँक रहा है। सामने गंगा के उस पार बबूल के दरख्तों से सूरज भगवान झाँक रहे हैं।

इस नये जमाने की सुबहे-बनारस यही है!

रामता प्रसाद जरा देर से पहुँचे। आते ही उन्होंने शरफुद्दीन को साथ लिया और ऊपर आकर एक हलवाई की दूकान में घुस गये। वहाँ उन्होंने ताजी-ताजी जलेबी दही के साथ खायी, फिर चने की घुघनी के साथ चार-चार पूरियाँ जमायीं और फिर बाहर आकर एक गली में प्रवेश कर गये। वहाँ एक बंगाली बाबू के मकान में वे बेझिझक घुस गये। बंगाली बाबू 'दादा' कहे जाते थे और शक्ल से ही बड़े अनुभवी लग रहे थे। इन्हें देखते ही वे खुश हो गये और अपनी निखरी चौकी पर

उन्हें बैठाकर खुद खड़े हो गये। उन्होंने खड़े-खड़े ही एक संक्षिप्त-सा भाषण दिया, जिसका लुब्बो-लुबाब यह था कि अगर चुनाव जीतना है तो कुछ करना होगा। 'कुछ' का मतलब ऐसा कुछ जिससे जनता का विश्वास बटोरा जा सके। और आगे की बातें फिर संकेत-भाषा में हुईं। मगर उन बातों के अर्थ अस्पष्ट नहीं रहे। चुनाव के दोनों प्रत्याशी जनता का विश्वास बटोरने के लिए राजी हो गये और दादा के मकान से बाहर निकल आये।

दशाश्वमेध से गोदौलिया तक पैदल चलकर ये लोग गामा[1] की दूकान पर पहुँचे और एक-एक मघई पान जमाकर एक रिक्शे पर बैठ गये। रास्ते में कामता प्रसाद ने नस्फुद्दीन से कहा—

"तू त जेल जाय के पूरमपूर नेता हो गइल!"

20

मतीन बगैर नाश्ता किये ही करघे पर बैठ गया है। आज उसे किसी भी तरह साड़ी पूरी कर देनी है। सेठ कामता प्रसाद ने कहा है कि इस बार नक़द पैसे मिल जायेंगे।

मतीन के सामने ज़मीन पर भोला बैठा हुआ है और अत्यन्त तल्लीन होकर उसकी बिनकारी देख रहा है।

मतीन की उँगलियाँ जब दफ्तों पर चलती हैं और थोड़ी देर की खटापट के बाद जब तानी पर एक सुन्दर-सा फूल खिल उठता है तो लगता है कि इस ऊबड़-खाबड़ ढाँचे में कोई-न-कोई जादू छिपकर बैठा हुआ है।

पिछली बार भोला ने ढेर सारे सवाल किये थे मतीन से और उसने उनका उत्तर इस प्रकार दिया था कि सारी बातें लगभग दार्शनिक-सी हो गयी थीं। इस बार न जाने क्यों उसने कोई भी सवाल नहीं किया है। वह चुपचाप बैठा हुआ है और मतीन की उँगलियों को देख रहा है। उँगलियाँ धागों पर फूल खिलाने में व्यस्त हैं। एक नीला फूल खिल चुका है, दूसरा लाल रंग का फूल खिलने की तैयारी में है।

अचानक दरवाज़े में एक छाया झाँकती है और ओझल हो जाती है।

---

1. बनारस के गोदौलिया बाज़ार में पान की प्रसिद्ध दूकान।

मतीन के भीतर धुक-धुक होने लगती है। न जाने क्या बात है कि नजबुनिया का एहसास मात्र ही उसे विचलित कर देता है।

आज वह रात-भर यहीं रही है। कल शाम को ही अलीमुन की तबीयत ज्यादा बिगड़ गयी थी। उस वक्त नजबुनिया अपनी अम्माँ के साथ यहाँ आयी हुई थी। अम्माँ ने उससे कहा था कि वह यहीं रुक जाय और अलीमुन की देख-भाल करे। मतीन तथा इकबाल के लिए खाना-वाना पका दे। और नजबुनिया रुक गयी थी। लगता है वही इस वक्त नाश्ता लेकर नीचे उतरी है। भोला की वजह से सामने नहीं आ रही है। पर्दा जो है। मतीन इस पर्दे को अपने बचपन से देखता आ रहा है। उसकी माँ तो कब्र के मुर्दे की तरह खुद को गोल-मटोल छींट के नकाब में बन्द करके चला करती थी। अलीमुन भी पर्दा करती है और यह नजबुनिया भी। उसे हँसी आ जाती है।

"अरे आ जा, कोई नहिंने, अपने भोला हैं।"

वह एक झटके में अपनी पूरी परम्परा को तोड़ देना चाहता है, लेकिन नजबुनिया नहीं आती।

"के हौ? भउजी हइन का?" भोला पूछता है तो मतीन लजा जाता है। उधर दीवार की आड़ में नजबुनिया को पसीना आ जाता है। उसके गाल लाल हो जाते हैं, वह सीढ़ियाँ चढ़कर ऊपर चली जाती है।

मतीन करघे से उठ जाता है। भोला भी उठ जाता है।

"जा नास्ता-वास्ता कइ ला, फिर आइव।" वह कहता है और बाहर निकल जाता है।

मतीन ऊपर चला जाता है।

अलीमुन खटिया पर बेसुध होकर पड़ी है। कल उसे खून की कई उल्टियाँ हुई हैं।

इकबाल स्कूल गया है।

मतीन एक निखरी चारपाई पर बैठ जाता है। नजबुनिया नाश्ता लाकर चारपाई पर रखने के लिए झुकती है तो उसका पूरा जिस्म मतीन के सामने झुक जाता है। मतीन एकटक उसे देखता है और थोड़ी देर तक देखता रहता है। नजबुनिया चली जाती है।

उससे नाश्ता नहीं किया जाता। वह जल्दी-जल्दी दो-चार कौर निगलकर प्लेट नीचे सरका देता है और चारपाई पर लेट जाता है। गुमसुम, उदास और पज़मुर्दा।

अलीमुन आँखें खोलकर उसे देखती है।

"का भोवा?" वह अपनी कमज़ोर आवाज़ में मतीन से एक छोटा-सा सवाल करती है और उसकी ओर करवट बदल लेती है।

"कुछ नाहीं, सिर पिराते !"

"त नजबुनिया से दबवाये लेव। कहि देव तईंसा तेल धरि देय !"

मतीन को यह खराब लगता है। वह महसूस करता है कि अलीमुन उस पर व्यंग्य कर रही है और वह ख़ामोश रहता है।

लेकिन नजबुनिया वाकई कटोरी में कड़वा तेल लेकर वहाँ पहुँच जाती है। उसने अलीमुन की बातें सुन ली हैं शायद। वह मतीन के सिरहाने बैठ जाती है और अपनी पुष्ट उँगलियाँ मतीन के पक चले बालों में फँसा देती है।

"तूं नजबुनिया से ब्याह कर लेव अब। हमरा कउन ठिकाना !"

अलीमुन अचानक ही यह बात कहती है और नजबुनिया उठकर चूली-दुआर में भाग जाती है।

मतीन गुमसुम पड़ा रहता है।

थोड़ी देर तक कमरे में सन्नाटा रहता है, फिर अलीमुन इशारे से मतीन को अपने पास बुलाती है।

"बुरा न मानेव। हम ठीक कहीला। हमरा कउन ठिकाना, नजबुनिया तुम्हें बहुत चाहेती, तूं एसे बियाह कर लेव। हम्मैं कउनो एतराज नहिने। हम ख़ुद सच्ची से कहि देवा। नजबुनियो से। हमरा त अब चल-चलाव है।"

और अलीमुन की आँखें भीग जाती हैं। मतीन का गला बुरी तरह फँसने लगता है और वह भोकार फोड़कर रोने लगता है। वह अपना सिर अलीमुन की छाती में धँसा देता है।

अलीमुन को अचानक फिर खाँसी आ जाती है। खाँसी के साथ खून। नजबुनिया दरवाजे पर गुमसुम खड़ी है। उसके चेहरे पर कुछ नहीं है। वह धीरे-धीरे चलकर पलँग तक आती है और मतीन को अलग करके अलीमुन का खून साफ करने में व्यस्त हो जाती है।

मतीन न अलीमुन को देखता न नजबुनिया को, वह घुटनों में सिर दिये जमीन पर चुपचाप, किसी बीमार बन्दर की तरह उकड़ूँ बैठा रहता है।

21

गुन्ज हूब रहा है। गोदौलिया पर बड़ी भीड़ है। इधर गामा पानवाले की दूकान पर और उधर मउमुहानी के रेस्टोरेण्ट में इलाके के अनेक नौजवान जुटे हैं। इनमें

पेहरधारी लोकल लीडर भी हैं और मदनपुरा के बंगाली भी। बस शरफुद्दीन और कामता प्रसाद भी इस ओर आते थे, पर आज वे नहीं हैं। चउमुहानीवाले रेस्टोरेण्ट में तड़ित बनर्जी नाम का लम्बा-तड़ंगा स्लिम बॉडीवाला, अपनी भूरी मूँछों और कंजी आँखों से सबको आकर्षित करनेवाला एक बंगाली युवक बंगला मिश्रित हिन्दी में कोई भाषण झाड़ रहा है, जिसे सारे उपस्थित जन ध्यानपूर्वक सुन रहे हैं। तड़ित बनर्जी के उत्तेजक भाषण पर लोग मुग्ध हैं।

दइयान दा और मन्नान दा बाहर से ही तड़ित बनर्जी का भाषण सुनते हैं और चले जाते हैं।

"देख्यो म्याँ, हम ठीक कहे रहेन के नाँहीं?"

"हाँ मियाँ!"

"हमसे कहे अलईपुरवाले शरफुद्दीन नेता और चेतगंजवाले कामता नेता बता दिये रहेन कि एना पारी कुछ-न-कुछ गड़बड़ जरूर होइए। सुन लियो न इ तकरीर?"

"हाँ मियाँ, ठीक कहवे थो। बिल्कुल जहरबुझी तकरीर बोलत रहा इ बनरजिया!"

"चलो, हाजी चूतर किंमें चला जाय। उन्हें भी बतावा जाय।"

"नाँहीं मियाँ. मैं त घर जावे थों।"

मन्नान दा टरकाना चाह रहे थे, पर दइयान दा उन्हें जबर्दस्ती खींचकर हाजी चूतर के यहाँ ले गये। आखिर कुछ-न-कुछ तो सोचना ही होगा।

दशहरा नजदीक आ रहा है। बनारस शहर में बड़ी चहल-पहल है। मुहल्ले-मुहल्ले में रामलीलाएँ हो रही हैं। रामनगर की रामलीला तो बहुत पहले ही शुरू हो गयी है। वहाँ तो इकतिस दिन तक लीला होती है। राजा साहब खुद कराते हैं। फिर इ वाले राजा साहब तो और भी दिलचस्पी लेते हैं। पढ़े-लिखे हैं न, इसीलिए! संस्कृत में पी. एच. डी. हैं। अपनी पुरानी परम्परा निबाहने के लिए अब भी वे 'भरत मिलाप' के रोज हाथी पर सवार होकर नगर में निकलते हैं और बनारस की जनता को अपना दर्शन देते हैं। मैदागिन पर तो भीड़ लग जाती है उस रोज। एकदम जन-समुद्र।

इधर मदनपुरा के इलाके में दुर्गापूजा की तैयारी जोरों पर चल रही है। बंगाली टोला में जगह-जगह दुर्गा की प्रतिमाएँ बन रही हैं। मिट्टी की खूबसूरत स्त्रियाँ। चतुर्भुजा। असुरों का दमन करती हुई। लेकिन इन माटी की देवियों को यह भला कहाँ पता है कि इनके भक्तों में भी अनेक जन अब असुर सम्प्रदाय में दीक्षित हो गये हैं।

यहाँ मदनपुरा में दो गलियाँ ऐसी हैं जिनको लेकर बड़ा विवाद है। एक गली ऐसी है जिसमें मुसलमानों की आबादी बहुत ज्यादा है और हिन्दू चाहते हैं कि दुर्गा की प्रतिमा इसी गली से होकर गुजरे। मुसलमान नहीं चाहते कि ऐसा हो, वरना उनका ईमान शायद खतरे में पड़ जायेगा। दूसरी गली ऐसी है जहाँ हिन्दू आबादी ज्यादा है और उस गली में मुसलमानों ने एक इमाम चौक बना रखा है। वे वहाँ ताजिया बैठाते हैं और हिन्दू नहीं चाहते कि ऐसा हो, वरना उनकी आस्था पर शायद चोट पहुँचेगी।

इस तरह हर साल दशहरे और मुहर्रम के अवसर पर इस शहर के प्रशासन की वार्षिक परीक्षा हो जाती है। अगर परीक्षा में वह सफल रहा तो कोई बात नहीं और अगर असफल हो गया तो अधिकारियों का ट्रांसफर।

जुमा का दिन है। मस्जिद में बिरादरीवालों का ताँता लगा हुआ है। सफेद लुंगियाँ, सफेद कुर्ते और सफेद टोपियाँ। जिधर देखिए, सफेदी-ही-सफेदी। सिर्फ़ एक व्यक्ति चारखाने की लुंगी पहने हुए है, लेकिन वह मदनपुरिया नहीं है। हाजी अमीरुल्ला इधर आये थे अपने बिजनेस के सिलसिले में, नमाज का वक़्त हो गया तो मस्जिद में चले आये।

खुत्बा खत्म होता है और जमात खड़ी हो जाती है। पेश इमाम पढ़ता है—

'अलहमदुलिल्लाहे रब्बिल आलेमीन।
अर्रहमानिर्रहीम।
मालिकेयौमिद्दीन।
इय्याक ना अबुदो व इय्याकना अस्तईन।
एहदेनस्सेरातल मुस्तकीम व सेरातल्लजीन।
अन अम त अलैहिम
गैरिल मग़ दूबे, अलैहिम वल द्वाऽऽलीन!'

'हम उस अल्लाह की तारीफ करते हैं जो सारे आलम का मालिक है। जो रहम और मेहरबानी करनेवाला है। जो फैसले के दिन का मालिक है। या अल्लाह! हम तेरी ही इबादत करते हैं और तुझी से मदद चाहते हैं। तू हमें सच्चा रास्ता दिखा, जिस पर चलनेवालों से तू खुश होता है। ऐसा रास्ता नहीं, जिस पर चलनेवालों पर तेरा गजब होता है···'

दो रकात फ़र्ज नमाज के बाद सुन्नत और नफिल की अन्य रकातें पढ़ी जाती हैं। फिर पेश इमाम एक छोटी-सी तकरीर करते हैं, जिसका लुब्बो-लुबाब यह होता है कि दुरगा की मूरत उम्मते-रसूलिया की गली में नहीं आनी चाहिए!

आमीन!

हाजी अमीरुल्ला नमाज पढ़कर बाहर निकलते हैं और गोदौलिया तक पैदल आकर एक रिक्शे पर सवार हो जाते हैं।

दुर्गापूजा !

आगे-आगे दुर्गा की प्रतिमा और पीछे-पीछे शोर मचाती भीड़। एक ऐसा शोर जिसका अध्यात्म से कोई मतलब नहीं। ठीक इसी तरह का शोर उस वक्त भी होता है जब ताजिए का जुलूस निकलता है। धर्म दोनों ही अवसरों पर सड़कछाप हो जाता है। वह सरेआम सिर के बल खड़ा हो जाता है। लेकिन फिर भी लोग कहते हैं, यह सत्य है और सिर्फ यही सत्य है। इस सत्य के लिए लोग कट मरते हैं!

दुर्गा की प्रतिमा जैसे ही अवांछित गली में प्रवेश करती है, एक छत से ईंट का एक नन्हा-सा टुकड़ा इस तरह फेंका जाता है कि वह ठीक दुर्गा के सिर पर आकर गिरता है और शोर मचाती भीड़ का ध्यान भंग हो जाता है। सबसे आगे चल रहा गद्दरधारी, 'दादा' नाम से मशहूर—तड़ित बनर्जी भीड़ को एक संकेत करता है और भीड़ रुक जाती है। भीड़ में से दो मुच्छड़धारी लोग बाहर निकलते हैं और भद्दी-भद्दी गालियों से पूरी गली गूँज उठती है।

अचानक छत से बारिश होने लगती है। पत्थरों, ईंट के टुकड़ों और खाली बोतलों की बारिश ! फिर पिसा हुआ मिर्चा और तेजाब ! भगदड़ मच जाती है।

थोड़ी ही देर में जवाबी कार्रवाई शुरू हो जाती है। छुरे निकल आते हैं। बन्दूकें निकल आती हैं। कई घरों में, कई दूकानों में आग लगा दी जाती है। सड़क पर जो भी दिखायी देता है, मार डाला जाता है। खून-ही-खून ! आग-ही-आग ! मनुष्य के भीतर छिपा हुआ असुर बाहर आ जाता है।

काफी देर बाद पुलिस आती है, जैसा कि उसका सिद्धान्त है। मौके पर पहुँचकर थोड़ी देर तक पुलिस खामोश खड़ी रहती है। फिर हथेली पर खैनी ठोकती हुई कहती है, 'ठीक है, और मारो सालों को !' और खुद भी उस नेक काम में जुट जाती है।

पूरा शहर फनफना उठता है। इतना कह देना ही पर्याप्त है कि हिन्दुओं और मुसलमानों में झगड़ा हो गया है। इस मुल्क में अब हिन्दुओं और मुसलमानों के झगड़े का सीधा अर्थ है—दंगा !

सो, बनारस शहर में दंगा हो जाता है।

दालमण्डी में जो हिन्दू खरीददारी कर रहे थे वे छुरे और छुरों के शिकार हो गये। लड़कियों और जवान औरतों पर जिस्मानी हमला किया गया। बँटवारे का बदला भला और कैसे लिया जा सकता है ?

एक सिनेमाहॉल में फिल्म चल रही थी 'गरीब निवाज'। जाहिर है कि उस हाल में बुर्कापोश औरतें ठसाठस भरी हुई थीं। इस मुल्क का जो फिल्म उद्योग है वह आवारों और स्त्रियों के बल पर ही तो चल रहा है, इसीलिए कभी वह हिन्दू स्त्रियों का भावनात्मक लाभ लेने के लिए 'सन्तोषी माता' जैसी फिल्म बना डालता है तो कभी दबी-घुटी, दुखी-उदास मुस्लिम औरतों को 'गरीब निवाज' जैसी फिल्म दिखाकर यह आश्वासन देता है कि घबराओ नहीं, बाबा के दरबार में जाओ! जैसे उस हीरोइन के दिन फिरे हैं वैसे ही तुम्हारे दिन भी फिरेंगे!

लेकिन उस रोज फिल्महॉल के भीतर बड़ी बेरहमी के साथ औरतों को बेइज्जत किया गया और उनमें से कइयों को मार डाला गया।

देखते-ही-देखते मदनपुरा और रेवड़ी तालाब से लेकर चौक होती हुई यह आग जैतपुरा, छोहरा, अलईपुरा और उधर चौहट्टा लालखाँ तक पहुँच गयी।

कलक्टर बेचारा क्या करता, उसने तड़ से कर्फ्यू लगा दिया।

उधर पठानी टोला, छित्तनपुरा, चौहट्टा, कोयला बाजार, आलमपुरा, हनुमान फाटक से लेकर छोहरा, बड़ी बाजार, जैतपुरा, काजी सादुल्लापुरा, बाकराबाद, बकरिया कुण्ड और सरैया तक, उधर मदनपुरा, रेवड़ी तालाब से लेकर बजरडीहा तक कर्फ्यू। दंगाइयों को देखते ही गोली मार देने का आदेश। लोग अपने-अपने घरों में बन्द हैं—साँप के भय से दरबों में छिपी हुई मुर्गियों की तरह। सड़कों पर सिर्फ पुलिस और पी. ए. सी. वालों के बूटों की आवाज ही सुनायी पड़ती है। बाकी कुछ नहीं। अपनी खिड़की से कोई झाँक तक नहीं सकता।

किसी-किसी छत पर पुलिसवालों ने अपना पहरा बिठा रखा है। जब वे आते हैं, घर की औरतें इधर-उधर छिप जाती हैं और वे सीढ़ियाँ चढ़कर छतों पर पहुँच जाते हैं। जिनकी छतों पर पुलिसवाले पहरा दे रहे होते हैं, वे पुलिस के भय से ही रात-भर नहीं सो पाते, क्योंकि उन्होंने सुन रखा है कि दाल मण्डी में पुलिस और पी. ए. सी. वालों ने मिलकर औरतों की बेइज्जती की है और दूकानें लूटी हैं।

बशीर के घर में नल नहीं है। उनके बच्चे बाहर से पानी लाते थे। पर कर्फ्यू में इसका सवाल ही नहीं उठता। बाहर नगर महापालिका का जो नल लगा है उसकी टोंटी टूट गयी है और हमेशा उसमें पानी गिरा करता है। जब से कर्फ्यू लगा है, काफी पानी सड़क पर फैल चुका है, लेकिन उसे कोई भर नहीं सकता। बशीर की बीबी अपनी मकान-मालकिन से आटे के साथ-साथ एक भगोना पानी भी माँग लाती हैं और बच्चों के लिए खाना पकाती हैं। सारे मजदूर बुनकर बेकार हो गये

है। जो लोग मजूरी पर बिनते हैं वे अपने गिरस्तों के यहाँ जा नहीं पा रहे हैं। यानी पर बिननेवाले भी गिरस्त के यहाँ साड़ी नहीं पहुँचा पा रहे हैं। यही हाल किस्तों पर बिननेवालों का भी है। रेजा पूरा हो चुका है, पर बाहर जाने का सवाल ही नहीं उठता। मतीन की साड़ी जिस दिन पूरी हुई उसी दिन दंगा हो गया। वह भी हाथ-पर-हाथ रखकर बैठा है। सभी बुनकर परेशान हैं। अधिकांश घरों में नल नहीं हैं, आटा खत्म हो चुका है, भूखों मरने की नौबत आ गयी है, लेकिन कर्फ्यू में कोई छूट नहीं।

शरफुद्दीन नेता और अल्ताफुर्रहमान एडीटर को पास मिला हुआ है। वे कभी-कभी घूम जाते हैं और लोगों को दिलासा दे जाते हैं। एक रोज कामता नेता भी इधर आये थे। शरफुद्दीन नेता और कामता नेता ने मिलकर कुछ मुहल्लों में गल्ला भी बँटवाया है। पिछले दिनों दंगे के सिलसिले में जो गिरफ्तारियाँ हुई थीं, उनमें से कुछ लोगों को उन्होंने रिहा भी कराया है। शरफुद्दीन नेता तो अब घर-घर जाकर हाल खबर ले रहे हैं। साथ में हनिस्वा को भी लिये हुए हैं। रऊफ चचा, लतीफ, बशीर, अल्ताफ, जलील, कल्लू आदि सबके घरों में उन्होंने रसद पहुँचायी है। मतीन के यहाँ भी एक झोला आटा भिजवाया था, लेकिन उसने वापस कर दिया।

अल्ताफुर्रहमान भी लोगों की मदद करना चाह रहे हैं, पर शरफुद्दीन की मदद बोल पड़ी जा रही है। अल्ताफुर्रहमान को यह अच्छा नहीं लगता। आखिर उन्हें भी तो इलेक्शन लड़ना है। अपनी मार्केट-वैल्यू बनाने का यही तो एक मौका है। मगर अब चूके तो फिर कहीं के न रहेंगे। अतः वे एक दूसरा तरीका अपनाते हैं। लोगों की मदद की चिन्ता छोड़कर वे अपना सारा दिमाग 'कौमी एकता' का एडीटोरियल लिखने में लगा देते हैं। वैसे भी इन दिनों पूरा अखबार दंगे की गर्मा-गर्म खबरों से भरा रहता है। एडीटोरियल में वे ऐसे-ऐसे मुद्दों को उठाते हैं कि सारा पाठक समुदाय गद्गद हो जाता है। कभी इस्लाम का वसीला दिया जाता है तो कभी जेहाद की अहमियत समझायी जाती है। कभी जनसंघ और आर. एस. एस. को बेनकाब किया जाता है तो कभी मुसलमानों में जातीय उत्साह भरा जाता है। गर्ज कि 'कौमी एकता' की धूम मच जाती है। लोग इन्तजार करते हैं कि हॉकर 'कौमी एकता' का ताजा अंक दरवाजे की दरार में डाले और वे उस पर टूट पड़ें।

लेकिन शरफुद्दीन नेता भी कम नहीं है। वह कामता नेता को लेकर दूने जोश से काम करने लगता है और हिन्दू मुहल्लों में अकेले जाकर उन्हें दिलासा देता है। सुनने में आया है कि इस कठिन घड़ी में कल्लू गुण्डा भी अपनी जीप में कुछ इलाकों का दौरा कर रहा है। लोग कल्लू गुण्डा का नाम उसी आदर के साथ लेते हैं जैसे किसी जमाने में सुल्ताना डाकू का लिया जाता था।

जनता की परेशानियों पर ध्यान देते हुए कलक्टर ने एक रोज कर्फ्यू में दो घण्टे की ढील दे दी। दोपहर बारह बजे से दो बजे तक। और जैसे ही बारह बजा, लोग इस तरह अपने-अपने घरों से निकलकर सड़कों पर चलने-फिरने लगे जैसे पिंजरों से आजाद कर दी गयी चिड़ियां पेड़ों पर फुदक रही हों। चउमुहानी पर की दूकानें फटाफट खुल गयीं और खरीददारी शुरू हो गयी। सब्जी की दूकान में हफ्ते-भर की सड़ी हुई सब्जी दूने दाम में बिक रही थी और लोग थे कि सड़े हुए आलुओं और सूखे हुए कद्दुओं पर भुक्खड़ों की तरह टूटे पड़ रहे थे।

जिन घरों में नल नहीं थे, उनके बच्चे छोटी-छोटी पतीलियों और लोटों तक में पानी भरकर रख लेना चाह रहे थे और नगर महापालिका के नलों पर कौवारोर मचा हुआ था।

इकबाल अपने एक दोस्त की सायकिल लेकर गोलघर चला गया था। शायद साड़ी का दाम नकद मिल जाय। लेकिन अभी वह साड़ी खोलकर सेठ को दिखा ही रहा था कि रामभजन दलाल भागा-भागा आया और हांफता हुआ बताने लगा कि अभी-अभी छोहरा पर किसी मुसलमान ने किसी हिन्दू को छुरा मार दिया है। और दूकानें फिर पटापट बन्द हो गयीं। इकबाल साड़ी की पेटी गद्दी पर ही छोड़-कर लौट पड़ा। मुहल्ले में आते-आते उसने सुना कि चौकवाले मजार में किसी हिन्दू ने आग लगा दी है और मजार जलकर राख हो गया है।

कर्फ्यू फिर लगा दिया गया। पक्षी फिर पिंजरों में बन्द कर दिये गये।

रात के लगभग दस बजे प्रह्लादघाट की ओर से नारों की आवाज इस प्रकार आती है कि पूरा इलाका फनफना उठता है—

हर हर महादेव !
हर हर महादेव !

जवाब में किसी मस्जिद से दूसरा नारा लगता है—

नार ए तकबीर
अल्ला हो अकबर !

और लगता है कि आज रात बनारस का एक हिस्सा साफ हो जायेगा।

लोग अपने-अपने घरों में व्यस्त हो जाते हैं। औरतों को आदेश दिया जाता है कि वे फौरन मिर्चा पीसकर उसका बुकवा तैयार करें, ताकि शत्रुओं की आंखों में उसे झोंका जा सके। और मर्द सारे छतों पर जाकर छिप जाते हैं। जिन छतों पर पुलिस का पहरा है वे लोग भीतर-ही-भीतर कांप रहे हैं, लेकिन बाकी छतों पर पत्थर और ईंट के टुकड़े इकट्ठे किये जा रहे हैं। घर-भर की पुरानी-धुरानी शीशियां जमा की जा रही हैं।

मतीन की अक्ल कुछ काम नहीं कर रही है। वह थोड़ी देर तक गुमसुम बना रहता है, फिर इकबाल को साथ लेकर छत पर पहुँच जाता है और वहाँ से देखता है कि सतिऊवा अपनी छत पर मुहर्रम के अखाड़ेवाली लोहे की तलवार लिये टहल रहा है।

"अब का होइए ?"

मतीन अपने बेटे से पूछता है तो इकबाल चुप रहता है। वह कर ही क्या सकता है ? न तो वह तलवार चला सकता न किसी की आँख में मिर्चे की बुकनी झोंक सकता।

नारों का शोर काफी देर तक हवा में गूँजता रहता है। फिर उसकी जगह पुलिस की सीटियाँ ले लेती हैं और पूरा वातावरण किसी आदमखोर बाघ से आतंकित जंगल की तरह भयानक हो उठता है।

मतीन अपने बेटे के साथ सीढ़ियाँ उतरकर नीचे आ जाता है। सड़कों पर सीटियाँ रात-भर चीखती रहती हैं।

सुबह एक और सूचना मिलती है कि इस साल न तो नाटी इमली का भरत-मिलाप होगा और न चेतगंज की नककटइया निकलेगी। इस खबर से मुसलमानों का एक वर्ग बेहद खुश होता है, लेकिन हिन्दुओं का एक वर्ग बुरी तरह भड़क उठता है। पचास वर्षों से जो रिवाज चले आ रहे हैं उन्हें बन्द करने की जुर्रत आखिर कैसे हुई ? जरूर इसमें किसी मुसलमान नेता का हाथ है।

और फिर छुरे चलने लगे। आगजनी होने लगी। लगा कि यह बनारस अब बनारस नहीं रह पायेगा।

लेकिन आश्चर्य कि कागता नेता, शरफुद्दीन नेता अल्ताफुर्रहमान एडीटर और दादा तड़ित बनर्जी के सद्प्रयासों से जल्दी ही (अगर चालीस दिनों को 'जल्दी' माना जा सके तो) स्थिति पर काबू पा लिया गया और अखबारों ने यह समाचार मोटे-मोटे अक्षरों में छापा कि नगर की स्थिति अब सामान्य हो चली है और प्रशासन ने दंगे को पूरी तरह नियन्त्रित कर लिया है।

इसके साथ ही यह समाचार भी छपा कि मामले की जाँच के लिए एक पूरा-का-पूरा आयोग बैठ चुका है और दोषी व्यक्तियों को सख्त-से-सख्त सजा दी जायेगी।

लेकिन अखबारों ने यह समाचार नहीं छापा कि कर्फ्यू के दौरान न बशीर मियाँ के घर को पानी मिला, और न मतीन के घर को आटा।

जुमा के रोज आयोजित कुआं और पीली कोठी की मस्जिदों में बुनकरों की सभाएँ हुईं और यह तय किया गया कि कोई भी बुनकर न औरत न मर्द—अब सिनेमा देखने नहीं जायेगा, क्योंकि एक सिनेमाहॉल में उनकी औरतों की बेहुरमती हुई है।

लोगों ने जोरदार शब्दों में इस प्रस्ताव को पास किया और नमाज पढ़ी। नमाज में खुदा से दुआ मांगी गयी कि या अल्लाह ! दुनिया-भर के मुसलमानों की तू हिफाज़त कर !

लेकिन अगले ही दिन अंसारी स्कूल के अनेक बुनकर लड़के जब जमुना टाकीज में छिप-छिपाकर जा घुसे तो बिरादरीवालों को अपनी कसम तोड़नी पड़ी। औरतें मन-ही-मन खुश हुईं और नकाब ओढ़-ओढ़कर चित्रा, कन्हैया चित्र मन्दिर, साजन और प्राची की ओर निकल पड़ी।

22

"का मियाँ, आज आजाद पारक में मुसायरा है ने ?"

"हाँ मियाँ, बहुत बड़ा मुसायरा है। बहुत अच्छे-अच्छे सायर आवेवाले हैं। अउर आजाद पारक में बहुत सजा भी है। कई हजार तो बिजली की लतर लगी है। अरे समझीते कि करीब पचासन हजार लतरिया लगी होइए !"

"का मियाँ, एक्को सायरा हैं के नाँहीं ?'

"नाँही मियाँ सायरा एक्को नाँहीं हैं।"

दरअस्ल यह मुशायरा हाजी अमीरुल्ला के प्रयास से हो रहा है और उनका विचार है कि शायरी करनेवाली औरतें फ़ाहशा होती हैं। उनको बुलाने का मतलब है मुहल्ले के लड़कों को खराब करना। अतः शायराओं के नाम पर उन्होंने सख्त एतराज किया। और नतीजतन एक भी शायरा नहीं आ सकी इस मुशायरे में।

"का मियाँ एलाउंसरी केकी है ?"

"उमर कोरैसी की एलाउंसरी है मियाँ ! अच्छा एक बात है, कि उमर भी बड़ी अच्छी एलाउंसरी करेतेन। मजमा के एट्टम कण्ट्रोल किये रहेते न।"

नायखाने में चर्चा गर्म है—

यह मुशायरा 'हिन्दू-मुस्लिम एकता' के बैनर पर कराया जा रहा है। इसके आयोजकों में हाजी अमीरुल्ला के अलावा हाजी वलिउल्ला, शरफुद्दीन और कामता

प्रसादजी भी हैं। दंगे के बाद इन लोगों ने कई-कई शान्ति मार्च भी निकलवाये थे, जिनमें 'हिन्दू-मुस्लिम भाई-भाई' के जोरदार नारे लगाये गये थे। अब इस मुशायरे के जरिए यह साबित किया जायेगा कि शहर में वाकई हिन्दू-मुस्लिम एकता क़ायम हो गयी है और क़ौमी यकजिहती के लिए अब कोई खतरा नहीं रह गया है। इस नेक काम को खूबसूरती के साथ अंजाम देने के लिए इस बार बुनकरों की मजूरी में से चन्दे की रकम भी काटी गयी है!

मुहल्लों में शाम से ही चहल-पहल बहुत बढ़ गयी है। 'कौमी एकता' के एडीटर और वर्तमान एम. एल. ए. जनाब अल्ताफुर्रहमान साहब बहुत व्यस्त हैं। उर्दू का मामला है, वे नहीं सक्रियता दिखायेंगे तो और भला कौन सामने आयेगा? हालांकि शरफुद्दीन को यह बात अच्छी नहीं लग रही है, क्योंकि इलेक्शन में तो वह भी खड़ा होनेवाला है। लेकिन उसके साथ एक मजबूरी है, कि उसे उर्दू नहीं आती। अगर किसी शायर का मिजाज बिगड़ जाय तो फिर गजब हो जायेगा। सो, इतना-सा समझौता कर लिया गया है। सुनने में आया है कि अल्ताफुर्रहमान साहब मुशायरा शुरू होने से पहले एक छोटी-सी तकरीर भी करेंगे, जिसमें पिछले दिनों बनारस शहर में हुई शर्मनाक घटनाओं पर रोशनी डालेंगे और साथ ही यह बतायेंगे कि ऐसे मौके पर शायरों और अदीबों की क्या जिम्मेदारी होती है?

हालांकि इस्लाम में शराब की सख्त मुमानियत है, पर शायरों के लिए ह्विस्की का इन्तजाम कर लिया गया है। भई मजबूरी है! जैसे, इस्लाम में तो तस्वीर की भी सख्त मुमानियत है, पर बुरचोदी के ऐसा सरकारी कानून है कि जिन्दगी-भर आदमी भले इस गुनाह से बच जाय, मगर हज के लिए जाते वक्त तो फोटो खिंचाना जरूरी ही हो जाता है, वरना पासपोर्ट ही नहीं बनेगा! बहरहाल खुदा इसके लिए माफ करेगा। वहाँ कह देंगे कि न तो हमने अपने शौक के लिए तस्वीर खिंचायी और न शराब खरीदी। एक के लिए गुनहगार सरकार है तो दूसरे के लिए शायर! शायर तो बहरहाल वैसे ही जहन्नुम में जायेंगे, हो सके तो इ सरकार को भी जहन्नुम में भेज दीजिए!

आठ बजते-बजते लोग आजाद पार्क की ओर चल पड़े। अल्ताफ भी तैयार होकर चउमुहानी पर आ गया और पान की दूकान पर खड़ा हो गया। शायद कोई साथी मिल जाय। ऐसी जगहों में अकेले-अकेले जाने का कोई मतलब नहीं। तभी लतिफवा भी वहाँ आ गया और उसकी मनोकामना पूरी हो गयी। उसने लतिफवा को उकसाया—

"अमाँ चलो चला जाय मुसैरवा में।"

लेकिन लतिफवा बहस पर उतारू हो गया, "अमाँ एक्को सायरा नांही हैं।

हम्मैं जमिये नाहीं। जब मोहतरमा भी रहैतिन के नाहीं, तब मजा आवेतो। देखो कहना में लल्लापुरा में मुसायरा है, हुवां सायरा भी अइयन। हुवां मजा वइए !"

"अमां चलो, यह मुसायरा कामयाब होइए। बहुत उच्चे-उच्चे सायर आवे-वाला हैं न। उमर कोरैसी की नेजामत[1] है। बड़ा अच्छा बोलैंवाला है।"

और मजबूर होकर लतिफवा भी अल्ताफ के साथ चल पड़ा।

आजाद पार्क में तिल रखने को जगह नहीं थी। जिधर देखिए उधर टोपियाँ-ही-टोपियाँ नजर आ रही थीं। सड़क पर चिनिया-बदाम और नानखताई के खोमचे अपने-अपने सिर पर मिट्टी तेल से चलनेवाला भभका सजाये इधर-उधर खड़े थे और चाय की दूकानों में लोग चींटों की तरह भरे हुए थे। पार्क के आसपास जितने भी मकान थे उन सबकी छतें भीड़ से भरी हुई थीं। झरोखों में औरतें और लड़कियाँ अपना दुपट्टा लहराती चमक रही थीं। पार्क से सटे हुए एक अति प्राचीन पटे हुए कुएँ के चबूतरे पर भी लोग बोरा बिछा-बिछाकर बैठ गये थे। पार्क के चारों ओर लोहे की जो छड़ें लगी थीं वे आदमियों के धक्के से हिली जा रही थीं। कुछ लौंडे पास ही खड़े नीम की डालियों पर भी चढ़कर बैठ गये थे।

पार्क के भीतर इस कदर लोग ठुंसे हुए थे कि जमीन की घास नजर ही नहीं आती थी। झाड़ियों के नीचे अरब से आये हुए टू-इन-वन और तरह-तरह के विदेशी टेपरिकार्डर्स मेहमानों की तरह पसड़े हुए थे। ये आदरणीय यन्त्र बिरादरी-वालों के प्रिय शायरों के कलाम को आत्मसात करने के लिए पूर्णतया कटिबद्ध थे।

अचानक स्टेज पर जनाब अल्ताफुर्रहमान अंसारी का प्रवेश होता है और लोग सतर्क हो जाते हैं। हाजी अमीरुल्ला, हाजी वलीउल्ला, हाजी मिनिस्टर, हाजी नजीर, बाऊ दिब्या, शरफुद्दीन, कमरुद्दीन, हाजी हबीबुल्ला, सेठ गजाधर प्रसाद, कामता नेता वगैरह डाइज के बिल्कुल करीब सोफों पर बैठे हुए थे। वे अपने कूल्हे बदलते हैं और एडीटर साहब की तकरीर सुनने में तल्लीन हो जाते हैं।

फिर माइक पर आते हैं जनाब उमर कुरैशी ! और बताते हैं कि जनाब नूर इन्दौरी, जनाब राहत इन्दौरी, जनाब वसीम बरेलवी, जनाब सागर निजामी, जनाब तसनीम फारुकी, जनाब खुमार बाराबंकवी, जनाब झंझट बलियावी और जनाब नजीर बनारसी आदि मुल्क के कई बड़े शायर तशरीफ ला चुके हैं और जल्दी ही मुशायरा शुरू होनेवाला है।

'हजरात !

बनारस बहरहाल हमेशा से सुखनशनास शहर रहा है···'

---

1. संचालन।

"भाग बुरचोदी के, भोसड़ियावाले काहे घुसकल आवेले वे ?"

अभी उमर कुरैशी बनारसवालों की तारीफ़ का पुल बाँधने ही जा रहे थे कि भीड़ में झगड़ा हो जाता है। गाली-गलौज चिल्लम-चिल्ला, झड़पी-झड़पा···और उमर कुरैशी बेचारे घबरा जाते हैं। लेकिन स्थिति को जल्दी ही वे नियन्त्रण में कर लेते हैं। उनके आमन्त्रण पर नूर इन्दौरी चीख-चीखकर अपनी ग़ज़ल सुनाने लगते हैं :

इक मुजस्सम ग़ज़ल है मेरे सामने
ग़ज़ल देखकर मैं ग़ज़ल कह रहा हूँ !

वाह ! वाह ! वाह ! भई वाह ! मुकर्रर इरशाद !

लोग झगड़ा-फसाद भुलाकर वाहवाही लुटाने लगते हैं और मंच की भाषा में, "जैसे-जैसे रात भीगती है, मुशायरे का रंग गहरा होता जाता है।" शायरों को भी और श्रोताओं को भी अपनी-अपनी भूली-बिछड़ी महबूबाएँ याद आने लगती हैं और आजाद पार्क में एक अजीब-सा समा छा जाता है।

ठीक उसी वक़्त बिरादरी के प्रतिनिधि शायर नज़ीर बनारसी माइक पर आते हैं और तालियों की गड़गड़ाहट से पेड़ों पर सोयी हुई चिड़ियाँ भी जाग जाती हैं।

नज़ीर बनारसी शुरू होते हैं—

रात की ताक में है सवेरा
आगे नागिन है पीछे सँपेरा
मुझ पे गुज़रेगी इक रात ऐसी
जागकर तुम करोगे सवेरा
जब तलक बाग़ में है चहक ले
जाने किस बन में हो फिर सवेरा

और पूरा माहौल एक अजीब-सी उदासी में डूब जाता है।

इस उदासी को तोड़ने के लिए उमर कुरैशी राहत इन्दौरी को आमन्त्रित करते हैं और उसके बाद ही श्रोताओं की डिमाण्ड होती है कि जनाब मारूफ़ शरीफ़ी से बुनकरोंवाली नज़्म सुनवायी जाय।

तब जनाब मारूफ़ शरीफ़ी बनारसी माइक पर आते हैं और तहत में (बग़ैर गाये) अपनी मशहूर नज़्म 'शहर बनारस और बुनकर' पढ़ने लगते हैं—

इक हसीं शहर बसा है लबे दरिया देखो
शहर की गोद में बहती हुई गंगा देखो
मौज-दर-मौज मचलती हुई किरनों का समाँ
सुबहे-दम शहरे-बनारस का ये जलवा देखो

ये बनारस के हसीं घाट ये दिलकश मंजर
हाँ इसी शहर में रहते हैं हजारों बुनकर
आबे-गंगा में झलकती हैं इमाराते-कुहन[1]
चश्मे-अंजुम[2] से है नज्जारे में मसरूफ़ गगन
अक्से-मस्जिद भी वहीं साया-ए-मन्दिर भी वहीं
कितना दिलकश है जरा देखिए दोनों का मिलन
ये बनारस के हसीं घाट···
रिशियों-मुनियों ने बनायी है यहाँ अपनी डगर
नक्शे-गौतम भी यहाँ और यहीं राम नगर
मुख्तलिफ़ कौम के मौजूद मआबिद[3] इस जा
एकता देश की हर मोड़ पे आती है नजर
ये बनारस के हसीं घाट···
ये इसी शहर में आबाद कबीर औ' तुलसी
फ़ख्रे-तहज़ीबे-वतन[4] है ये मुक़द्दस[5] धरती
मरकज़े-इल्मो-हुनर[6] जलवा गहे-फ़िक्रो-नजर[7]
चश्म-ए-फ़ैज[8] है सदियों से ये काशी नगरी
ये बनारस के हसीं घाट···
सनअते[9] शहर बनारस है जमाने पे अयाँ
रेशमी कपड़ों से ये शहर है मशहूरे-जहाँ
दस्तकारी से यहाँ लोग गुजर करते हैं
कारखानों से हैं आबाद यहाँ सबके मकाँ
ये बनारस के हसीं घाट···
दस्तकारी की बलंदी को कोई क्या जाने
हाथ के फ़न से ही आबाद हुए वीराने

1. भवनों का प्रतिबिंब।
2. तारों की आँख।
3. पूजाघर।
4. देश की सभ्यता का गौरव।
5. पवित्र।
6. ज्ञान और कला का केन्द्र।
7. चिंतन एवं दृष्टि का तेजोमय स्थान।
8. अनुग्रह की दृष्टि।
9. कारीगरी।

देश-भगती का जो बापू ने था सपना देखा
लोग बुनते हैं उसी ख्वाब के ताने-बाने
ये बनारस के हसी घाट···
अपनी सनअत का लिये काम चले जाते हैं
कितने फ़नकार ब-हंगाम चले जाते हैं
ताकि मिल जाये उन्हें अपनी मशक़्क़त का सिला[1]
सूये-बाज़ार[2] सरे-शाम चले जाते हैं
ये बनारस के हसी घाट···
मादरे-हिंद के आंचल को सजानेवाले
बिन्ते-हव्वा[3] के तक़द्दुस[4] को बढ़ानेवाले
इब्ने-आदम ने भी सीखा है तमद्दुन[5] इनसे
यही बुनकर ही तो हैं तन को छिपानेवाले
ये बनारस के हसी घाट ये दिलकश मंज़र
हां इसी शहर मे रहते हैं हजारो बुनकर।

इकबाल पार्क के छोर पर खड़ा-खड़ा थक गया था। उसे यह भी समझ में नही आ रहा था कि इन ग़ज़लो और नज़्मों से हिन्दू-मुसलमानों की एकता को क्या लेना-देना है ? इस तरह के मुशायरों का क्या योगदान हो सकता है भला जिन्दगी को बदलने में ?

और वह पार्क से बाहर आ जाता है। सड़क पर सन्नाटा था। सिर्फ माइक की आवाज़ दूर-दूर तक गूंज रही थी। वह उस खाली और खामोश सड़क पर चलता हुआ अपने मुहल्ले में पहुँच गया। गली के मुहाने पर खड़ा होकर उसने देखा, सारे-के-सारे मकान यतीम बच्चों की तरह चुपचाप खड़े थे और चांदनी उन पर हँस रही थी।

---

1. श्रम का फल।
2. बाज़ार की ओर
3. हव्वा की बेटी।
4. पवित्रता।
5. सभ्यता।

23

न कोई शोर-शराबा हुआ न कोई धूम-धाम, न बारात सजी न खान-पान हुआ। किसी ने जाना, किसी ने न जाना और नजबुनिया का मतीन से ब्याह हो गया। बस पाँच आदमी इकट्ठे हुए और पुराने कपड़ों में ही निकाह हो गया।

नजबुनिया मतीन के घर में दुल्हन बनकर नही आयी, वह आयी गृहस्विन बनकर। आते ही वह अलीमुन की सेवा-टहल में लग गयी और आस-पड़ोस के लोग दंग रह गये। यह कैसी सौत है भाई, जो सौत की खिदमत कर रही है? न कहीं सौतिया डाह, न कोई प्रतिस्पर्धा! ऐसा लगता है जैसे अलीमुन और नजबुनिया सगी बहिनें हैं।

इकबाल को नजबुनिया अपना ही लड़का समझती है। हालांकि वह अब काफी बड़ा हो गया है और उसकी मसें भीगने लगी हैं, लेकिन घर में आते ही नजबुनिया उसके बालों में अपने हाथ फेरती है और अपने सामने बैठाकर नाश्ता कराती है। उसके इस व्यवहार से मतीन भी आश्चर्यचकित था।

लेकिन एक अजीब तरह का संकोच पूरे घर में फिर भी विद्यमान था। मतीन जब अलीमुन के पास बैठता तो नजबुनिया वहाँ से हट जाती और नजबुनिया जब मतीन से बतियाती होती तो अलीमुन मुँह ढँककर सोने का बहाना करने लगती। इकबाल सिर झुकाकर इधर-उधर टरक लेता।

उस दिन मतीन जब साड़ी लेकर गोलघर जाने के लिए तैयार हुआ तो नजबुनिया उसके सामने आकर खड़ी हो गयी।

"कहाँ?" उसने मुस्कराकर पूछा तो मतीन का दिल कुलबुला उठा।

"जाते गोलघर!"

"जल्दी आइयो आं!"

नजबुनिया ने अपनी आवाज को पहले की अपेक्षा काफी पत्नीनुमा बनाकर मतीन को यह हिदायत दी तो उसके भीतर एक अजीब-सी चुलबुलाहट जन्म लेने लगी। उसके मन में आया कि वह नजबुनिया के गाल को छू ले और उसकी ताक़ीद का इसी रूप में जवाब दे, लेकिन तभी उसने महसूस किया कि अलीमुन अपने बिस्तर में से उनकी ओर एकटक देख रही है और आहिस्ता-आहिस्ता खों-खों खाँस जा रही है। वह लजा गया। नजबुनिया भी लजा गयी। वह झटके के साथ सीढ़ियों की ओर बढ़ गया और जल्दी-जल्दी नीचे उतरकर गली में पहुँच गया।

कम्पनी बाग के मैदान में खूब सजावट हो रही है। रंग-बिरंगी झण्डियाँ हवा में लहरा रही हैं। एक ओर तख्त बिछाकर मंच बनाया जा रहा है। चार तख्त बिछा दिये गये हैं। तख्तों पर जाजिम और सफ़ेद चाँदनियाँ डाल दी गयी हैं। सामने बाँस के दो खम्भे गाड़कर उनकी फुनगियों पर पार्टी के झण्डे बाँध दिये गये हैं। मंच के पीछे चाँदनी की ही दीवार-जैसी बना दी गयी है, जिस पर हनिफ़वा चन्द लड़कों की मदद से कागज़ की कुछ तस्वीरें लगा रहा है। अचानक उसे कुछ याद आ जाता है और एक लड़के से यह पूछ बैठता है—

"ऊ बे जवाहरलाल नेहरू क फोटइया लिआए?"

"अभईं नाहीं!"

"भाग भोंसड़ी के! तब का होइए बे? ज जल्दी लिआव!"

और वह लड़का अपनी लुंगी फड़फड़ाता हुआ जवाहरलाल नेहरू का फोटो लाने के लिए भाग जाता है।

इलेक्शन बिल्कुल ही सिर पर आ गया है। जैसे गरीब लोग त्यौहार सिर पर आ जाने पर या बिटिया का ब्याह सिर पर आ जाने पर परेशान हो जाते हैं, उसी तरह इस देश के अमीर-उमरा इलेक्शन सिर पर आ जाने पर परेशान हो जाते हैं। हाजी अमीरुल्ला का परिवार इधर और सेठ गजाधर प्रसाद का परिवार उधर, बेहद परेशान है। शहर-भर में इनकी कई-कई चुनाव-कमेटियाँ बन चुकी हैं और कई-कई चुनाव-दफ़्तर खुल गये हैं। पोस्टर, बिल्ला और झण्डा आदि बनवाने में पानी की तरह पैसा बहाया गया है। कई-कई जीपें दौड़ रही हैं। कई-कई मौसमी नेता पैदा हो गये हैं—वर्क करने के लिए। इलेक्शन इसी तरह थोड़े जीता जाता है। उसके लिए जरूरत होती है अच्छी टैक्टिक्स की। सो एक-एक टैक्टिक्स आजमाई जा रही है। आज पार्टी के कोई बड़े लीडर बुलाये गये हैं यहाँ भाषण के लिए। हाजी अमीरुल्ला का दावा है कि इस भाषण में इतनी भीड़ इकट्ठी होगी जितनी मौलाना हक्क़ानी की तक़रीर में भी नहीं हुई थी।

ई मौलाना हक्क़ानी बहुत बड़े मुकर्रिर[1] हैं। कई साल हुए, अंसारी स्कूल के मैदान में इनकी तक़रीर हुई थी। इतनी भीड़, इतनी भीड़ कि कुछ पूछो मत!

1. प्रवचनदाता।

दोनों कोठी को सड़क तक बस आदमी-ही-आदमी नजर आते थे। लेकिन जैसे ही मौलाना हक्क़ानी ने मुबरात का हलुवा और नजर-नेयाज के खिलाफ बोलना शुरू किया, सारी भीड़ तितर-बितर हो गयी। सिर्फ़ गेट पर उनकी किताबों की दूकान-भर रह गयी थी।

हालाँकि हाजी अमीरुल्ला चाहते तो इस भीड़ की तुलना 'ईदे मीलादुन्नबी' के रोज होनेवाली बेनियाबाग की तक़रीर में जुटी भीड़ से भी कर सकते थे, लेकिन मौलाना हक्क़ानीवाली भीड़ से तुलना करने में जो सुख है वह उसमें नहीं है। दर-असल इसके पीछे एक दृष्टि है, कि यह भीड़ खूब जमेगी, जबकि मौलाना हक्क़ानी-वाली भीड़ तो उखड़ गयी थी; क्योंकि न तो इस तक़रीर में मुबरात के हलुवे का विरोध होगा और न ताजियादारी का। इस तक़रीर में तो मुल्क की तरक्की और बेहतरी के लिए अपनी खिदमत पेश करने का जज्बा प्रकट किया जायेगा और बनारस की जनता से अपील की जायेगी कि वे जिस पार्टी का भाषण यहाँ सुन रहे हैं, उसी पार्टी को अपना बहुमूल्य वोट प्रदान करें, क्योंकि भारत-भर में इससे बढ़िया कोई और पार्टी नहीं है।

सजावट पूरी हो चुकी है। नेताजी अब आने ही वाले हैं। भीड़ उत्सुकता से उनकी प्रतीक्षा कर रही है। मंच पर कामता और शरफुद्दीन के साथ इलाक़े के चन्द भद्र जन, जैसे गँड़ासा गुरु, संकठा गुरु, बम गुरु आदि बैठे हुए हैं। एक लड़का माइक पर अल्लामा इक़बाल की नज्म अत्यन्त अशुद्ध उच्चारण में रेंक रहा है।

भीड़ बढ़ती जा रही है। आगे की जगह नेताजी के साथ आनेवाले विशिष्ट लोगों के लिए छोड़ दी गयी है। उन्हें लेने के लिए हबीबुल्ला गये हुए हैं। एक सीट उनके लिए भी है। वह एक साधारण-सी कुर्सी है, जिस पर हबीबुल्ला बैठेंगे। लकड़ी की! बाकी नेता लोगों के लिए बेंत की बुनी हुई कुर्सियाँ रखी गयी हैं। कमरुद्दीन व्यवस्था में लगा हुआ है। अचानक वह देखता है कि मुहल्ले का एक लड़का तेजी के साथ आता है और हबीबुल्ला के लिए रखी गयी कुर्सी पर बैठ जाता है। कमरुद्दीन के बदन में आग लग जाती है। वह उस लड़के पर बिगड़ जाता है—

"तूं कुरचोदी के रेंहा बैठियो त चचा छिनरो के कहाँ बैठिहें?"

और वह लड़का झेंप जाता है। वह कुर्सी से उठ खड़ा होता है और सबसे पीछे जाकर जमीन पर बैठ जाता है।

फिर अचानक नेताजी प्रकट होते हैं और एक विचित्र-से शोर से पूरा माहौल गुंजायमान हो जाता है।

"फोटो गराफर कहाँ गोवा म्याँ?"

"चउकिया पर मसलन ठीक करो म्याँ!"

"इन्नासालिहा तकरीर करे के हाजी वलिउल्ला के बुलाओ म्याँ!"

"अबे माला कहाँ रक्खी है? दउड़ के लियाव त!"

25

मोलवीजी के घाट में बिजली की लतरें लग रही हैं और 'बेगरी टेंट हाउस' से आयी किराये की कुर्सियाँ जमायी जा रही हैं। मस्जिद से सटी हुई एक कोठरी में चाय बन रही है। मैदान में एक लम्बी-सी मेज लगा दी गयी है जिसके सामने कुछ मौलाना लोग कागज़-कलम लेकर बैठे हुए हैं। नंग-धड़ंग बच्चे उछल-कूद कर रहे हैं और पूरे माहौल में एक अजीब-सी रौनक बनी हुई है।

दरअसल आज सतरहीं है। जमादिउल-अव्वल की सत्रह तारीख। इस रोज़ चोहट्टालाल खाँ से विभिन्न अंजुमनों का एक जुलूस उठता है, जो रात-भर गश्त लगाता हुआ सुबह होते-होते आलमपुरा तक पहुँचता है। इन दिनों जबकि पूरा शहर बनारस चुनाव की सरगर्मियों में डूबा हुआ है, यह अंजुमनों का मेला भी शुरू हो गया और असईपुरा से लेकर मदनपुरा तक के सारे बुनकर दोनों मोर्चों पर साथ-साथ सक्रिय हो उठे। चुनाव में तो अपने उम्मीदवार को जिताना ही है, पर अपनी अंजुमन के लिए शील्ड भी हथियाना है।

बनारस शहर में इस तरह की कई अंजुमनें हैं। अंजुमन शम्मा-ए-इलाही, अंजुमने-दरफानिया, अंजुमने-इलाहिया, अंजुमने-चपरानिया, अंजुमने-इस्लामिया कदीमी, अंजुमने-गुलामाने रसूल आदि। इन अंजुमनों में दस-बारह साल के लड़कों से लेकर चालीस साल के अधेड़ तक ऐसे लोग हैं जो हज़रत मुहम्मद साहब और उनके चारों सहाबियों की प्रशंसा में नात पढ़ा करते हैं। इन नातों के रचयिता कुछ विशेष किस्म के शायर होते हैं और महीनों इनकी लयें बनायी जाती हैं। लय और धुन के अभ्यास अत्यन्त गुप्त स्थान में—किसी गुप्त कोठरी या किसी पुरानी मस्जिद में—किये जाते हैं, क्योंकि इन अंजुमनों को यह खतरा होता है कि कहीं दूसरे अंजुमनवाले इनके शेर न चुरा लें, या इनकी धुनें न हड़प लें। मौलिक विषयवस्तु और मौलिक धुनों के आधार पर ही अंजुमनें पुरस्कृत की जाती हैं।

नातों की यह प्रतियोगिता ईदे-मीलादुन्नबी के रोज़ से ही शुरू हो जाती है। अलग-अलग तिथियों पर यह प्रतियोगिता अलग-अलग स्थानों में होती है। किसी दिन दालमण्डी में तो किसी दिन नयी सड़क में। कभी-कभी ये अंजुमनें बनारस से बाहर जैसे गाज़ीपुर या जौनपुर की ओर भी नात पढ़ने के लिए जाया करती हैं।

हर अंजुमन में लगभग बीस-पचीस लोग होते हैं, जिनमें एक सदर होता है और एक सेक्रेटरी। बाकी साधारण सदस्य होते हैं। उनमें एक 'मीर' होता है, जो मुख्य प्रस्तोता होता है। बाकी लोग उसका अनुकरण करते हैं।

इस प्रतियोगिता में जो लोग फर्स्ट-सेकेण्ड आते हैं उन्हें शील्ड मिलता है। शील्ड भी अंजुमन के लोग ही देते हैं। दरअसल हर अंजुमन इनाम देनेवाली भी

होती है और प्रतियोगिता में भाग लेनेवाली भी। हाँ, अपने डाइस पर कोई भी अंजुमन भाग नहीं लेती है।

पहले चोहट्टे में सिर्फ़ एक ही अंजुमन थी, लेकिन अब एक अंजुमन और बन गयी है। इस अंजुमन में चोहट्टे से बाहर के लोग भी शामिल हैं। इधर अल्ताफ़ भी थोड़ी रुचि लेने लगा है। वह नात-बात पढ़ना तो नहीं जानता, पर चन्दा-वन्दा वसूल कर सकता है, इसलिए चोहट्टेवाले अंजुमन में उसे नायब सदर बना दिया गया है। हालांकि कामरेड मोबीन ने उसे मना किया था इन सबके लिए, लेकिन वह नहीं माना। उसने साफ़ कह दिया कि हम तो अपने मन के राजा हैं।

अल्ताफ़ अपनी छाती पर अंजुमन का बैज लगाये घूम रहा है और थोड़ी-थोड़ी देर बाद माइक पर आकर दूर-दूर से आयी हुई अंजुमनों को आवाज दे रहा है कि वे डाइस के पास आकर अपना क्रम डलवा लें, ताकि इसी क्रम से उन्हें नात पढ़ने के लिए आमंत्रित किया जा सके।

अचानक लुंगी पहने, पान खाये, बीड़ी पीते हुए आठ-दस लौंडों का एक झुण्ड डाइस के पास आता है और यह जानकर कि उन्हीं का पहला नम्बर है, नात पढ़ना शुरू कर देता है। आगे-आगे जो नौजवान-सा लड़का है वह बड़ी अदा के साथ अपनी टोपी को ठीक करता है और हाथ नचा-नचाकर डाइस के सामने बैठे निर्णायक मौलानाओं को सम्बोधित कर-करके 'पाकीजा' फ़िल्म के एक गाने 'मौसम है आशिकाना' की धुन में अत्यन्त अशुद्ध उच्चारण के साथ एक नात गाने लगता है।

फिर टाइम ख़त्म होते ही दूसरा झुण्ड आता है, और फिर तीसरा और फिर चौथा, और इस तरह झुण्ड-पर-झुण्ड आते जाते हैं और अपनी कला का प्रदर्शन किये जाते हैं। अन्त में एक माडर्न किस्म के सज्जन अपनी अंजुमन के साथ पेश होते हैं और बाकायदा कुल्ली करके, बिस्मिल्लाहिर्रहमानिर्रहीम पढ़कर अत्यन्त भक्ति भाव के साथ अपनी नात शुरू करते हैं—

'उलट के जो देखोगे औराक चौदा…'

और सोये हुए श्रोता चौंककर जाग उठते हैं। इ त बड़ी बढ़िया बात उठाइसे म्यों !

26

शरफुद्दीन चार हजार तीन सौ सत्ताइस वोटों से जीत गये हैं।

जबसे वे एम. एल. ए. हुए हैं तभी से उनके यहाँ दरबार लगना शुरू हो गया है।

चुनाव-परिणाम घोषित होने के बाद कचहरी से ही ग़यासुद्दीन नेता की जय-जयकार करती हुई भीड़ यहाँ तक आयी थी। फिर जश्न मनाया गया था, मिठाइयाँ बाँटी गयी थीं। खूब हो-हल्ला हुआ था। विरोधी प्रत्याशी के ख़िलाफ़ खूब ज़हर उगला गया था। उसकी खूब खिल्ली उड़ायी गयी थी। यही नहीं, हर लोकल लीडर ने अपनी-अपनी गैंगस्टर कारगुज़ारी के बारे में उछल-उछलकर एम. एल. ए. साहब को जानकारी दी थी, कि किसने कितने फ़र्ज़ी वोट गिरवाये, किसने कितनों को झापड़ मारा और किसने कितने न पड़नेवाले वोट पड़वाये, किसने खुद कितने मत-पत्रों पर मुहर मारकर जबर्दस्ती उन्हें मतपेटी में डाल दिया, किसने कहाँ की मतपेटी गायब करवा दी, आदि आदि! एम. एल. ए. साहब गद्गद थे! जैसे सुग्रीव अपनी सेना का बल-विक्रम सुनकर प्रसन्न हुए, कुछ उसी तरह!

जिन दिनों एम. एल. ए. साहब बनारस में होते हैं, रोज़ाना उनकी कोठी में दरबार लगता है। गद्दीवाले कमरे को पर्दा डालकर दो हिस्सों में विभाजित कर दिया गया है। एक हिस्से में व्यापार चलता है और दूसरे हिस्से में दरबार। एम. एल. ए. साहब जब घर पर होते हैं तो शाम से ही वहाँ शोहदों, गुण्डों, लफंगों, नवविदूषकों, नवचारणों, लफ़ाज़ों और तरह-तरह के अपराधकर्मियों की भीड़ लगने लगती है। वे अपने साथ पान का चौघड़ा और ज़रूरत के अनुसार चौघड़े में प्रसाद-पुष्प भरकर लाते हैं और एम. एल. ए. साहब के सामने रखकर सलाम करके बैठ जाते हैं। एम. एल. ए. साहब मुस्कराकर सबका स्वागत करते हैं और बड़े आत्मीय ढंग से सबका हाल-चाल पूछते हैं। फिर वे धड़ाधड़ फ़ोन का डायल घुमाने लगते हैं। किसी को थाने से छुड़वाना है, किसी को बन्द कराना है। किसी का ट्रांसफ़र करवाना है, किसी का रुकवाना है। किसी की नौकरी छुड़वानी है, किसी को दिलानी है। गर्ज़ कि ढेरों राष्ट्रीय कार्य हैं, जो उन्हें करने हैं!

इधर कई रोज़ से हनिफ़वा भी एक काम के सिलसिले में दौड़ रहा है। किराहिम का मन बिनकारी में नहीं लग रहा है, इसलिए सोचता है कि एम. एल. ए. साहब से कहकर उसे कहीं छोटी-मोटी नौकरी में लगवा दे। और साथ ही अपने रोज़गार के सिलसिले में भी वह कुछ बातें करना चाहता है, कि किसी सोर्स से उसका भी काम विदेश तक फैल जाय, जैसा कि खुद हाजी अमीरुल्ला का फैला हुआ है।

एम. एल. ए. साहब ने उसे सुझाव दिया है कि वह उनके साथ खुद लखनऊ चले। वहाँ किसी मिनिस्टर के ज़रिये सारा काम एक मिनट में हो जायेगा। कौन ऐसा मिनिस्टर है भोंसड़ीवाला जो उनकी बात न माने!

सो, एम. एल. ए. साहब के साथ लखनऊ जाने के लिए कई रोज़ से अटैची लेकर हनिफ़वा उनके दरबार में हाज़िर हो रहा है। किसी दिन 'गंगा-यमुना' एक्सप्रेस से चलने की बात होती है तो किसी दिन 'काशी-विश्वनाथ' से। आज

रात में चलने की बात है—'सियालदह' से। सियालदह एक्सप्रेस हालांकि रात के लगभग ढाई बजे छूटती है, लेकिन हनिफवा दस बजे ही एम. एल. ए. साहब की कोठी में पहुँच गया है। दरबार में सभी लोग बहस-मुबाहसे में डूबे हुए हैं, पर हनीफ की नज़र दीवार पर टँगी टिक्-टिक् करती हुई घड़ी पर ही टिकी हुई है।

तभी अचानक कोई संगीन मामला आ जाता है और एम. एल. ए. साहब को उठकर थाने तक जाना पड़ता है। कोई महत्त्वपूर्ण केस है शायद। हनिफवा अपनी अटैची दबाये बैठा रहता है। घड़ी में जब साढ़े बारह बज जाते हैं तो उसका दिल धुकुर-धुकुर करने लगता है।

फिर धीरे-धीरे लोग खिसकने लगते हैं। एम. एल. ए. साहब अभी तक नहीं लौटे। न जाने क्या बात हो गयी? और देखते-ही-देखते दरबार उठ जाता है। पान और स्याही के दागों से भरी हुई उस गन्दी-सी गद्दी पर सिर्फ हनिफवा बैठा रहता है। दो बज जाते हैं।

हनिफवा घड़ी की ओर देखता है और तय करता है उठकर थाने की ओर चले, कि तभी भीतर से कमरुद्दीन का लड़का निकलता है और खबर देता है कि चचा सो रहे हैं। उन्होंने कहा है कि अब कल चलेंगे 'पंजाब मेल' से!

हनिफवा अपनी अटैची उठाकर धीरे-धीरे बाहर आ जाता है। गली में एक गुस्साया हुआ कुत्ता भूँक रहा है। वह उस कुत्ते से बचते हुए आगे बढ़ जाना चाहता है, लेकिन कुत्ता उसे खदेड़ लेता है। वह दौड़ने लगता है और आगे बढ़कर एक मकान की आड़ में छिप जाता है। कुत्ता लौट जाता है।

"एकरी माँ की···"

हनिफवा पता नहीं यह गाली शरफुद्दीन को देता है या कुत्ते को, लेकिन गाली वह बेहद गुस्से में देता है और तेज-तेज डग भरता अपने घर की ओर चल पड़ता है।

27

दूसरे दिन हनिफवा बजाय एम. एल. ए. साहब के साथ लखनऊ जाने के, गोलघर गया। दो-तीन साड़ियाँ तैयार थी। उन्हें बेचकर कुछ रुपया खड़ा कर ले तब आगे की सोचे। वैसे तो अपनी साड़ियाँ वह हाजी अमीरुल्ला की गद्दी पर ही दे आता था, लेकिन आज वह गोलघर गया।

दूर से ही उसे साड़ियों की पेटी लिये देखकर रामभजन दलाल लपक पड़ा, "आज एहर कइसे ? हाजी साहब ठीक हुउवें ना ?"

"इ माल बेचे के है !"

बगैर रामभजन से बहस किये वह सीधा काम की बात करने लगा और आगे-आगे चलकर सेठ गजाधर प्रसाद की दूकान पर खड़ा हो गया। वहाँ कोई बाहरी व्यापारी बैठा हुआ था और एक दूसरा दलाल 'सलाय-जोलाय' में बातें कर रहा था। जब वह व्यापारी उठकर चला गया तो हनीफ ने अपनी पेटी आगे सरका दी। रामभजन ने सेठ गजाधर प्रसाद से कहा कि 'बात-व्यवहार ठीक हो, लै ल्या !' सेठजी समझ गये कि छः पैसे दलाली इसे भी चाहिए और पेटी उन्होंने रख ली।

फिर सेठजी ने थोड़ी देर तक नये एम. पी. हुए कामता बेटे का बखान किया। उसके रसम-रसूख की चर्चा की, बताया कि स्वयं प्रधानमन्त्री की नजरों में वह कितना अच्छा एम. पी. है और अन्त में एक महीने की अवधिवाला जो चेक दिया गया उसे उस पर मूल दाम में से बीस रुपये बाद करके (कम करके) धनराशि दर्ज की गयी थी।

"'तो इलेक्शन के बाद में ही यह एक और हरामीपन शुरू हो गया। न कोई बात न कोई वजह, न कोई ऐब न कोई कमी, फिर यह जबर्दस्ती की कटौती कैसी ?

घृणा से हनीफ का चेहरा विकृत हो गया। उससे कुछ बोलते नहीं बना। वह चुपचाप उठा और दूकान से बाहर आ गया।

घर पहुँचा तो सीढ़ियों पर से ही महरुन की कर्कश आवाजें उसे सुनायी पड़ीं। उसकी बीवी एक साथ अपने सभी बच्चों पर शासन कर रही थी।

"क रे हरमिया तैं अभइन तक सुत्ते काहे है रे ?"

लगता है बिराहिम अभी तक सोया हुआ है। दोपहर को भी वह सोया रहता है।

"कहाँ जाती रे ?"

"जाइते उप्पर !"

लगता है बिबिया छत पर जा रही है और जवान होती हुई लड़की का इस तरह छत पर जाना माँ को सुहा नहीं रहा है।

"हियाँ आव रे ! ऊ काहे छूवेते रे ? मत छूइये नाँहीं तो मरवा बहुत !"

लगता है छोटा लड़का जावेद कोई शरारत कर रहा है।

"अवे जबिदवा, चल खाना खा ले रे ! खनवा पक गोवा है अउर बेला भी हो गयी है।"

इतना सुनते ही हनीफ को भी भूख लग आयी। वह थोड़ी देर के लिए कटौती-वाली बात भूल गया और कमरे में आकर खुद भी खाना माँगने लगा, "खाना पक

गोवा रे ?"

"हाँ एक गोवा !"

"हमरा खाना काढ़ दो तो !"

"अच्छा !"

और हनीफ हाथ धोकर बोरे पर बैठ गया। महरुन खाना ले आयी और हनीफ के सामने रखकर वापस चली गयी। हनीफ ने एक निवाला मुँह में डाला और बरस पड़ा, "कइसा खाना पकाये है रे ? नमक एद्म फिक्का है। तनिक्को अच्छा नाँही लगेते !"

और वह खाना छोड़कर खड़ा हो गया।

महरुन लाख कहती रही कि अभी वह नमक पीसकर ला रही है, लेकिन हनिफवा रुका नहीं। वह सीढ़ियाँ उतरकर बाहर चला गया।

जोहर[1] का वक़्त क़रीब था और रऊफ़ चचा करघे पर से उठकर चबूतरे पर बैठ वज़ू बना रहे थे। ऊपर नजबुनिया आयी हुई थी। वह अपनी माँ के साथ चहक-चहककर बातें कर रही थी। सहसा गली में एक लम्बी-सी छाया उभरी और रऊफ़ चचा के सामने आकर खड़ी हो गयी।

रऊफ़ चचा चौंक उठे। वे दाढ़ी पर हाथ फेरने जा रहे थे कि उनके हाथ जहाँ-के-तहाँ रुक गये। इ हनीफ ही तो है ··उन्होंने अपनी बूढ़ी पलकें मुलमुलायीं···

"सलावाले कुम अब्बा !" हनीफ की आवाज़ काँप रही थी।

"आओ। हुवाँ काहे खड़े हो, उप्पर जाओ। कइसे आये बेटा ?" रऊफ़ मियाँ बोल रहे थे और भीतर-ही-भीतर अपने आँसुओं को पी रहे थे।

हनीफ क्षण-भर तक ठिठका हुआ-सा वहीं खड़ा रहा, फिर धीरे-धीरे चलकर दरवाज़े में दाख़िल हो गया। तब रऊफ़ मियाँ वहीं से नजबुनिया को चिल्लाये, "अरे देख नजबुनिया भइया आवा हे !"

और ख़ुद मस्जिद की ओर चल पड़े।

1. दोपहर की नमाज़, लगभग डेढ़ बजे का समय।

"इसका एक्स-रे होगा, साथ में खून-थूक की जांच भी होगी। समझे !"

डॉक्टर साहब ने उसे समझाया तो चपरासी झट से बोल पड़ा—

"हुजूर यह बहुत गरीब आदमी है। आप लिख देंय त यहीं से सब जांच-फांच हो जाय !"

और वह जेब से खैनी निकालकर उसे चूने के साथ मिलाकर हथेली पर ठोंकने लगा। इसके साथ ही उसने मतीन के पांव में धीरे-से ठोकर मारी और आंखों से इशारा किया कि यही वह वक्त है, जिसका इस्तेमाल करना है। चूके तो गये !

और मतीन ने दस-दस के दो नोट निकालकर टेबुल पर रख दिये।

"ये क्या कर रहे हो भाई ?" डॉक्टर ने दबी जबान से अपना एतराज प्रकट किया तो 'हुँह' कहते हुए चपरासी ने दोनों नोट झपट लिये और उन्हें अपनी जेब में डाल लिया।

मतीन बाहर निकल आया।

"हमार हक ?" चपरासी ने बाहर आकर उसे टोंका तो मतीन ने दो रुपये का एक नोट उसे भी थमा दिया।

अलीमुन की बीमार आंखों ने अत्यन्त दयनीयता के साथ यह सब देखा और उनसे एक साथ कई-कई गर्म लकीरें खिंचकर इधर-उधर फैल गयीं।

मतीन ने सोचा था कि अब तो सारा मसला यहीं हल हो जायेगा, लेकिन चपरासी ने सिर्फ़ खून-थूक की जांच का इन्तजाम करा दिया और बोला कि अब इन्हें घर ले जाओ। दवाई यहां से ले जाया करो। भरती करने की कोई जरूरत नहीं है। मतीन ने जब एक्स-रे के लिए कहा तो वह लगभग बिगड़ गया और बोला, "बीस ठे रुपल्ली में क्या सारा काम हो जायेगा ?"

मतीन अवाक् रह गया। नजबुनिया ने अलीमुन को सहारा देकर उठाया और तीनों लोग अस्पताल के मेन गेट की ओर बढ़ने लगे। फिर वे धीरे-धीरे चलकर सड़क तक पहुंचे, और बनारसवाली बस का इन्तजार करने के लिए एक पेड़ के नीचे बैठ गये।

29

सूर्यास्त हो चुका है और धीरे-धीरे अन्धकार गाढ़ा होता जा रहा है। पूरे इलाक़े में बिजली नहीं है। चार बजे से ही गायब है। नजबुनिया ढिबरी की बत्ती ठीक

कर रही है। अभी-अभी वह अपनी अम्मां किमें से लौटी है। इकबलवा कहीं गया हुआ है। आजकल न जाने कहाँ-कहाँ वह घूमने लगा है।

मतीन इस्तिजा करने के लिए अभी पाखाने की ओर जा ही रहा था कि नीचे से किसी के पुकारने की आवाज आयी। वह धड़धड़ाता हुआ नीचे उतर गया। वहाँ हनीफ, लतीफ, अल्ताफ, जमील, बशीर, शरीफ आदि कई लोग खड़े थे। क्या बात हो गयी आखिर? और यह हनिफवा कैसे आ गया इधर? कहीं कोई ख़ास मसला तो नहीं आ गया? कहीं इकबलवा ने तो कोई गड़बड़-सड़बड़ नहीं कर दी, कि लोग चढ़कर आये हैं बदला लेने के लिए।

वह फटी-फटी आँखों से सबको देख रहा था और बेहद घबरा गया था। लेकिन अल्ताफ ने फौरन ही उसकी घबराहट को समाप्त किया। उसने बताया कि कोठी-वालों के यहाँ आजकल जो बिला वजह की कटौती चल रही है, उसी को लेकर ये सारे लोग तुमसे बातचीत करने आये हैं।

मतीन आश्वस्त हुआ। उसने सबको भीतर बुलाया और सब लोग करघेवाले कमरे में आकर जमीन पर ही उकड़ूँ बैठ गये। कोठरी में बड़ा अँधेरा था। बिजली अभी तक नहीं आयी थी। मतीन उन्हें बैठाकर ऊपर गया और शीशी की बनी हुई एक ढिबरी जलाकर उसे हवा से बचाते हुए किसी प्रकार नीचे लेकर उतरा। ढिबरी करघे के पास रख दी गयी और बातचीत शुरू हुई। अल्ताफ ने किवाड़ उढ़का दिये।

पहले हनीफ ने अपने साथ हुई सारी घटनाओं का विवरण दिया और बहुत उत्तेजित होकर गाली-गलौज करने लगा। फिर लतीफ ने बताया कि उसकी साड़ी के दाम में भी कटौती हुई है।

मतीन खामोश रहा। उसे सब-कुछ पता था। कटौती का यह चक्र तो इलेक्शन के बाद से ही शुरू हो गया था।

मतीन थोड़ी देर तक कुछ सोचता रहा, फिर अचानक ही वह बहुत ज्यादा उत्साहित हो उठा। सोनारपुरावाला प्रसंग एक बार फिर उसके सामने साकार हो उठा। यानी वह लड़ाई वहीं नहीं खत्म हो गयी थी। और लड़ाई का सिर्फ़ वही एक पहलू नहीं था। यहाँ तो क़दम-कदम पर अन्याय है और कदम-कदम पर लड़ाई है…

"अच्छा म्याँ ठीक है, देखा जइए ! इ कटौती के खिलाफ भी हम लड़ेंगे। मगर पहले सब एक हो जाव। अब इ सब बरदास से बाहर हो गोवा है।"

मतीन ने अपने दाहिने हाथ को एक खास अन्दाज में सहराते हुए यह बात कही और करघे के पास रखी ढिबरी से अपनी-अपनी बीड़ी जलाकर लोग खड़े हो गये।

ठीक उसी क्षण बिजली आ गयी और पूरा कमरा प्रकाश से भर उठा। लोगों

ने जब बाहर निकलने के लिए दरवाज़ा खोला तो रोशनी की एक मटमैली-सी चादर गली तक तनी हुई दिखायी पड़ी।

30

हाजी अमीरुल्ला के पास दिल्ली से कामता बाबू का ट्रंककॉल आया है। बड़ी बुरी ख़बर है। केवल अंसारी बिरादरी के लिए ही नहीं, बल्कि पूरे सुन्नी समुदाय के लिए यह मर-मिटने का समय है। लोग अंसारी स्कूल के मैदान में इकट्ठा हो रहे हैं। कलक्टर साहब के बँगले का घेराव करना है।

दरअस्ल दोसीपुरा की एक मस्जिद और एक कब्रस्तान को लेकर पिछले कई बरस से एक मुक़दमा चल रहा था, जिसका अब सुप्रीम कोर्ट से फैसला हो गया है। वैसे तो कहा जाता है कि यह मुकदमा पिछले दो सौ वर्षों से चल रहा है और इसमें कई पीढ़ियाँ बरबाद हो गयी हैं, लेकिन इधर के कुछ बरसों में इसमें काफी तेज़ी आ गयी थी। हाजी अमीरुल्ला खुद भी इस मुक़दमे से जुड़े हुए हैं।

आज से लगभग ढाई सौ बरस पहले की बात है, जब हाजी अमीरुल्ला के लकड़दादा के कोई भाई शिया हो गये थे और तब से इनका खानदान दो समुदायों में विभक्त हो गया है। एक समुदाय सुन्नी है और दूसरा शिया। पहले इनकी एक निजी मस्जिद थी दोसीपुरा में और एक कब्रस्तान! शिया-सुन्नी का ख़ानदानी विभाजन हो जाने के बाद भी इन सार्वजनिक स्थानों को लेकर कुछ दिनों तक कोई झगड़ा नहीं रहा, लेकिन धीरे-धीरे बनारस शहर में जब ज़मीन की क़ीमत चढ़ती गयी तो दरार पैदा होने लगी और इस बात पर आपत्ति उठने लगी कि मस्जिदवाली कोठरी में ताजिया क्यों रखा जाता है? इसी तरह कब्रस्तान को लेकर भी आपत्तियाँ उठीं। दरअस्ल इस कब्रस्तान में शियों का एक इमामबाड़ा है और सुन्नियों की तीन प्रमुख कब्रें, जिनके बारे में ऐसा माना जाता है कि ये किन्हीं बुज़ुर्ग हस्तियों की कब्रें हैं। सो इधर इमामबाड़े में तो नौहा-मातम होता है और उधर कब्रों पर दिये जलाये जाते हैं, चादरें चढ़ती हैं और कव्वालियाँ गायी जाती हैं। इस पर एतराज़ हुआ।। ग़म के साथ-साथ खुशी नहीं मनायी जा सकती।

और मुक़दमा दायर हुआ। जज हुए सर सैयद। वे खुद आये बनारस मुआयना करने और मौके पर पहुँचकर उन्होंने पाया कि यह ज़मीन न तो सुन्नियों की है न शियों की, यह तो राजा बनारस की है। पर राजा बनारस ने अपनी ओर से जब

कोई खास दिलचस्पी नहीं दिखायी तो मुक़दमा दब-दबा गया। लेकिन कुछ दिनों के सन्नाटे के बाद अचानक ही यह मामला फिर उठ खड़ा हुआ और फिर मुक़दमेबाज़ी होने लगी।

अब एक ओर हैं हाजी अमीरुल्ला और दूसरी ओर मिब्ते हसन। पिछले दिनों कोर्ट ने आदेश दिया था कि मस्जिद में जो ताजियेवाली कोठरी है उसे सील कर दिया जाय और मुक़दमे के फ़ैसले तक क़ब्रस्तान में कोई भी धार्मिक क्रिया न की जाय।

लेकिन धार्मिक क्रियाएँ की गयी और कलक्टर के हुक्म से ही जब मस्जिद-वाली कोठरी का ताला खोला गया तो भीतर का ताजिया क्षतिग्रस्त पाया गया। ऐसा कैसे हुआ? ख़ुद कलक्टर भी हैरान! मामला और ज़ोर पकड़ गया। ग़नीमत रही कि लखनऊ की तरह यहाँ कोई शिया-सुन्नी फ़साद नहीं हुआ, केवल मुक़दमेबाज़ी चलती रही।

और अब सुप्रीम कोर्ट ने जो फ़ैसला दिया है वह यह है कि इमामबाड़े के पासवाली दो क़ब्रें सुन्नी समुदाय के लोग हटा लें।

"इ कइसे होइए म्याँ? क़बर कइसे हटिए!"

लोग उत्तेजित हैं। क़ब्र कैसे हटेगी? और फिर क़ब्र के भीतर हटाने के लिए बचा ही क्या होगा? जो लोग भीतर दफ़न होंगे उनकी हड्डियाँ भी तो न रह गयी होंगी देर। तब क्या हटाया जायेगा? क्या सिर्फ़ क़ब्र के निशान हटा देने मात्र से क़ब्रें हटी हुई मान ली जायेंगी? फिर कौन हटायेगा क़ब्र? कौन खोदेगा इन्हें?

"अज़ाब न होइए म्याँ!'

लोग सवाल-पर-सवाल उठा रहे हैं। कुरान-हदीस के हवाले दिये जा रहे हैं कि मज़हब की रू से यह ग़लत है। लेकिन दूसरी ओर से जवाबी तर्क दिये जा रहे हैं कि इतिहास में ऐसी घटनाएँ हुई हैं। ख़ुद मुमताज महल की क़ब्र दफ़न से उखाड़कर आगरा लायी गयी थी। लेकिन सुन्नी मौलाना इस तर्क को मानने के लिए तैयार नहीं। शिया ख़ुश है कि सुन्नियों की क़ब्रें उखड़ेंगी और सुन्नी दुखी हैं कि उनके आत्मीयों की रूहें तड़पेंगी; जबकि हाजी अमीरुल्ला इसलिए दुखी हैं कि इतनी ज़मीन पर अब उनका क़ब्ज़ा नहीं रहेगा और सिब्ते हसन इसलिए ख़ुश हैं कि इतनी ज़मीन उन्हें अब जाकर मिली, जिसके लिए कई पीढ़ियों की प्रतिष्ठा दाँव पर लग चुकी है।

-

सरकारी स्कूल में हज़ारों की भीड़ जुटी हुई है। लोग-ही-लोग। मैदान में, स्कूल की छत पर, चहारदीवारी पर, बाहर सड़क पर। चारों ओर लोग-ही-लोग नज़र आ रहे हैं। लुंगियाँ-ही-लुंगियाँ और टोपियाँ-ही-टोपियाँ। माहौल भड़भूँजे की भट्ठी

की तरह धधक रहा है।

कलक्टर को जब यह समाचार मिलता है तो वह दोनों समुदायों का ख्याल रखते हुए एक बयान जारी करता है और सम्बन्धित इलाके में सख्त पहरा लगा दिया जाता है। मस्जिद में सिर्फ़ नमाज के वक़्त ही जाया जा सकता है, जबकि कब्रस्तान में जाना एकदम वर्जित हो जाता है।

अब क्या हो? जो बुनकर अपना ताना-बाना उसी कब्रस्तान में फैलाया करते थे, अब वे कहाँ जायें?

इस सवाल का जवाब न हाजी अमीरुल्ला के पास है और न सिब्ते हसन के पास। बुनकर अपना ताना-बाना लिये थोड़ी-सी खुली हुई जगह के वास्ते भटक रहे हैं, ताकि वे अपने धागे सुलझा सकें और अपनी साड़ियाँ बना सकें। अपनी बीवियों के लिए दवाइयाँ ला सकें और अपने बच्चों के लिए अंसारी स्कूल की फीस जुटा सकें।

31

"तो साहबो सुना आपने? जहाँ एक काफ़ी बड़ा तबका अपनी रोजी-रोटी के लिए परेशान है, वहीं चन्द आरामपसन्द लोग एक कब्रस्तान के लिए लड़ रहे हैं···"

इकबाल चौराहे पर खड़ा होकर भाषण दे रहा है।

"हजरात! हमें अपने हक के लिए खुद लड़ना होगा। आप जानते हैं कि जिस बनारसी साड़ी की धूम पूरी दुनिया में है—आज से नहीं सैकड़ों बरस से—और जिसके बल पर इन बड़े-बड़े गिरस्ता लोगों की बिल्डिगें तनी जा रही हैं, एशो-इशरत के सामान से इनके घर भरे जा रहे हैं, उस साड़ी को बनानेवाले हम हैं। हम, जो बगैर नलवाली सीलन भरी कोठरियों में रहते हैं और ईद पर सेवईं कैसे आयें, नये कपड़े कैसे बनें, इसके लिए दूसरों का मुंह जोहते हैं। कर्ज के बोझ से हमारे कन्धे जमीन तक झुक गये हैं। हमारे करघे क़र्ज़ पर, रेशम कर्ज पर—सब कुछ क़र्ज़ पर। और बदले में हमें क्या मिलता है?

"अपनी ज़िन्दगी में खुशहाली लाने के लिए पिछले बरसों में मेरे अब्बा और रऊफ़ दादा ने मिलकर कितनी कोशिशें की थीं कि एक सोसायटी बन जाय, जिसे सरकार की सहायता मिल सके, लेकिन इन सरमायादारों ने वह सोसायटी खुद बना ली—फ़र्ज़ी तरीके से आप ही लोगों को नकली मेम्बर बनाकर! और आप

कुछ नहीं कर सके। हज़रात! क्या आपको यह मालूम नहीं है कि आपकी मेहनत को यहाँ किस दर पर ख़रीदा जाता है? आप लोगों की साड़ियों में तरह-तरह के ऐब निकालकर आपकी मजूरी कम कर दी जाती है और अब तो कटौती का नया ही चक्कर चल गया है। साड़ी पीछे बिला वजह बीस-बीस, पच्चीस-पच्चीस रुपये काट लिये जाते हैं, जिसका राज कोई नहीं जानता!

"... इसके लिए हमें एक होकर लड़ना होगा..."

"ठीक बोलेते म्यां!" बीच में एक श्रोता टिप्पणी करता है तो दूसरा केवल सिर हिला देता है। बोलता कुछ नहीं।

"आप मेरे सवाल का जवाब दीजिए। जिस बनारसी साड़ी को आप खून-पसीना एक करके, अपनी मेहनत और फ़न से तैयार करते हैं, क्या उस साड़ी को आपके घर की औरतें भी पहन सकती हैं? बोलिए, आप में से कितने लोगों के पास बनारसी साड़ियाँ हैं?"

सन्नाटा!

"और अगर नहीं हैं तो क्यों? ऐसा क्यों है कि ईद के रोज़ आपकी बीवी मामूली कपड़े के सलवार-कमीज़ से ही अपना तन ढाँकती है? तो यह मेहनत किसके लिए? यह फ़न किसके लिए? दोस्तो! आज आप तय करें कि इस निज़ाम को आप बदलकर रहेंगे।"

तालियाँ।

"लेकिन निज़ाम ऐसे नहीं बदल जायेगा। उसके लिए अपने में सुधार करना ज़रूरी है। पहली बात तो ये कि हम एक हों! जाती मक़सद को छोड़कर अपने हक़ के लिए एकजुट होकर लड़ें। और दूसरी बात यह कि हम अपनी समाजी बुराइयों को ख़त्म करें। सोचिए, सारी दुनिया में जबकि लड़कियाँ पढ-लिखकर बड़ा-से-बड़ा बन रही हैं, हमारे घरों की लड़कियाँ सिर्फ़ कुरान पढ़-पढ़कर पर्दों में बैठी कतान फेर रही हैं। उन्हें टी. बी. हो जाती है और उनकी ज़िन्दगी ज़हर हो जाती है। बात-बात में हमारे यहाँ तलाक़ हो जाता है और हमारे कितने ही भाई ताड़ी पी-पीकर बिला वजह अपना दिमाग ख़राब किया करते हैं। लड़कों को भी ज़्यादा न पढ़ाकर उन्हें जल्दी ही साड़ी की पेटियाँ थमा दी जाती हैं... मैं यह नहीं कहता कि वे अपना काम न करें, करें, लेकिन अपने पुश्तैनी धन्धे के साथ-साथ हमें तरक़्क़ी करती हुई दुनिया के साथ भी चलना होगा, तभी अपने हक़ के लिए लड़ने का जज़्बा हमारे भीतर पैदा हो सकता है, वरना नहीं। अगर अभी से हम नहीं चेतते तो यह सरमायादाराना निज़ाम हमें ख़त्म करके दम लेगा। इसलिए आप हज़रात से मेरी पुरज़ोर अपील है कि यह सरमायादाराना निज़ाम इससे पहले कि हमें मिटाये, हम ख़ुद इसका काम तमाम कर दें..."

'दुनिया के मज़दूरो—

—एक हो !'

इकबाल का भाषण ख़त्म होते ही अल्ताफ ने यह सुना-सुनाया नारा लगाया और वातावरण तालियों की गड़गड़ाहट से गूंज उठा। भीड़ में खड़ा मतीन मुस्करा उठा।

"इ त बड़ा बोले लगा है म्यां !"

भीड़ में चलते-चलते किसी ने कहा तो दूसरे व्यक्ति ने इस ढंग से मुँह बिचकाया जैसे किसी ने उसके मुँह में कुनैन की गोलियां डाल दी हों।

"इ अल्तफवा सबके खराब करेते !"

"इ त बड़ा सीन-काफ से बोलेते म्यां, एद्‌दम अंगरेजी तकरीर करेते।"

"इ मतीन क बेटउवा बड़ा चरफर निकलिये म्यां !"

लोग तरह-तरह की टिप्पणियां कर रहे हैं और एक-दूसरे को धकियाते हुए चले जा रहे हैं। अचानक पीछे से दौड़ता हुआ हनीफ का लड़का बिराहिम आगे आ जाता है और उर्दू अखबार 'हयात' की एक-एक कापी कुछ लोगों के हाथों में थमा देता है। लोग टिप्पणियां करना छोड़कर अखबार पढ़ने में लीन हो जाते हैं।

32

औरतों की भारी भीड़ बहेलिया टोले की ओर उमड़ी पड़ रही थी। तलउवा चउमुहानी से लेकर उधर कुतुबन शहीद तक औरतें दिखायी पड़ रही थीं। उस भीड़ में कमरून भी एक पुराना-सा-रंग उड़ा नकाब ओढ़े चली जा रही थी।

बहेलिया टोला की शुरुआत चन्द तोतों, बत्तखों और सफेद रंग के चूहों से होती है। आगे चलकर पिंजड़ों में बन्दरों के बच्चे, सफेद खरगोश और तरह-तरह की लाल-पीली चिड़ियाँ भी चह-चह करती हुई दिखायी पड़ती हैं। यहाँ से इन जीवों का बाक़ायदा व्यापार होता है। ये जीव इसी प्रकार पिंजड़ों में बन्द करके रेलवे द्वारा देश के विभिन्न हिस्सों में और हवाई जहाज द्वारा विदेश में भेजे जाते हैं। एक साधारण बहेलिया भले ही कभी विदेश की शक्ल न देख सके, लेकिन उसका पकड़ा हुआ तोता अमेरिका से लेकर जापान तक की सैर कर लेता है।

इस मुहल्ले की गलियों में अगर ज़िन्दा जीवों का कलरव सुनायी पड़ता है तो यहाँ की नालियों में मरे हुए पंछी भी बहते हुए दिखायी पड़ जाते हैं। घरों की पालतू मुर्गियाँ उन पर चोंच मारकर अपनी हिकारत का प्रदर्शन करती हैं और

अपना सारा दुःख भूलने में तल्लीन हो जाती है।

इस मुहल्ले के पास ही वह जगह है, जहाँ मुसलमानों के अन्तिम पैग़म्बर हुज़ूर सल्लल्लाहो अलैहे वसल्लम की दाढ़ी का पवित्र बाल एक मस्जिद में शीशे के फ़्रेम में रखा हुआ है। साल में एक बार मस्जिद की वह कोठरी खोली जाती है और अपने नबी के मूरे-मुबारक को देखने के लिए भीड़ लग जाती है। इस भीड़ में—जैसा कि हर भीड़ में होता है—स्त्रियों की तादाद ही सबसे ज्यादा होती है। और उनके अलावा कुछ नौजवान लौंडे भी अपनी श्रद्धा के सुमन अर्पित करने पहुँच जाते हैं।

कमरुन उस धक्कम-धुक्का में निकलकर बाहर आयी तो शाम हो चली थी। वह जल्दी-जल्दी क़दम बढ़ाती हुई अपनी कोठरी की ओर भागने लगी। शरिफ़वा गिरस्ता के यहाँ साड़ी लेकर गया था। अब तक आ गया होगा। 'चलके पकावे-बनावे के है।' दोपहर में भी लड़के ने ठीक से खाना नहीं खाया था।

और अचानक ही उसे अपने दूसरे बच्चों की याद आ गयी। अब तो वे एकदम से यतीम हो गये हैं। दिन में तो अफ़्तउनिया पका-खिला देती होगी पर रात में सब क्या करते होंगे? वही बासी-कूसी खाकर सो जाते होंगे या तहरुनिया कुछ बना-बना लेती होगी, पर उसे ढंग ही कहाँ है अभी। सबसे ज्यादा फ़िक्र तो कुद्दूस की है। वह तो अभी बहुत ही नादान है। एक दिन सड़क पर से उसने देखा था, छत पर वह पतंग उड़ा रहा था। मन तो हुआ कि पुकारे, पर लतीफ़ के डर से खामोश रही। अगर वह अपना एक और ब्याह कर लेता तो भी ठीक था। मार के चाहे गरिया के, नयी अम्माँ कम-से-कम खाना-वाना तो उसके बच्चों को देती···

कमरुन का अंग-अंग थकान से टूटने लगा था। वह घर पहुँचकर फ़र्श पर निढाल हो गयी।

तभी शरिफ़वा भी आ गया और मन मार के बैठ गया।

"का भोवा रे?"

"भोवा का?" वह मानो गुस्से में था।

कमरुन सन्न! यह मेरे ऊपर काहे गुस्सा रहा है!

"सीधे-सीधे बतउते काहे नाँही रे कि का भोवा?"

और शरीफ़ ने शुरू से अन्त तक सारा किस्सा सुना दिया कि किस प्रकार हाजी अमीरुल्ला ने एक और नकली सोसायटी बना ली है जिसके जरिए वे सरकार से हमारे नाम पर रुपया भी ले रहे हैं और हमारे माल की आड़ में को-ऑपरेटिव के जरिए अपना माल बेच रहे हैं और सारा फ़ायदा हड़प कर जा रहे हैं। सरकार का कहना है कि सरकारी ख़रीद को-ऑपरेटिव के जरिए होगी, जिसमें साधारण

बुनकरों के द्वारा बनायी गयी साड़ियाँ खरीदी जायेंगी, ताकि उनको अपनी मेहनत का पूरा फायदा मिल सके। लेकिन बीच में ये जो हाजी साहब लोग हैं, इन्होंने सारा कानून-क़ायदा अपनी मुट्ठी में बन्द कर रक्खा है। लगभग सभी बड़े गिरस्तों ने नकली सोसाइटियाँ बनायी हैं और आम बुनकरों का माल खुद लेकर उसे को-ऑपरेटिव के ज़रिए ऊँचे दामों में बेचकर पूरा मुनाफा हजम कर जाते हैं। इकबलवा का कहना है कि इसके खिलाफ हमें लड़ना होगा।

"अरे बस-बस चुप रहो। कुछ उनके बाप लड़े रहेन कुछ ऊ लड़िएँ। अउर इ सरकार? इ सरकारै त सब करावेली। उहै कायदा बनावेली अउर उहै इन्हें रास्ता बतावेली कि अब अइसे लूटो।" कमरुन ने दीवार के सहारे अपनी पीठ टेकते हुए कहा और उठकर चूल्हे की ओर चली गयी। उसने वहाँ थोड़ी देर तक कुछ खड़र-भड़र किया और फिर बाहर निकलकर बर्तन माँजने बैठ गयी।

"के?"

अचानक शरीफ चौंके। उसे लगा कि अँधेरे में कोई खड़ा है और लड़खड़ा रहा है। वह उठा और जैसे ही आगन्तुक के पास पहुँचा, वह धड़ाम से जमीन पर गिर चुका था। शरीफ उस गिरे हुए व्यक्ति पर झुक गया और चीख उठा—"अब्बा!"

कमरुन थोड़ी देर तक गुमसुम-सी बैठी रही, फिर न जाने क्या सोचकर उठी और हाथ धोकर खुद भी लतीफ के पास पहुँच गयी। वह ताड़ी के नशे में धुत था।

दोनों, माँ-बेटे ने उसे उठाया और कोठरी में ले आये। कमरुन उसका नशा उतारने के लिए देशी उपाय करने लगी। वह भूल गयी कि वह एक तलाक़शुदा औरत है और जिस आदमी की सेवा-टहल में वह लगी है वह अब उसका शौहर नहीं है और वह उस पर हराम हो चुका है।

33

घर आते ही हाजी अमीरुल्ला ने अपने सभी भाइयों से सम्पर्क किया और आनन-फानन में यह तय हो गया कि एक ग्रैण्ड किस्म की पार्टी होनी चाहिए। दरअस्ल हाजी अमीरुल्ला इस बार दो-दो फतेहयाबियाँ हासिल करके लौटे हैं और यह उनके लिए बहुत बड़ी बात है। अब बनारस के बिरादरीवाले समझेंगे कि वे भी कोई चीज हैं!

दरअस्ल इस बार अपने ही रिश्तेदार के मुकाबले में हाजी अमीरुल्ला भी लड़ गये—यू. पी. हैण्डलूम बोर्ड के अध्यक्ष पद के लिए और ताल-तिकड़म से वे विजयी भी हो गये। सबसे बड़ी फतेह तो यही है। इसके साथ ही 'बुनकर बहबूदी फण्ड' बनाना भी उनका काम शरफुद्दीन और कामता के सहयोग से हो गया। दरअस्ल यह फण्ड गरीब बुनकरों को आर्थिक सहायता दिया करता है। और हाजी अमीरुल्ला बहुत दिनों से सोच रहे थे कि बनारस के अन्य गिरस्तों की भाँति ही वे भी कुछ गरीब बुनकरों के मसीहा बन जायें, ताकि उनके नाम पर फण्ड का एक अच्छा-खासा हिस्सा हथियाया जा सके। और उनकी यह मनोकामना शरफुद्दीन के एम. एल. ए. होते ही पूरी हो गयी। सो खुदा जबकि खुद रास्ता बना रहा है तो उसका फायदा लेने से क्यों चूकें? फिर मजहबी रूप से भी यह ठीक है, क्योंकि आखिर इस धन का इस्तेमाल वे गरीब बुनकरों के लिए ही तो करेंगे। कुछ और बच्चे गड़वा देंगे। कुछ और पावरलूम बैठा देंगे। कुछ जरदोजी का काम शुरू करा देंगे। एक ठे कनवेण्ट इस्कूल खुलवा देंगे—इंगलिश मीडियम…! बहुत दिनों से सोच रहे हैं कि दरिया पार पड़ाव या दुलहीपुर के इलाके में कुछ जमीन खरीदकर उसे गरीब बुनकरों के हाथों थोड़े मुनाफे के साथ बेच दें, सो वह भी अब हो जायेगा। आखिर यह सब क्या वे अपने लिए करेंगे? इससे उन्हीं लोगों का तो फायदा होगा जो बे-घर-बार हैं, वे सरो-सामान हैं। कुरआन में अल्लाह तआला फरमाता है कि जो बे-यारो मददगार हैं, उनकी मदद करो। इस्लाम की यही बुनियाद है।

सो इस्लाम की बुनियाद को दृढ़ करने के उद्देश्य से हाजी अमीरुल्ला ने जो धनराशि हड़पी थी उसका एक क्षुद्रांश दावत के रूप में खर्च कर देना उन्होंने बेहद जरूरी समझा। 'अरे बुरचोदी के जब तक जिन्दगी है खा-खिला लो, वरना इस दुनिया-ए-फ़ानी का क्या ठिकाना?'

और दावत वग़ैरह से फारिग होकर एक रोज हाजी अमीरुल्ला अपने छोटे भाई हाजी हबीबुल्ला को लेकर पड़ाव की ओर निकल गये—जमीन देखने के लिए।

मुगलसराय रोड पर, पड़ाव से लेकर दुलहीपुर तक, सड़क के किनारे-किनारे जो खेत हैं, उनमें से कई टुकड़े बिक रहे हैं और बनारस शहर के गरीब बुनकर—जिनकी आधी जिन्दगी किराये की कोठरियों में कट गयी है—उन्हें खरीदने के लिए चक्कर लगा रहे हैं। इस जमीन का कुछ हिस्सा बरसात में चूँकि पानी में डूब जाता है इसलिए यह सस्ते में बिक रही है, वरना एक गरीब बुनकर तो कल्पना ही नहीं कर सकता कि जमीन खरीदकर अपना मकान बनवाये!

पिछले दिनों हनीफ, अल्ताफ, बशीर तथा मतीन इधर आये थे और एक खेत

को देख गये थे। दो हजार रुपये बिस्वा की बात हुई थी मालिक से
हबीबुल्ला को वह जमीन पसन्द आ गयी और उन्होंने ढाई हजार
दिया।

उस वक्त उस खेत में फसल लहरा रही थी और खेत के किना
का झाड़ खड़ा था उसी के नीचे हाजी अमीरुल्ला, हाजी हबीबुल्ला
मालिक बैठे थे। ढाई हजार सुनकर मालिक की नीयत बदल
अमीरुल्ला मुस्करा उठे थे। खुदा जिसकी मदद करना चाहता है,
है!'

···मतीन बिफर उठा था···

तो इसका मतलब यह कि जो-जो चीज हम चाहेंगे वही-
अमीरुल्ला भी चाहेंगे! हूँ!

मतीन की भौंहें तनी हुई थीं और ओंठ फड़क रहे थे। अ
हाजी अमीरुल्ला को थोक के भाव गालियाँ बक रहे थे! बशीर

उठते ही उसने अलीमुन को दुबारा अस्पताल की दवाई पिला दी है और इकबाल के लिए नाश्ता बनाकर मशीन के सामने बोलादा चलाने बैठ गयी है। उसे पूरा विश्वास है कि मशीन को जुकाम हुआ है और कुछ नहीं।

इकबाल नाश्ता करके, पेटी लेकर गोलघर जाने के लिए तैयार होता है तो हाथ के इशारे से अलीमुन उसे अपने पास बुला लेती है। इकबाल अम्मा की चारपाई पर बैठ जाता है और उसके सूखे हुए चेहरे को एकटक देखने लगता है। अलीमुन इशारे से ही पेटी खोलने के लिए कहती है तो इकबाल पेटी का ढक्कन हटा देता है और साड़ी निकालकर ऊपर रख लेता है। अलीमुन की दुबली-पतली सूखी हुई उँगलियाँ साड़ी पर इधर-उधर फिरने लगती हैं और उसकी आँखों में एक विचित्र प्रकार की चमक उत्पन्न हो जाती है। मतीन ने इस बार लाल रंग की तानी पर सुनहरे कतान से बड़े सुन्दर-सुन्दर फूल बनाये हैं। ऐसा लगता है मानो लालमनि की घाटी में सोने की कलियाँ खिली हुई हैं। अलीमुन उन कलियों को अपनी आँखों में जैसे बसा लेना चाहती है। अपने शौहर के श्रम को मानो वह आत्मसात कर लेने की इच्छा से ही उसके एक-एक धागे को इस तरह छू रही है जैसे वह धागा न होकर उसके अपने पेट का पैदा कोई मासूम शिशु हो—लाल-लाल, प्यारा-प्यारा!

"अम्मा अब की इदिया पर तोरे खातिर अइसने सड़िया सिलाएँगे!" इकबाल बोलता है तो माँ के स्याह पड़े होंठों पर एक सूखी-सी मुस्कान तिर जाती है और वह इशारा करती है कि इकबाल उस साड़ी को दुबारा पेटी में रख ले। इकबाल साड़ी को डिब्बे में बन्द कर लेता है।

"जाव!" अलीमुन बोलती है और आँखें बन्द कर लेती है। इकबाल पेटी बगल में दबाकर निकल जाता है।

सेठ गयाधर प्रसाद ने इकबाल को नकद पैसा देना तो स्वीकार कर लिया, पर कटौती के पचीस रुपये काटकर!

उसका दिमाग भन्ना उठा!

वह साड़ी लेकर बाहर निकल आया।

गली के मुहाने पर खड़ा कमरुद्दीन फौरन उसकी ओर आकर्षित हुआ और पास बुलाकर कहने लगा कि वह अपनी साड़ी उसके हाथ बेच दे, लेकिन इकबाल ने इनकार कर दिया।

फिर वह कहाँ जाय? सरकारी को-ऑपरेटिव की भी यही हालत है। किसी गिरस्ता की गद्दी पर जाना भी फ़िज़ूल है। हर जगह गिद्ध बैठे हैं। गद्दी-गद्दी पर, दुकान-दुकान पर!

वह दूसरे सेठ की गद्दी पर पहुँचा, लेकिन कटौती का चक्र वहाँ भी चल रहा था।

तब इकबाल पुनः सेठ गजाधर प्रसाद की गद्दी पर लौट आया। यहाँ उसे नक़द पैसे देने की बात मान ली गयी थी, और जगह तो वही चेक मिलता—एक महीने बाद भुननेवाला।

सेठ गजाधर प्रसाद मुस्कराये। साड़ी की पेटी उन्होंने रख ली और कटौती की राशि काटकर बाक़ी पैसे इकबाल के हाथों में थमा दिये।

गोलघर से निकलकर इकबाल जब मालवीय मार्केट की ओर बढ़ रहा था तो गुस्से से उसकी आँखें जल रही थीं। वह पछता रहा था। उसने ग़लती की। साड़ी उसे नहीं बेचनी थी, अपनी माँ को दे देनी थी। जब वह छोटा था, तभी से माँ की लालसा को वह देखता आ रहा था। छिः! दुनिया-भर के लिए साड़ी बिनकर देने-वाले घर की औरत को एक सस्ते दामवाली बनारसी साड़ी भी नसीब नहीं! पूरी उम्र कट गयी सूती धोतियों और छींट की सलवार-क़मीज पर! अरे जैसे इतना क़र्ज़ है, वैसे ही कुछ क़र्ज़ और चढ़ जाता और क्या! आज कैसी तो चमक थी अम्मा की आँखों में! साड़ी पर किस तरह उसकी उँगलियाँ फिर रही थीं—जैसे कोई भूखा बच्चा रोटी पर अपना हाथ फेरे!

इकबाल का रोम-रोम क्रोध और दुःख से जलने लगा। उसके क़दम तेज़ हो गये। इस कटौती के ख़िलाफ़, इस पूरी साजिश के ख़िलाफ़ कुछ-न-कुछ करना ही होगा। आज ही वह अब्बा से इस सिलसिले में बात करेगा और अपने साथियों से भी।

लेकिन घर का तो नज़ारा ही और था। नजबुनिया दहाड़ मार-मारकर रो रही थी और मतीन बुख़ार में काँपता हुआ बुरी तरह सिसक रहा था। गली में मुहल्लेवालों की भीड़ बढ़ती ही जा रही थी। इकबाल का दिल तेज़-तेज़ धड़कने लगा।

"का भोवा बच्चा ?"

किसी से उसने पूछा तो उस व्यक्ति की आँखें भर आयीं। डबडबायी हुई आवाज़ में उसने जवाब दिया, "तोरी अम्माँ नहीं रहीं!"

35

कब्रस्तान में माई ने जैसे ही चहारुम की घोषणा की, इकबाल ने अपने सिर को एक हल्का-सा झटका दिया और अगले ही क्षण उसके दिमाग में माँ के शोक से अलग कुछ दूसरे ही विचार चक्कर काटने लगे।

वह उसी मनःस्थिति में घर लौटा!

नजबुनिया ने चाहा कि इकबाल को अँकवार में भरकर वह खूब रोये, लेकिन अब तक वह अपने दिल को खूब मजबूत कर चुका था। उसने खुद अपनी विमाता को सान्त्वना दी और खटिया बिछाकर उस पर गुमसुम-सा बैठ गया। मतीन मातमपुर्सी के लिए आये हुए लोगों से व्यस्त रहा।

जुमेरात के दिन चहारुम था। फ़जिरवाद से ही नीचे कारखानेवाली कोठरी में लोगों की भीड़ जमा होने लगी थी। कुरआन के सिपारों की पेटी मस्जिद से आ गयी थी और हर आदमी एक-एक पारा लेकर सिर हिला-हिलाकर कुरआन पढ़ने में मशगूल हो गया था। कुछ लोग पंजा[1] पढ़ रहे थे और मृतात्मा को सेत-सून अर्पित कर रहे थे। कोठरी में 'सुगन्ध शृंगार' अगरबत्ती की सुगन्ध भरी हुई थी।

जब कुरआन ख्वानी ख़त्म हुई तो तबर्रुक बाँटा गया और लोग अपने-अपने हिस्से की जलेबी ले-लेकर अपने-अपने घरों को चले गये। सिर्फ चन्द फ़कीर अपना खाना लेने के उद्देश्य से बैठे रहे। ऊपर औरतें भी जमी हुई थीं। नजबुन अपना सिपारा ख़त्म करके तबर्रुक का हिस्सा लगाने में जुटी हुई थी। जो लोग जा रहे थे, वे चलते-चलते मतीन को ढाढ़स बँधाते जा रहे थे और वह सिर हिला-हिलाकर अपना शिष्टाचार प्रकट कर रहा था।

लेकिन इकबाल इन सारे कर्मकाण्डों से अलग-थलग ऊपर एक कोने में बैठा हुआ था और कुछ सोच रहा था। नजबुन ने एक बार उससे भी कहा कि वह भी एक सिपारा लेकर पढ़ डाले और माँ को बख्श दे, लेकिन उसने इनकार कर दिया। नजबुनिया इस पर बिगड़ी तो उसने अत्यन्त दृढ़तापूर्वक कह दिया, 'यह सब ढोंग है। मरनेवाला मर गया। अब उसके लिए कोई एक कुरआन नहीं, दस कुरआन पढ़ दे; उससे क्या होनेवाला है? यह सब सरमायादारों का बनाया हुआ ढकोसला है। खाने-पीने का धन्धा। हमें जो करना चाहिए उसपर तो हम गौर नहीं करते, उल्टे तरह-तरह के फ़ालतू कामों में फँसे रहते हैं।'

1. एक रिवाज।

और आस-पास बैठी हुई औरतों में से किसी ने उसे डाँट दिया, 'ऊ दहरियन[1] जैसी बात काहे करे तो, अल्ला मियाँ के बुरा लगिये !'

मगर इकबाल पर कोई असर नहीं पड़ा। वह उसी तरह चुपचाप बैठा रहा।

और कुरआन ख्वानी का सिलसिला ख़त्म होते ही वह घर से निकल पड़ा। उसने शरिफवा से मुलाकात की। फिर हनीफ के लड़के बिराहिम से मिला और फिर बशीर के यहाँ जाकर मुनुवा को बुला लाया और एक सुनसान चबूतरे पर आकर सब बैठ गये। कुछ बरस पहले मतीन के नेतृत्व में लतीफ, अल्ताफ, बशीर, रऊफ चचा आदि लोगों ने अपनी खुशहाली के लिए एक कानूनी योजना बनायी थी, जिसमें वे असफल रहे थे। आज दूसरी पीढ़ी के लोग फिर एकजुट होकर बैठे हैं और अपने शत्रुओं से निपटने के लिए विचार-विमर्श कर रहे हैं।

इकबाल के अल्फाज़ अंगारों की तरह जल रहे हैं—

"यह कटौती, यह साजिश, यह बद-इन्तज़ामी ख़त्म होनी चाहिए। सरमायादारों की तिकड़में अब टूटनी चाहिए और आम बुनकरों को उनका हक़ मिलना ही चाहिए। हमारे बापों ने भले सबकुछ बर्दाश्त किया, पर हम नहीं करेंगे। हम मुज़ाहमत[2] करेंगे।"

"इकबाल ठीक कहेतेन !" बिराहिम ने उसके वक्तव्य का समर्थन किया और उन नौजवानों के चेहरों पर क्षण-भर में ही तनाव की गहरी रेखाएं उभर आयीं। सूर्य की किरनों ने उन रेखाओं में एक अजीब-सी चमक पैदा कर दी और लगा कि ये लौंडे कुछ करके रहेंगे !

"कहाँ गये रहेव ?"

"गये रहे जहन्नुम में !"

हनीफ गुस्से में था। वह तेज-तेज चल रहा था और रास्ते में जो भी उसे टोकता था, वह उसी पर बरस पड़ता था।

वह को-ऑपरेटिव से लौट रहा था। वहाँ एक हफ्ता पहले वह अपनी साड़ियाँ दे आया था इस उम्मीद में कि जब बनारसी साड़ियाँ एक्सपोर्ट की जायेंगी तो उसका माल भी साथ में भेज दिया जायेगा, लेकिन उस रोज उसे मालूम हुआ कि

---

1. भौतिकवादी।
2. प्रतिरोध।

सेठ गजाधर प्रसाद, हाजी अमीरुल्ला, हाजी कलीमुल्ला और ऐसे ही अनेक लोगों की गाड़ियाँ भी सिंगापुर और बैंकाक के लिए एक्सपोर्ट हुई हैं, पर उनका माल को-ऑपरेटिव में ज्यों-का-त्यों पड़ा है। यह गजब हुआ।

बुनकरों की सुविधा के लिए सरकार ने बनारस शहर में लगभग दो सौ सहकारी समितियाँ गठित की हैं, जिनके माध्यम से यहाँ के आम बुनकरों का माल बाहर के बाजार में अच्छे दामों पर बिक सके, लेकिन ऐसा हो नहीं पा रहा है। पहले तो ये सारी-की-सारी समितियाँ ही कारगर नहीं हैं, केवल डेढ़ सौ के करीब सहकारी समितियाँ ही चालू हालत में हैं और इनका हाल यह है कि केवल बड़े-बड़े सरमायादारों का माल तो ये निर्यात करती हैं पर छोटे बुनकरों का माल ज्यों-का-त्यों पड़ा रह जाता है। हनिफवा भी इतने दिनों तक हाजी अमीरुल्ला के पीछे लगा रहा, लेकिन एकाध बार के अलावा कभी उसका माल बाहर के मार्केट में नहीं गया।

दरअसल ये जितनी भी समितियाँ बनी हुई हैं, इनमें से अधिकांशतः नकली हैं। बड़े-बड़े गिरस्तों ने बुनकरों के फर्जी दस्तखत बनाकर सोसाइटियाँ बना ली हैं। इन सोसाइटियों के माध्यम से पहले तो इन्होंने रिजर्व बैंक से अच्छी-खासी धन-राशि वसूल की और अब इन्हीं के जरिए अपना माल एक्सपोर्ट कर रहे हैं। मतीन ने कितनी कोशिश की थी कि वह भी आम बुनकरों की एक सोसायटी कायम कर ले, लेकिन इन बड़कवों ने उसे कामयाब नहीं होने दिया। उस वक्त हनीफ की मति भी मारी गयी थी और उसने मतीन की मुखालिफत की थी।

हनीफ को अपने पूर्व कृत्यों पर उस रोज बड़ा पछतावा हो रहा था और वह आत्मग्लानि में गड़ा जा रहा था। उसे रह-रहकर हाजी अमीरुल्ला और सेठ गजाधर प्रसाद पर क्रोध आ रहा था और रास्ता चलते हुए अपना क्रोध वह खिस-खिस पर उतारता चल रहा था।

जोहर की नमाज़ के बाद एक सभा होती है चौराहे पर। बुनकरों की यह पहली सभा है जो चौराहे पर हो रही है और जिसमें बूढ़े-जवान सभी विद्यमान हैं। भीड़ को देखकर लगता है कि इस शहर के बुनकर अब वाकई मैदान में उतर आये हैं। सभा के आरम्भ में रऊफ़ चचा एक छोटी-सी टिप्पणी करते हैं, फिर मतीन बोलता है। वह अपनी तकरीर सोसायटी के लिए किये गये अपने संघर्ष से शुरू करता है और मौजूदा हालात पर चर्चा करते हुए अपनी बात खत्म कर देता है। बीच में हनिफवा भी कुछ टिपिर-टिपिर बोलता है और अन्त में बाकायदा संगीत के साथ इकबाल खड़ा होता है—

"साथियो,

मैं अपनी बात वहाँ से नहीं शुरू करूँगा जहाँ पर आकर सारी बातें ख़त्म हो जाती हैं, बल्कि अपनी बात मैं वहाँ से शुरू करूँगा जहाँ से हम बुनकरों की हिस्ट्री शुरू होती है। साथियो ! कहा जाता है कि हम लोग महाराजा अशोक के ज़माने में अरब से हिन्दोस्तान आये थे और यहाँ काशी में हमने अपना कारोबार शुरू किया था। उस मुल्क में औरतों को सोने से बड़ा लगाव था। वे सोने के गहनों से लदी-फँदी होती थीं। यह देखकर हमारे आबाओ-अजदाद (पूर्वजों) ने सोने को महीन धागे में तब्दील किया और उस धागे से सुनहरी साड़ियाँ बनायीं। सोने के असली तारोंवाली ये साड़ियाँ देश-देश में जाकर 'बनारसी साड़ी' के नाम से मशहूर हुईं। इस तरह हमारी काशी नगरी ने एक ऐसे आर्ट को जनम दिया जिसने पूरी दुनिया को हैरत में डाल दिया। और हम देखते हैं कि धीरे-धीरे हमारा यह शहर जरीदार साड़ियों का मशहूर एक्सपोर्टर हो गया।

"आप लोगों को, पता नहीं मालूम है कि नहीं, कि सिर्फ़ 'सेण्ट्रल सिल्क बोर्ड, बनारस' के ज़रिए पिछले साल एक करोड़ पच्चीस लाख रुपयों का माल एक्सपोर्ट हुआ। क्या आप समझते हैं कि यह माल यहाँ के गिरस्तों ने तैयार किया था ? जी नहीं, यह माल आपका था। आपने इसे तैयार किया था। आपने ये डिज़ाइनें बनायी थीं। यहाँ रऊफ़ दादा बैठे हैं। उनसे पूछिए कि उन्होंने साड़ियों की कितनी डिज़ाइनें बनायी हैं अब तक। शायद उन्हें भी न मालूम होगा, क्योंकि यह सिर्फ़ बनारसी बुनकर की ही ख़ूबी है कि अगर वह पाँच हज़ार साड़ियाँ बनाता है तो उसकी पाँच हज़ार अलग-अलग डिज़ाइनें होती हैं। लेकिन डिज़ाइनों के बादशाह रऊफ़ दादा को क्या मिला ? उनके आर्ट की क्या कीमत दी गयी उन्हें ?

"आप जानते हैं कि पूरे बनारस शहर में क़रीब दो लाख बुनकर हैं और क़रीब चालीस हज़ार करघे यहाँ चलते हैं। अब तो पावरलूमों की धूम है, लेकिन सिर्फ़ करघों की मदद से तक़रीबन पच्चीस-तीस करोड़ रुपयों की रेशमी साड़ियाँ हर साल आप लोगों की मेहनत से यहाँ तैयार होती हैं, पर आपको क्या मिलता है बदले में ? सिर्फ़ एक लुंगी ! भैंस का गोश्त ! और नंग-धड़ंग जाहिल बच्चे ! टी. बी. की बीमारी से छटपटाती हुई औरतें ! इससे ज़्यादा और क्या मिलता है ? क्या दिल्ली-बम्बई, सिंगापुर-बैंकाक और फ्रांस-अमेरिका के बाज़ारों में आपकी बुनी हुई साड़ियाँ ख़रीदनेवाले लोग यह जानते होंगे कि आप यहाँ कैसी ज़िन्दगी जी रहे हैं ?

"पिछले दिनों यहाँ एक 'बुनकर कालोनी' भी बनी है, लेकिन आपने कभी देखा वहाँ जाकर कि कौन रहता है वहाँ ?

"ख़ैर छोड़िए, आप मुझे यह बताइए कि आपका माल आख़िर 'को-ऑपरेटिव' के ज़रिए क्यों नहीं ख़रीदा जाता ? क्या वजह है इसकी ? आपको सोसाइटियों

के ज़रिए आर. बी. आई. का लोन क्यों नहीं मिल पाता? आप 'रिबेट सिस्टम' का फ़ायदा क्यों नहीं ले पाते? इसलिए कि ये सब चीज़ें सरमायादारों की मुट्ठियों में बन्द हैं।

"साथियो! आपको शायद नहीं पता है कि इन को-ऑपरेटिव सोसाइटियों को कितना सरकारी धन अब तक मिल चुका है? आपको जान लेना चाहिए कि अभी पिछले साल सर्वे की वजह से बनारस की उन्नीस सोसाइटियों को तकरीबन चार लाख बावन हज़ार रुपये दिये गये हैं। यही नहीं, शहर की तकरीबन इक्यावन सोसाइटियों को रिज़र्व बैंक के ज़रिए तकरीबन पच्चीस लाख अट्ठानबे हज़ार रुपये पिछले साल मिले हैं, लेकिन आप मुझे बताइए कि आपको कितने रुपये मिले हैं? मैं जानता हूँ कि आपको एक धेला भी नहीं मिला है। सारा रुपया बिचौलियों के बीच बँट गया है।

"साथियो! आपको माल बेचने के लिए गद्दीदारों, आढ़तियों और कोठीदारों के चक्कर लगाने पड़ते हैं और आपकी मेहनत का ज़्यादातर दाम इन्हीं बिचौलियों के पॉकेट में चला जाता है। हालाँकि इस मसले से निपटने के लिए सरकार ने 'बुनकर सहकारी समिति' नामक एक चीज़ बनायी है, मगर वह कितना काम कर रही है, यह जगज़ाहिर है।

"और तमाशा तो यह है कि जो बेईमान हैं, वही ईमानदार बने हुए हैं। जो चोर हैं, वही शरीफ़ माने जाते हैं। क्या आप मुझे बता सकते हैं कि ऐसा भी कोई कोठीवाल है जो अपने नकली माल को नकली कहकर पेश करता हो? नहीं। आप जानते हैं कि अब सोने के तार नहीं रह गये हैं। सूरत में जब से नकली ज़री बनने लगी है तब से उसी का इस्तेमाल होने लगा है। इसके अलावा नकली रेशम का इस्तेमाल भी बढ़ा है। लेकिन ये सरमायादार नकली को असली कहकर अपना रोज़गार धूमधाम से चला रहे हैं और एक आप हैं कि अपना माल लेकर कोठीवालों के चक्कर लगाते-लगाते कब्र की ओर बढ़े जा रहे हैं। सरकार ने असली-नकली की पहचान के लिए 'ट्रू सील' का जो कानून बनाया है उसकी भी हालत सभी पर ज़ाहिर[1] है।

"बहरहाल, मेरे कहने का मतलब सिर्फ़ यह है कि जो सरमायादार हैं, उनका सरमाया दिन-ब-दिन बढ़ता जा रहा है और एक हम हैं जो दिन-ब-दिन तनज़्ज़ुली[2] की ओर खिसकते जा रहे हैं। हमारा माल को-ऑपरेटिव से नहीं बिकता। हमारे माल को गद्दीदार पुर्ज़ी पर खरीदता है जिसका कोई भरोसा नहीं होता। और हमें नकद पैसा नहीं दिया जाता, बल्कि हमारे ही माल को बेचकर हमें उसकी क़ीमत

1. स्पष्ट।
2. पतन, अवनति।

दी जाती है। वह क़ीमत भी पूरी नहीं होती। तरह-तरह की नाजायज़ कटौतियाँ होती हैं। जो लोग गिरस्तों के यहाँ बानी पर या मजूरी पर बिनते हैं उनकी हालत तो और भी बदतर है। इसलिए साथियो, अब वक़्त आ गया है कि हम इस ज़ुल्म के ख़िलाफ़ एकजुट होकर खड़े हों और अपनी लड़ाई जल्द-से-जल्द शुरू कर दें। अब देर करने की ज़रूरत नहीं है। ख़ासतौर से मैं अपने नौजवान साथियों से इस बात के लिए पुरज़ोर अपील करता हूँ कि वे आगे आयें और इन्क़लाब की रहबरी करें, क्योंकि इन्क़लाब हमेशा नौजवानों के जोश से पैदा होता है। शुक्रिया!"

लतीफ की छत पर अल्लारखनिया खड़ी थी। उसको हाल ही में बच्चा पैदा हुआ था और उसका जिस्म पहले-पहल फल लगे आम के पेड़ की तरह गदबदा गया था। हाथ-पाँव फूले-फूले-से लग रहे थे और चेहरे पर एक अजीब-सी रंगत छायी हुई थी। छातियों से दूध रिसने के कारण उसकी समीज के अगले हिस्से पर दोनों ओर गोल-गोल धब्बे पड़ गये थे, जिन्हें वह अपने महीन दुपट्टे से छिपाये हुए थी। उस वक़्त वह अपने बच्चे का तेल-उबटन करने के लिए छत पर चढ़ी हुई थी और चौराहे की सभा को देखने का लोभ उसे भी हो आया था। उसने एक टाँग छत की मुँडेर पर रख ली थी और अपने लाल-लाल बच्चे को एक गन्दे-से कपड़े में लपेटकर जाँघ पर सुलाये हुए थी।

अचानक बिराहिम की निगाह ऊपर उठ गयी और न जाने क्या हुआ कि अल्लारखनिया मुस्करा उठी। बिराहिम का दिल चीते की तरह उछला और इक़बाल के भाषण के बाद उसने एक ज़ोर का नारा लगाया—

"इन्क़लाब! ज़िन्दाबाद!"

अल्लारखनिया अपने बच्चे को लेकर नीचे चली गयी।

36

लतीफ के घर में पंचायत हो रही है। सरदार-महतो तथा मुहल्ले के कई जाने-माने लोग बैठे हुए हैं और मसले पर गरमागरम बहस हो रही है। सवाल सिर्फ़ यह है कि लतिफवा ने शरीअत के ख़िलाफ़ क़दम क्यों उठाया? यह सवाल उसी रोज़ से उठा हुआ है जिस रोज़ कमरुन फिर लतीफ के घर में आ गयी है। वैसे उस बेचारी का इसमें कोई दोष नहीं है। लतिफवा ही उसे ज़बर्दस्ती ले आया है। उस दिन बेहोशी की हालत में कमरुन ने जिस आत्मीयता के साथ उसकी ख़िदमत की, उससे

कर विचलित हो उठा। इस सीधी-सादी औरत को नाहक ही तो उसने छोड़ दिया है। इसकी गलती ही क्या थी? सिर्फ जरा-सी बात के लिए उसने तलाक दे दिया। लेकिन तलाक भी क्या उसने होश में दिया था? उस दिन भी तो वह ताड़ी के नशे में था···

मतिनवा जिद पकड़कर बैठ गया था कि तुम्हें मेरे साथ चलना ही होगा।

कमरुन चली तो आयी वापस, लेकिन अपने ही घर में वह बन्दिनी की तरह रहने लगी। किस मुँह से बाहर निकलती? दुनिया में क्या ऐसा भी कहीं हुआ है कि तलाकशुदा मुसलमान औरत बगैर 'हलाला' के फिर अपने शौहर के साथ आकर रहने लगे? मज़हब के साथ इतना बड़ा खिलवाड़! इतना बड़ा गुनाह! अगर आज वह अलग न रहकर अपने माँ-बाप के साथ रहती होती तो क्या ऐसा हो सकता था? काटकर फेंक न दी जाती वह! उसने पूरी बिरादरी की नाक कटा दी है!

लेकिन भीतर-ही-भीतर एक अजीब तरह का सन्तोष भी उसे अनुभव होता था। जिसके साथ वह इतने दिनों तक छाया की तरह रही, उसने अगर पागलपन में एक बार उसे घर से बाहर ही कर दिया तो क्या उनके दिलों की मुहब्बत भी खत्म हो गयी? मुँह से तीन बार तलाक-तलाक कह देने से ही क्या इतने दिनों का प्रेम-बन्धन कच्चे धागे की तरह टूट गया? वह तो दूसरे ही दिन से अपने आदमी और अपने बच्चों को देखने के लिए तरसने लगी थी, लेकिन समाज और बिरादरी का डर ही उसे बाँधे हुए था।

मतीन ने इस बन्धन को एक ही झटके से तोड़ दिया है, लेकिन क्या इस विद्रोह को आसानी के साथ लोग स्वीकार कर लेंगे?

बस यही एक प्रश्न था जो कमरुन को भीतर साल रहा था। इसलिए इस प्रश्न से बचने के लिए उसने घर में आते ही खुद को काफी व्यस्त कर लिया था। घर की दशा बड़ी ही खराब हो गयी थी। चारों ओर गन्दगी का साम्राज्य था। दीवारें काली हो गयी थीं और कोनों-अन्तरों में रोटी के टुकड़े, चूहों की लेंड़ियाँ, फूटी हुई शीशियाँ तथा इसी तरह का ढेरों कूड़ा-कबाड़ भरा था। उसने पूरा एक दिन लगाकर सारा कूड़ा साफ किया और मतीन से चूना मँगाकर खुद ही दीवारों पर चूना-कली की। रऊफ हालाँकि अब बड़ा हो गया था, लेकिन उचित देखभाल के अभाव में वह आवारा हो चला था। मारसो चौराहे पर चाय की दुकान में बैठा रहता, या दालमण्डी में आकर कीमे की पकौड़ियों का स्वाद चखता होता और रात में ताड़ी पीकर घर लौटता और यही रऊफ की हालत यह थी कि मुहल्ले के हमउम्र छोकरों के साथ दिन-भर चबूतरे पर बैठा रहता और गन्दी-गन्दी बातों में इस तरह मशगूल रहता कि दीन-दुनिया का उसे कुछ ख्याल ही न रहता। एक तहरुनिसा बेचारी थी कि दिन-भर घर के कामों में डूबी रहती थी।

कमरून के आते ही कुद्दूस ज्यादातर घर में ही रहने लगा था, बल्कि कभी-कभी वह कल्वे पर भी बैठने लगा था। अख्तरुनिया बहुत दिनों से नहीं आ रही थी, क्योंकि पेट में होने के कारण वह आने लायक ही नहीं रही थी। लेकिन बच्चा होने का टैम जब निगचा गया तो एक दिन प्लास्टिक की डोलची में अपना थोड़ा-सा सामान लेकर वह भी आ गयी। तब से अभी तक यहीं है वह।

कमरून को लगा कि उसका बिखरा हुआ परिवार फिर सँवर गया, लेकिन मुहल्लेवालों को यह भला कैसे बर्दाश्त होता? पहले तो उन्होंने लतीफ को बुलाकर डाँटा-डपटा, समझाया, बुझाया, मजहब और शरीयत का कानून समझाया, बिरादरी से निकाल देने की धमकी दी, लेकिन जब उस पर कोई असर नहीं हुआ तो सरदार-महतो की राय से यह तय हुआ कि सारा मामला पंचायत में रक्खा जाय और पंचायत का दिन तय कर दिया गया। लेकिन बीच में कुछ ऐसी परिस्थितियाँ उत्पन्न हुईं कि कई-कई बार तारीखें टलीं और कई-कई बार बिरादरी के लोग निराश हुए। आखिर खुदा-खुदा करके एक इतवार का दिन मुकर्रर हुआ।

पंचायत में कई-कई तरह के तर्क-वितर्क हो रहे थे। क़िस्म-क़िस्म के फतवे दिये जा रहे थे, लेकिन कोई भी निष्कर्ष नहीं निकल रहा था। धीरे-धीरे दिन डूब चला और रात हो गयी।

लेकिन पंचायत चलती रही।

रात के दो बज गये।

"तुवें पंच क बात माने के होइए।"

अन्त में अपना दृढ़ निर्णय रखते हुए सरदार साहब ने जब अपनी बात कही तो रऊफ चचा खड़े हो गये। उन्होंने अपनी लुंगी की सिकुड़न ठीक की, टोपी की नोक दुरुस्त की और दाढ़ी पर हाथ फेरकर चीखते हुए-से बोले, "पंचो, पहले इ बताया जाय के नशे की हालत में अगर तिलाक दिया जाय त का तिलाक हो गोवा? इस्लाम में का यही लिक्खा है? सरदार साहब अउर महतो साहब, हाजी साहब, आप लोग कुरान-हदीस खूब पढ़े हो, बताओ।"

'नाँही भाई, नशे की हालत में तिलाक दिया जाय त तिलाक तो नाँहीं भोवा।" किसी ने टिप्पणी की तो लोग उसका मुंह देखने लगे।

"त जब तिलाक भोवै नाँही भै तब फिर हलाला कइसा? लतीफ त नसे की हालत में ही तिलाक दिये रहेन। कमरून से पूछ लो।"

इस पर कोई कुछ नहीं बोला। रऊफ चचा और भी उत्साहित हुए। बोले, "आप लोग आपन-आपन टेक छोड़ो। लतीफ के अब होस आ गोवा है त ओके ठीक से रहे देव। ओके आपन किये की सजा मिल चुकी। इस्लाम सोहर-बीबी के अलग

करे के नाहीं कहेते।"

"चच्चा की बात एकदम ठीक है। इ पंचायत-संचायत खतम करो। हमरी बिरादरी में एक जने इ हिम्मत दियेन, इ तारीफ की बात है। आगे से इ देखा जाय कि कोई अपनी बीवी को एत्तर के तिलाक न देय।" मतीन अभी तक मौका ढूंढ़ रहा था कि वह भी कुछ कहे, कि रऊफ चचा की बातों ने उसकी हिम्मत बढ़ायी और वह बोल पड़ा।

इस पर पंचायत में बैठे कुछ पुराने लोग काफ़ी उत्तेजित हो गये।

तब कमरून ने भीतर से कहलाया कि अगर पंच का फ़ैसला यह होता है कि मैं दूसरे किसी आदमी से शादी करने के बाद उससे तलाक लेकर तब इस घर में फिर आऊँ तो पंच को चाहिए कि मुझे जहर दे दे। मैं ऐसी जलालत का काम नहीं कर सकती। मेरे शौहर ने मुझे दिल से तलाक नहीं दिया था और अब वह मुझे दिल से अपना रहा है, इसलिए पंच को चाहिए कि वह माफ़ी दे दे।

सरदार साहब खड़े हो गये।

"जमाना बहुत बदल गोवा म्यां। चलो। अब ऊ पुरनका मजहब नाहीं चले के।" उन्होंने कहा और अपनी चादर सँभालते हुए बाहर निकल गये।

लतीफ़ के घर में पला हुआ मुर्ग़ा चीखा—कुकडूँ कूँ···! और पंचायत में बैठे सभी नमाज़ी लोग वहाँ से उठकर सीधे मस्जिद की ओर लपके। फज्रि का वक़्त क़रीब था।

37

हनीफ़ की बिटिया छोटा-सा नकाब ओढ़े, एक हाथ में बस्ता लिये चली आ रही है और बशीर का लड़का मुनुवा चौराहे पर खड़ा उसे घूर रहा है।

"क बे मुनुवा, तोरे अब्बा हैं न ?" इकबाल की आवाज़ सुनकर मुनुवा झेंप जाता है।

"हाँ हैं न !" वह जवाब देता है और वहाँ से चल देता है। इकबाल भी पीछे-पीछे बशीर से मिलने के लिए चल पड़ता है।

हनिफवा ने जब से अपने घरवालों से मेल किया है तबसे उसकी बड़की बिटिया बिबिया नजबुनिया के पास बहुत आने-जाने लगी है, बल्कि उसका ज़्यादातर वक़्त अब अपनी बुआ के यहाँ ही कटता है। इकबाल ने हनीफ़ से कह-सुनकर हाल ही में

मुहल्ले में खुले लड़कियों के एक प्राइवेट मिडिल स्कूल में बिबिया का नाम लिखा दिया है और वह बाक़ायदा स्टूडेण्ट हो गयी है। पहले तो नजबुनिया को यह सब अच्छा नहीं लगा, लेकिन बाद में वह खामोश हो गयी। इकबाल ने अपनी 'माँ' को समझाया कि अब लड़कियों को पढ़ाना भी बहुत जरूरी हो गया है। हमारी बिरादरी की यह बहुत बड़ी कमी है कि हम लोग लड़कियों को सिर्फ कुरान शरीफ पढ़ाकर अपना फ़र्ज़ ख़त्म समझ लेते हैं। दुनिया बहुत आगे बढ़ गयी है और तरक़्क़ी के इस जमाने में हमें हर तरह से खुद को आगे ले जाना होगा।

हालांकि नजबुनिया को इन बातों का असली अर्थ नहीं मालूम है, फिर भी वह इकबाल के कामों में ज्यादा मीन-मेख नहीं निकालती, क्योंकि वह जानती है कि उसका शौहर मतीन खुद ही अपने बेटे के किसी काम पर उँगली नहीं उठाता, बल्कि गाहे-बगाहे उसे अपनी राय भी देता रहता है। इसलिए वह समझती है कि ये नये जमाने के लड़के जो सोच रहे हैं और जो कर रहे हैं, उसमें कुछ अच्छाई तो जरूर है, वरना 'ये' बाप होकर भी अपने बेटे को ऐसा करने से क्यों नहीं रोकते भला?

जब से बिबिया स्कूल जाने लगी है, उसके व्यवहार में एक अजीब-सा परिवर्तन दिखायी पड़ रहा है। पहले तो वह घर की हाँड़ी-चूली में ही दिन-भर फंसी रहती थी और बाहर निकलने का उसे मौक़ा ही नहीं मिलता था। जो थोड़ा-बहुत वक़्त बचता भी था, उसमें, या तो वह बैठी-बैठी नरी भरा करती थी या कतान फेरा करती थी। बहुत छोटी-सी उम्र से ही वह यह सब करने लगी थी और वह नहीं जानती थी कि दुनिया इसके आगे भी कहीं है। अब जाकर उसे मालूम हुआ है कि जिस धरती पर वह रहती है वह सूरज का एक टुकड़ा है और वह गोल है और वह सूरज के चारों ओर घूम रही है। इस मुल्क के ज्यादातर मुसलमान यहीं के बाशिन्दे हैं और अंग्रेजों ने यहाँ के हिन्दुओं और मुसलमानों दोनों पर हुकूमत की है। कबीरदास एक बहुत बड़ा कवि था और वह उसी की जाति का था और वह इसी बनारस में रहकर कपड़ा भी बुनता था और कविता भी लिखता था···इस तरह बिबिया के सामने एक नयी दुनिया खुलती चली गयी थी और इसके लिए वह इकबाल के प्रति हृदय से कृतज्ञ हो उठी थी। लेकिन अपनी कृतज्ञता को प्रकट करने के लिए उसके पास कोई साधन नहीं था, सिवा इसके कि जब भी इकबाल उसके सामने आता वह हल्के-से मुस्करा देती और लजाकर सिर झुका लेती।

उस वक़्त जब इकबाल और मुनुवा में बातें हो रही थीं, तब भी वह नकाब के भीतर मुस्करायी थी और कनखी से इकबाल की ओर देखती हुई आगे बढ़ गयी थी।

इकबाल कबीर के घर पहुँचकर बाहर ही खड़ा हो गया था। मुनुवा अपने अब्बा

को बुलाने भीतर चला गया था। दरअस्ल इक्बाल चाहता था कि हाजी नज़ीर, हाजी वलिउल्ला और हाजी अमीरुल्ला के घर मजूरी पर बिननेवाले कारीगर भी उसके प्रोग्राम में शामिल हों और लड़ाई को कामयाब बनावें। इसके लिए एक रोज़ वह आसपास के गाँवों की ओर भी गया था। बशीर मियाँ बाहर निकलकर आये तो इक्बाल उन्हें अपने साथ लेकर चायख़ाने की ओर बढ़ गया।

रास्ते में चार-पाँच लड़के गोलियाँ खेल रहे थे। सामने से इन्हें आते हुए देखकर वे खड़े हो गये और आपस में बातचीत करने लगे—

"क बे गाजी मियाँ क मेला कब है बे ?"

"ई अत्तवार जो आइए बई अत्तवार के है।"

"भक, ऊ अत्तवार के नइने। ओके बादवाले अत्तवार के है।"

"हाँ हाँ वही अत्तवार के है। हमरी अम्माँ भी कहेत रही।"

इक्बाल और बशीर आगे बढ़कर चायख़ाने में घुस गये और भीतर पड़ी एक गन्दी-सी बेंच पर बैठ गये। वहाँ पहले से भी कई लोग बैठे थे और बीड़ियों के धुएँ से पूरा माहौल गन्धैला बना हुआ था। छत के ऊपर एक काला-सा पंखा धीमी गति से घूम रहा था।

थोड़ी देर बाद वहाँ मतीन भी पहुँच गया था। साथ में बिराहिम और शरीफ़ भी थे, जो दूकान में जगह न होने के कारण बाहर ही खड़े हो गये थे।

"तो भाइयो, क्या सोचा आप लोगों ने ? एहतेजाज में शामिल होंगे या सरमायादारों के ज़ुल्म को इसी तरह मुँह बन्द करके सहते रहेंगे ?"

इक्बाल चायख़ाने में ही एक ओर खड़ा हो गया था और ऊँची आवाज़ में बोलने लगा था।

थोड़ी देर में क्या हुआ कि सड़क पर आने-जानेवाले लोग भी वहाँ खड़े हो गये और चायख़ाने के सामने एक अच्छा-ख़ासा मजमा ही लग गया। मतीन टेबुल पर कुहनियाँ टिकाये, चुपचाप अपने बेटे की बातों को सुन रहा था।

38

इक्बाल मेला चला गया है और एकान्त देखकर मतीन ने नजबुनिया को अपने पास बुला लिया है। खिड़की-दरवाज़ा बन्द करके दोनों साथ-साथ लेटे हुए हैं और सुख-दुख की चर्चा में मशगूल हैं। ज़माना कितना बुरा आ गया है। हर चीज़

मुहल्ले में गुले लड़कियों के एक प्राइवेट मिडिल स्कूल में बिबिया का नाम लिखा दिया है और वह बाक़ायदा स्टूडेण्ट हो गयी है। पहले तो नजबुनिया को यह सब अच्छा नहीं लगा, लेकिन बाद में वह ख़ामोश हो गयी। इकबाल ने अपनी 'माँ' को समझाया कि अब लड़कियों को पढ़ाना भी बहुत जरूरी हो गया है। हमारी बिरादरी की यह बहुत बड़ी कमी है कि हम लोग लड़कियों को सिर्फ कुरान शरीफ पढ़ाकर अपना फ़र्ज़ ख़त्म समझ लेते हैं। दुनिया बहुत आगे बढ़ गयी है और तरक़्क़ी के इस ज़माने में हमें हर तरह से खुद को आगे ले जाना होगा।

हालांकि नजबुनिया को इन बातों का असली अर्थ नहीं मालूम है, फिर भी वह इकबाल के कामों में ज्यादा मीन-मेख नहीं निकालती, क्योंकि वह जानती है कि उसका शौहर मतीन ख़ुद ही अपने बेटे के किसी काम पर उँगली नहीं उठाता, बल्कि गाहे-बगाहे उसे अपनी राय भी देता रहता है। इसलिए वह समझती है कि ये नये ज़माने के लड़के जो सोच रहे हैं और जो कर रहे हैं, उसमें कुछ अच्छाई तो जरूर है, वरना 'ये' बाप होकर भी अपने बेटे को ऐसा करने से क्यों नहीं रोकते भला ?

जब से बिबिया स्कूल जाने लगी है, उसके व्यवहार में एक अजीब-सा परिवर्तन दिखायी पड़ रहा है। पहले तो वह घर की हाँड़ी-चूली में ही दिन-भर फंसी रहती थी और बाहर निकलने का उसे मौक़ा ही नहीं मिलता था। जो थोड़ा-बहुत वक़्त बचता भी था, उसमें, या तो वह बैठी-बैठी नरी भरा करती थी या कतान फेरा करती थी। बहुत छोटी-सी उम्र से ही वह यह सब करने लगी थी और वह नहीं जानती थी कि दुनिया इसके आगे भी कहीं है। अब जाकर उसे मालूम हुआ है कि जिस धरती पर वह रहती है वह सूरज का एक टुकड़ा है और वह गोल है और वह सूरज के चारों ओर घूम रही है। इस मुल्क के ज्यादातर मुसलमान यहीं के बाशिन्दे हैं और अंग्रेजों ने यहाँ के हिन्दुओं और मुसलमानों दोनों पर हुकूमत की है। कबीरदास एक बहुत बड़ा कवि था और वह उसी की जाति का था और वह इसी बनारस में रहकर कपड़ा भी बुनता था और कविता भी लिखता था···इस तरह बिबिया के सामने एक नयी दुनिया खुलती चली गयी थी और इसके लिए वह इकबाल के प्रति हृदय से कृतज्ञ हो उठी थी। लेकिन अपनी कृतज्ञता को प्रकट करने के लिए उसके पास कोई साधन नहीं था, सिवा इसके कि जब भी इकबाल उसके सामने आता वह हल्के-से मुस्करा देती और लजाकर सिर झुका लेती।

उस वक़्त जब इकबाल और मुनुवा में बातें हो रही थीं, तब भी वह नकाब के भीतर मुस्करायी थी और कनखी से इकबाल की ओर देखती हुई आगे बढ़ गयी थी।

इकबाल बशीर के घर पहुँचकर बाहर ही खड़ा हो गया था। मुनुवा अपने अब्बा

को बुलाने भीतर चला गया था। दरअस्ल इकबाल चाहता था कि हाजी नजीर, हाजी वलिउल्ला और हाजी अमीरुल्ला के घर मजूरी पर बिननेवाले कारीगर भी उसके प्रोग्राम में शामिल हों और लड़ाई को कामयाब बनायें। इसके लिए एक रोज वह आसपास के गाँवों की ओर भी गया था। वशीर मियाँ बाहर निकलकर आये तो इकबाल उन्हें अपने साथ लेकर चायखाने की ओर बढ़ गया।

रास्ते में चार-पाँच लड़के गोलियाँ खेल रहे थे। सामने से इन्हें आते हुए देखकर वे खड़े हो गये और आपस में बातचीत करने लगे—

"क बे गाजी मियाँ क मेला कब है बे?"

"ई अत्तवार जो अइए बई अत्तवार के है।"

"भक, ऊ अत्तवार के नइने। ओके बादवाले अत्तवार के है।"

"हाँ हाँ वही अत्तवार के है। हमरी अम्माँ भी कहेत रही।"

इकबाल और वशीर आगे बढ़कर चायखाने में घुस गये और भीतर पड़ी एक गन्दी-सी बेंच पर बैठ गये। वहाँ पहले से भी कई लोग बैठे थे और बीड़ियों के धुएँ से पूरा माहौल गन्धैला बना हुआ था। छत के ऊपर एक काला-सा पंखा धीमी गति से घूम रहा था।

थोड़ी देर बाद वहाँ मतीन भी पहुँच गया था। साथ में बिराहिम और शरीफ भी थे, जो दूकान में जगह न होने के कारण बाहर ही खड़े हो गये थे।

"तो भाइयो, क्या सोचा आप लोगों ने? एहतेजाज में शामिल होंगे या सरमायादारों के जुल्म को इसी तरह मुंह बन्द करके सहते रहेंगे?"

इकबाल चायखाने में ही एक ओर खड़ा हो गया था और ऊँची आवाज में बोलने लगा था।

थोड़ी देर में क्या हुआ कि सड़क पर आने-जानेवाले लोग भी वहाँ खड़े हो गये और चायखाने के सामने एक अच्छा-खासा मजमा ही लग गया। मतीन टेबुल पर कुहनियाँ टिकाये, चुपचाप अपने बेटे की बातों को सुन रहा था।

38

इकबाल मेला चला गया है और एकान्त देखकर मतीन ने नजबुनिया को अपने पास बुला लिया है। खिरकी-दरवाजा बन्द करके दोनों साथ-साथ लेटे हुए हैं और सुख-दुख की चर्चा में मशगूल हैं। जमाना कितना बुरा आ गया है। हर चीज

कितनी मँहगी हो गयी है। तांगेवाले का कितना क़र्ज़ चढ़ा हुआ है ! कैसे क्या होगा ! इकबलवा का ब्याह भी अब कर देना चाहिए ! आदि-आदि।

फिर अचानक मतीन के हाथ गुतुर-फुतुर करने लगते हैं और नजबुनिया खिल-खिलाने लगती है।

इससे पहले जब भी वे साथ-साथ लेटते थे, मतीन को अलीमुन की याद आ जाती थी और नजबुनिया को अपने पुराने शौहर की। और दोनों ही का मन न जाने कैसा तो हो जाता था। लेकिन आज दोनों ही प्रफुल्ल थे। ऐसा घोर एकान्त भी शायद उन्हें कभी नहीं मिला था। वे उन क्षणों को पूरे मनोयोग से जी रहे थे।

"बुआ !"

थोड़ी देर बाद ही बाहर से बिबिया की आवाज़ आयी तो नजबुनिया हड़बड़ाकर उठ बैठी। उसका अंग-अंग उस वक़्त अलसाया हुआ था और उठने की हिम्मत नहीं पड़ रही थी, लेकिन झट से वह खड़ी हो गयी और 'के है ? बिबिया !' कहती हुई अपने खुले हुए बालों को पल्लू में छिपाती हुई दरवाजे की ओर बढ़ चली। मतीन ने खिड़की खोल दी और उठकर तोगरे के पीछे कुछ ढूँढ़ने लगा !

बिबिया नकाब उतारकर पानी के घड़े की ओर बढ़ गयी। उसे बहुत तेज़ प्यास लगी हुई थी। उसने मलसी में पानी निकालकर गट-गट पिया और नजबुनिया के सामने आकर खड़ी हो गयी।

"आज गाजी मियाँ क मेला है, चलो बुआ घूम आवें।" उसने प्रस्ताव रखा तो नजबुनिया तैयार हो गयी। उसने मतीन की ओर आँखें तरेरीं और बोली, "तूं भी चलो !"

मतीन मुस्कराया। थोड़ी देर तक वह नजबुनिया को देखता रहा, फिर उठा और कमीज पहनने लगा।

मेले में बड़ी भीड़ है। औरतें नकाब उलटे मलाई बरफ खाती घूम रही हैं और बच्चे खिलौनों के लिए ठुनक रहे हैं। आगे-आगे मतीन चल रहा है और पीछे-पीछे नजबुनिया के साथ बिबिया। अचानक एक दूकान पर इकबलवा दिख जाता है। वह अपने दोस्तों के साथ खड़ा था और उसके हाथ में एक सिगरेट जल रही थी। इन लोगों को देखते ही उसने सिगरेट एक ओर फेंक दी और मुंह घुमाकर खड़ा हो गया। मतीन ने उसे ऐसा करते हुए साफ़ देख लिया, लेकिन नजर-अन्दाज किया। नये जमाने के लड़के हैं, इन्हें पुराने कानूनों में नहीं बाँधा जा सकता। इतना लिहाज किया, यही क्या कम है, वरना आजकल तो ऐसा जमाना आ गया है कि लौंडे पुरखों के बाप के सामने लौंडिया लेकर घूमने लगे हैं !

अल्ताफ के दोनों बच्चे सुबह से ही मेला जाने के लिए तैयार हैं। पपुआ सबेरवें

से पूछ रहा था, "अब्बा मेला में हम लोग के लिया चल्यो ने ?"

"हाँ संझा के लिया चलेंगे।" उसने आश्वासन दिया था और चार बजते-बजते दोनों बच्चे चीखने लगे थे, "अब्बा चलो बेला हो गयी !"

अल्ताफ ने जब देखा कि ये लोग किसी भी तरह नहीं मानेंगे तो हनिफवा के यहाँ जाकर दो रुपया उधार माँग लाया और अपना 'नेता' वाला ड्रेस पहनकर तैयार हो गया।

"अच्छा चलो सब कोई, कपड़ा मजे-मजे का पहिन के चलो।"

उसने अपने बच्चों को भी कपड़े बदलने का आदेश दिया तो पपुआ और बउवा खिल उठे, लेकिन कभी-कभी पहनने के लिए भी उनके पास जो कपड़े थे वे निहायत बोसीदा और मुड़े-चुड़े थे। बच्चों ने उन्हीं कपड़ों को इस अन्दाज से पहना जैसे वे शाहजादों की पोशाक पहन रहे हों और तैयार हो गये।

चलते-चलते अल्ताफ ने अपने दोनों बच्चों को सावधान किया, "चल थे बउवा, देख सबन्ने साथ चलबे थे। अबे पपुआ देख बउवा का हाथ पकड़े रहिबे, ऊ हेराये न। कउनो हेराएँ ना ?"

और अल्ताफ की बीवी ने जब देखा कि मेला चलने के लिए उसे कोई नहीं पूछ रहा है तो वह झमककर भीतर गयी और अपने आप ही तैयार होने लगी। वह बशीर की बीवी के साथ या कमरुन के साथ चली जायेगी। उसे किसी का डर थोड़े रखा है।

मेले में पहुँचकर पपुआ और बउवा ने अल्ताफ की नाक में दम कर दिया—

"अब्बा हम ऊ लेंगे।"

"*अब्बा हम ई लेंगे।*"

"अब्बा हम चर्खी झूलेंगे।"

"अब्बा हमें उड़ैवाला गुब्बाड़ा दियाओ।"

और अल्ताफ अपनी जेब की सीमा देखता हुआ उन्हें समझाने में लगा हुआ था, "अबे नाँहीं बे, ऊ नाँही लेवे के है। चल आओ, हमई दियाईती। लो ई खाओ, ई बहुत बढ़ियाँ है। लो ई लो। अबे बउवा उधर मत जाव।"

अल्ताफ ने दोनों लिए जो थोड़ी-सी नानखताई और थोड़ी-सी खिजली खरीद दी थी, उन्हें अपने नन्हे-नन्हे हाथों में लिये वे गर्म-गर्म धूल में नंगे पाँव चल रहे थे और मगन थे।

अचानक मतीन को देखकर अल्ताफ खड़ा हो गया। नजबुनिया के साथ अब बिबिया के अलावा अल्ताफ की बीवी हब्बुन भी थी। एक ओर कमरुन, अख्तरनिया, महरुन और आमिना भी खड़ी थी। पपुआ और बउवा दौड़कर अपनी अम्मी के पास पहुँच गये थे।

मतीन और अल्ताफ स्त्रियों को छोड़कर अलग हो गये थे।

"सब परोगराम बन गोवा है, पर इन्कलाब कहेतन के अबहीं बखत नाहीं आवा है। एहुतेजाज बखत पर होय के चाही।"

अल्ताफ मानों इस विषय पर मतीन की राय जानना चाहता था, लेकिन मतीन कुछ नहीं बोलता। वह चुपचाप मेले में चलता रहता है। उसके पाँव गर्द में सन गये हैं और कंघी किये गये बाल हवा की वजह से बिखर गये हैं, पर वह सब कुछ से बेखबर है। उसे मेले में चल रहे लोगों और अपने आसपास लगी दूकानों का ध्यान भी नहीं है, मानो मेले में होकर भी वह मेले में नहीं है।

"हमरे कमरेट लोग कहेतन के···।" मतीन को चुप देखकर अल्ताफ ने अपनी बात का सिलसिला फिर शुरू करना चाहा, लेकिन तभी उसे शरफुद्दीन दिखायी पड़ गया और वह खामोश हो गया। पीछे-पीछे उसकी बीवी भी थी।

मतीन एक झूले के पास रुक गया।

"मेला में सरफुद्दिनवो आइसे।"

"आवे दो म्याँ, का तूँ अकेलवे मेला घुमियो ? चलो, पइसा होय त झूला झूल लो।" मतीन ने पहले थोड़ा सख्त होकर और फिर हँसते हुए अल्ताफ का ध्यान बँटाया और तेजी से घूमते हुए झूले को देखने लगा। झूले पर झुण्ड-की-झुण्ड औरतें और बच्चे लदे हुए थे। झूला किसी बहुत बड़े चर्खे की तरह तेजी के साथ घूम रहा था।

39

शरफुद्दीन एम. एल. ए. का नया मकान तैयार हो गया है। यह मकान उसने अपनी निजी कमाई से बनवाया है। इसमें हाजी अमीरुल्ला का कुछ भी नहीं लगा है— सिवा देखभाल के। मकान बिल्कुल अंग्रेजी ढंग का बना है। कई-कई तरह की टाइल्स और कई-कई तरह के पत्थरों से पूरे भवन को सुसज्जित किया गया है। सामने छोटा-सा, मगर खूबसूरत-सा एक लॉन है। मकान हालांकि गली में बना हुआ है, पर दूर से ही दिखायी पड़ जाता है। गली के मोड़ पर एक बोर्ड लगा दिया गया है— श्री शरफुद्दीन एम. एल. ए.। यही नहीं, आगे चलकर गली के किनारे पत्थर की एक पटिया भी लगायी गयी है, जिस पर लिखा है : हाजी अमीरुल्ला रोड ! यह गली आगे जाकर एक पतली-सी सड़क से मिल जाती है।

मकान में बड़ी-बड़ी खिड़कियाँ हैं और बड़े-बड़े दरवाजे। उनमें कीमती शीशे

जड़े हुए हैं। छत पर एक फुलवारी लगायी गयी है, जिसमें तरह-तरह के कैक्टस-वाले गमले लाकर रखे गये हैं। एम. एल. ए. साहब की बीवी अपनी पेशानी ठीक करती हुई रोज अपने नगोल पर चढ़ती है और अपने पति के पौधों को प्यार करती है।

लेकिन इस मकान का निचला हिस्सा पुराने ढंग का है। एम. एल. ए. साहब का विचार था कि नीचे खूब बड़ा-सा डाइनिंग हाल बनाया जाये और उसी से सटा हुआ ड्राइंग रूम बने, लेकिन हाजी मतीउल्ला और हाजी मिनिस्टर नाराज हो गये। उन्होंने हाजी अमीरुल्ला से बातचीत की और सुझाव दिया कि नये फैशन में बहकर अपने जातीय गुणों का त्याग कर देना बुद्धिमानी का काम नहीं है। हालाँकि हाजी हबीबुल्ला को इस मकान-वकान में कोई रुचि नहीं थी लेकिन इस सम्बन्ध में उनकी राय भी अपने अन्य भाइयों की राय से मेल खा रही थी। मकानवाली यह समस्या सरदार-महतो तक के कान में जा पहुँची और शरफुद्दीन की कल्पनाएँ धराशायी हो गयी। मकान का निचला हिस्सा उन्हें पारम्परिक ढंग से ही बनवाना पड़ा, अर्थात बीच में एक खूब बड़ा-सा आँगन और आँगन के चारों ओर चार बड़े-बड़े कमरे। रिवाज के अनुसार आँगन की ओर खुलनेवाले तीन-तीन दरवाजे सभी कमरों में होने चाहिए। शरफुद्दीन ने जब यह कहा कि ड्राइंग रूम में तो आँगन की ओर एक ही दरवाजा होगा तो बड़े-बूढ़ों ने राय दी कि तब दीवार पर दो दरवाजों के निशान बनाये जाने चाहिए, वरना परम्परा का उल्लंघन होगा। फिर मकान बन जाने के बाद यह भी मसला सामने आया कि शरफुद्दीन जिसे बार-बार 'ड्राइंग रूम' कह रहा था उसकी सजावट कैसी होनी चाहिए? एम. एल. ए. साहब की राय थी कि इस कमरे में एक आलीशान सोफासेट होना चाहिए और एक ओर सनमाइका की मेज तथा मूविंग चेयर। लेकिन हाजी अमीरुल्ला की राय थी कि 'कोठरी' में गद्दी बिछी होनी चाहिए और बाहर की ओर से नहीं, बल्कि आँगन की ओर से प्रवेश होना चाहिए, ताकि लोग आँगन में जूते उतारकर 'ड्राइंग रूम' वाली 'कोठरी' में जा सकें। इस मसले पर देर तक बहस-मुबाहसा होता रहा। फिर यह तय पाया कि दोनों की इच्छाओं में समन्वय स्थापित करके इस महत्त्वपूर्ण मसले को खत्म किया जाय। और इस तरह जो नया विचार बना वह यह था कि कमरे में गद्दी नहीं, सोफासेट ही होना चाहिए, पर प्रवेश आँगन की ओर से ही होना चाहिए और जूते उतारकर!

तो इस तरह यह 'इंगलिश-कम-अंसारी-स्टाइल' का मकान तैयार हुआ और सेठ गजाधर प्रसाद की राय से बाकायदा 'गृह प्रवेश' का आयोजन भी किया गया, लेकिन शुद्ध इस्लामिक ढंग से। उस रोज फज्र बाद से ही कुरआन ख्वानी शुरू हो गयी, जो दोपहर तक चलती रही। कुरआन पढ़नेवाले लोगों को इमिरती बाँटी गयी और बाद में एक खास दावत हुई, जिसमें बड़े-बड़े लोग उपस्थित हुए। फिर

हाजी अमीरुल्ला ने बड़ी देर तक उन्हें घुमा-घुमाकर मकान दिखाया। एक-एक हिस्से के महत्त्व पर प्रकाश डाला और समझाया कि किस तरह उन्होंने इतनी कम जगह में इतना बड़ा मकान बनवा लिया। यहाँ तक कि लैट्रिन-बाथरूम का दरवाजा खोलकर भी उन्होंने उस जगह के बारे में एक छोटी-सी टिप्पणी की। लोगों ने देखा कि लैट्रिन में बिल्कुल ताजा टट्टी पड़ी हुई थी जिसमें एक बदमाश क़िस्म का केंचुआ अकड़ रहा था। हाजी अमीरुल्ला को इस दृश्य से बड़ी शर्मिन्दगी हुई और वे वहीं से चिल्लाये, "क बे कमरुवा, देख ईंहा के हगे है? फलस नांहीं चलाइसे! देख त ओके!"

और मेहमानों के साथ वे छत पर चले गये—गार्डेन दिखाने के लिए!

40

चारों ओर पानी-ही-पानी दिखायी पड़ रहा है। हफ्ते-भर से सूरज का पता नहीं है। जितनी तेज गरमी पड़ी है इस साल, उतनी ही तेज बारिश भी हो रही है। पूरा बनारस जलाहल हो गया है।

सरैया डूब गया है। वहाँ के बेघर-बार हुए बुनकर लाइन के इस पार आ गये हैं और अंसारी स्कूल में उन्हें शरण मिली है। हालांकि स्कूल के बाहर भी पानी-ही-पानी है और भीतर का प्ले ग्राउण्ड भी डूबा हुआ है, लेकिन बरामदे पर पानी नहीं चढ़ा है। बाढ़ग्रस्त लोग बरामदों में घुसकर पड़े हुए हैं। भागमभाग में वे अपने साथ जो कुछ भी ला सके हैं वह इस तरह वहाँ पड़ा हुआ है, जैसे उसकी भी अब कोई जरूरत नहीं रह गयी है। जिन लोगों ने सस्ती जमीनें लेकर उधर वरुणा के किनारे छोटी-मोटी कोठरियाँ बना ली थीं, वे सब-के-सब लोग इस वक्त बेघर हो गये हैं। उनके घर डूब गये हैं और जरूरत की चीजें बह गयी हैं। सिर्फ कुछ कथरियाँ बची हैं और अलुमिनियम के कुछ बर्तन। अपनी इतनी-सी कायनात लिये हुए वे लोग अपनी स्त्रियों और लड़कों-लड़कियों के साथ अंसारी स्कूल के बरामदों में पड़े हुए हैं। कई रोज से सुन रहे हैं कि एम. एल. ए. साहब हवाई जहाज से उनके लिए आटा-दाल लानेवाले हैं, पर अभी तक कुछ पता नही है।

इस साल गंगा और वरुणा दोनों सौतें इस तरह क्रुद्ध हुई हैं कि उनके रोष में पूरी काशी डूबी जा रही है। उधर नगवा डूब गया है। अस्सी और गोदौलिया के चौराहों पर नावें चल रही हैं। इधर मछोदरी और हनुमान फाटक में पानी भरा

हुआ है। सारा काम-काज ठप हो गया है।

राजघाट पुल पर बाढ़ देखनेवालों की भीड़ लगी हुई है। उस पार के सारे बबूल डूब गये हैं। जो वृक्ष बचे हैं उनकी फुनगियाँ ही सिर्फ दिखायी पड़ रही हैं। गाँवों के लोग भाग गये हैं और उनके मकान या तो गिर गये हैं या डूब गये हैं।

गंगा में जब कोई छप्पर बहता हुआ दिखायी पड़ता है, या जब कोई भैंस बहती हुई नजर आती है तो बाढ़ देखनेवाले इस कदर खुश होते हैं मानो उन्होंने ईद का चाँद देख लिया हो।

इधर बशीर की कोठरी में नाली का पानी घुस आया है और वे लोग भागकर अपनी बड़ी बिटिया के यहाँ चले गये हैं। मतीन, इकबाल और अल्ताफ चन्दा माँग-माँगकर असारी स्कूल में बसे हुए शरणार्थियों के लिए आटा-प्याज खरीद रहे हैं और उधर बिसेसरगंज की ओर से घूमकर किसी तरह उन तक चीजें पहुँचा रहे हैं। इधर कुछ दिनों से अंसारी स्कूल के पुराने छात्रों ने 'ओल्ड ब्वायज एसोसिये-शन' बना रखा है। इकबाल ने इस काम में एसोसियेशनवालों को भी साथ ले लिया है, हालाँकि इस एसोसियेशन का गठन हुआ था अंसारी स्कूल के मैनेजर, प्रिंसिपल और चन्द पिट्ठू टाइप अध्यापकों को राहे-रास्त पर लाने के उद्देश्य से, लेकिन बिरादरी का वसीला देकर उनके अभिभावकों से उनकी ऐसी शिकायतें की गयीं कि सबकुछ टाँय-टाँय फिस्स हो गया। इकबाल ने कहा, चलो राजनैतिक काम नहीं कर सके न सही, सामाजिक काम ही करो।

लगभग बीस रोज तक बाढ़ का ताण्डव जारी रहा और बुनकरों की रही-सही ताक़त भी जवाब दे गयी।

गद्दीदारों, गिरस्तों और कोठीवालों का दमनचक्र बदस्तूर चलता रहा।

41

छित्तनपुरा चउमुहानी पर बनारस-भर के बुनकर इकट्ठे हो रहे हैं। मजूरी पर बिननेवाले, बानी पर बिननेवाले, बिक्री पर बिननेवाले सभी तरह के बुनकर। बड़ी बजार, कच्ची बाग, बकरिया कुण्ड, दोसीपुरा, मदनपुरा, काजी सादुल्लापुरा, जलालीपुरा, नरैया, पठानी टोला, कोयला बाजार, आलमपुरा, बहेलिया टोला और लल्लापुरा, औरंगाबाद, मदनपुरा से लेकर बजरडीहा और लोहता तक के

बुनकर चले आ रहे हैं। लुंगी-कुर्ता पहने, टोपी लगाये, पान दबाये। सभा होगी। सभा में कटौती के खिलाफ 'एक्सन' लिया जायेगा। को-ऑपरेटिव में हो रही धाँधली के खिलाफ बोला जायेगा। फर्जी सोसाइटियों का भण्डाफोड़ किया जायेगा …जनाब इकबाल अहमद अंसारी की तकरीर है।

"उहै मतिनवा के बेटा इकबाल ?"

"हाँ म्याँ उहै, बहुत बढ़िया बोलेले !"

"हाँ म्याँ, मतिनवै नियर निकलिये।"

"बाप से बढ़ के है म्याँ !"

"चलो चलो !"

और भीड़ बढ़ती जा रही है। युग-युगों से करघे-कतान के बोझ तले दबे हुए बुनकर पत्थर की दरार में उगती हुई घास की तरह बेरोक-टोक बढ़ते जा रहे हैं।

"इ बनारस में म्याँ इतने जोलहा हैं न ! बुरचोदी के पतै नाँहीं चलत रहा ! हम समझत रहे संटहियों के इ गिरस्तवनै जादा हैं न ! अब आवैं छिनरो के, हम देखी ते !"

और अगले दिन से बुनकरों की हड़ताल[1] शुरू हो गयी।

छित्तनपुरा चउमुहानी पर दो तख्तों का एक स्टेज बना हुआ है, जिस पर दरी-चाँदनी बिछी हुई है। मकानों के छज्जों से बाँधकर चारों ओर कागज की झण्डियाँ लगा दी गयी हैं। चबूतरों पर दफ़्ती के कुछ पोस्टर्स रख दिये गये हैं और एक माइक का इन्तजाम कर लिया गया है। लगभग पन्द्रह रोज से चउमुहानी पर मेला-जैसा लगा हुआ है। रोज ये होता है कि अब कोई-न-कोई फैसला हो जायेगा, मगर मामला फिर उलझ जाता है। धीरे-धीरे बुनकरों की हालत बिगड़ती जा रही है। जब काम ही न होगा तो खर्चा कैसे चलेगा ?

लोगों का उत्साह कम होता जा रहा है।

मतीन ने जब देखा कि हड़ताल बहुत लम्बी खिंच रही है और आम बुनकर घबराते जा रहे हैं तो इकबाल और अल्ताफ को बुलाकर उसने सलाह दी कि हड़ताल को अब अनशन की शक्ल में बदल देना चाहिए। कुछ लोग पारी-पारी से यहाँ अनशन पर बैठें और जिसका जी चाहे काम करता रहे, वरना लड़ाई नाकामयाब हो जायेगी।

---

1. बनारस में कटौती के खिलाफ बुनकरों का एक आन्दोलन जनता पार्टी के शासन-काल में हुआ था।

मतीन का यह सुझाव हनिफ़वा को भी पसन्द आया और अगले ही दिन से अनशन का कार्यक्रम शुरू कर दिया गया। मजूरी पर और बानी पर बिननेवाले बुनकर इस फ़ैसले से बहुत खुश हुए, लेकिन भीतर-ही-भीतर वे इतने शर्मिन्दा थे कि आत्मग्लानि में डूबे जा रहे थे। हालांकि करघों पर वे बैठने लगे थे, लेकिन काम में उनका मन नहीं लगता था और वे लोग घूम-फिरकर छित्तनपुरा चउमुहानी पर चले आते थे। अनशन पर चाहे कोई भी बैठा हो, पर मतीन बराबर स्टेज पर बैठा रहता था—गुमसुम, और एक अजीब-से तनाव में डूबा हुआ।

42

सफ़र[1] का महीना खत्म हो रहा है। आज 'आखिरी बुध' है। सफ़र-महीने का आखिरी बुध। बनारस के बुनकरों का यह अत्यन्त महत्त्वपूर्ण पर्व है। इनका विश्वास है कि हज़रत मुहम्मद साहब ने इसी रोज़ गुस्ले-सेहत किया था। उन दिनों वे लम्बी बीमारी झेल रहे थे और उनकी सेहत जब ठीक हुई तो जिस रोज़ बिस्तर से उठकर उन्होंने स्नान किया और बढ़िया-बढ़िया खाना खाया, वह 'सफ़र' महीने का आखिरी बुधवार था। उस रोज़ के बाद वे फिर बीमार पड़ गये थे और उनकी मृत्यु हो गयी थी। उनकी जिन्दगी में उस बुधवार जैसा खुशनुमा बुधवार फिर कभी नहीं आया, अतः प्रतिवर्ष सफ़र महीने के अन्तिम बुधवार के रोज़ बनारस के बुनकर बढ़िया-बढ़िया पकवान बनाते हैं और उस पर न्याज़-फ़ातेहा कराते हैं। इस रोज़ मुर्री बन्द रहती है।[2] करघे नहीं चलते। बिनकारी का कोई काम नहीं होता। कारीगरों को मिठाइयाँ बाँटी जाती हैं और इस पर्व को एक जश्न के रूप में मनाया जाता है।

नजबुनिया ने दो रोज़ पहले से ही गेहूँ के दाने भिगो दिये हैं। मतीन के घर में 'आखिरी बुध' को हर साल गेहूँ का हलुआ ज़रूर बनता है। इस साल हालांकि हड़ताल-फड़ताल और अनसन-फनसन में दोनों बाप-बेटे बुरी तरह फँसे हुए हैं, लेकिन त्योहार मनाना कोई थोड़े न छोड़ देगा।

---

1. मुहर्रम के बाद का अरबी महीना।
2. काम बन्द रहता है।

विरोध का यह कार्यक्रम पिछले अठारह दिनों से चल रहा है, लेकिन किसी के कान पर जूं तक नहीं रेंग रही है। बीच में एक रोज हाजी अमीरुल्ला, सेठ गजाधर प्रसाद और शरफुद्दीन नेता समझाने-बुझाने आये थे, लेकिन आन्दोलनकारियों पर कोई असर नहीं पड़ा। इकबाल ने तो साफ कह दिया कि जब तक कटौती का सिलसिला खत्म नहीं किया जायेगा और जब तक को-ऑपरेटिव सोसाइटियों में आम बुनकरों की भागीदारी शामिल नहीं की जायगी तब तक यह कार्यक्रम जारी रहेगा। यही बात उसने डी. एम. के सामने भी कही और सब अपना-अपना मुंह लेकर वापस लौट गये। लेकिन इसके बावजूद अभी तक कुछ नहीं हो सका है। न सरकार की ओर से कोई आश्वासन मिला, न कोठीवालों की ओर से। इसलिए वातावरण में एक मटमैली-सी धुन्ध छायी हुई है, पर बीच में त्योहार के आ जाने से वह धुन्ध कुछ हल्की हो गयी है।

मुहल्लों में चहल-पहल खूब बढ़ गयी है और रसोईघरों में सुबह से ही खटर-पटर शुरू हो गयी है। लड़के धमाचौकड़ी मचाये हुए हैं और लड़कियां अपने बालों में अफशां के बेलबूटे सजाये तितलियों की तरह फुदक रही हैं।

बिबिया सुबह से ही अपनी बुआ के यहां आ गयी है, लेकिन घर में कुछ सामान न होने की वजह से अभी तक कुछ पका-वका नहीं है। दो बज रहे हैं।

बस थोड़ी देर पहले मतीन चउमुहानी पर से आया था तो बनिये के यहां से घी-चीनी और गोशवाड़ा से गोश्त लाकर रख गया है। इकबाल का तो कुछ पता ही नहीं है।

मतीन बता रहा था कि आज अनशन पर बैठने के लिए कोई तैयार नहीं है।

ठीक तो है, भला त्योहार के दिन भी कोई भूखा रहेगा? इन बाप-बेटों की अक्ल को पता नहीं क्या हो गया है? नजबुनिया सोचती है और उसे औंघाई आने लगती है। वह खटिया पर लेट जाती है। बिबिया खिड़की पर जाकर खड़ी हो जाती है। यहां से छित्तनपुरा चउमुहानी का दृश्य बहुत साफ़ नजर आता है। वह देर तक वहीं खड़ी रहती है।

अचानक नजबुनिया की नींद टूट जाती है और उसे लगता है कि शाम हो गयी, वह बिबिया को बड़बड़ाने लगती है, "अरे अल्ला, चार बज गोवा जनाते। बिबिया! कहां है रे तैं? अभइन तक का करेली रे तैं? तोके तनिक्को पकावे-ओकावे की फिकिर है के नाहीं रे? देख एत्ती अबेर हो गयी, अभइन तक तै हांड़ी-चूली को नाहीं किये है। चल जल्दी से मसाला पीस। तब से हम गोस बइठा के पियाज सानी ला।"

बिबिया झट से हांड़ी-चूली करके मसाला पीसने बैठ गयी। नजबुनिया दूसरे कामों में लग गयी। पेट में बच्चा होने की वजह से वह ठीक से उठ-बैठ नहीं पाती, लेकिन बिना किये कुछ होता भी तो नहीं। आजकल वह कुछ चिड़चिड़ी भी हो

गयी है। अचानक वह फिर चिल्लाती है, "मसाला पिस गोवा रे ?"
"हाँ बस पिसाइ गोवा है।"
"पीस के खाली होइवे त देख होइ्है मिर्चा रक्खा है, ओके तइसा काट देवे— मसाला के साथ भूँजे खातिर।"
और रसोई घर में पहुँचकर वह फिर चीखने लगी, "अरे ऊ कहाँ है रे ?"
"कउन ची···?"
"अरे कफगीर, अउर दरवा, अउर अथरा, अउर पासली, ई सबकुछ देखइवे नाँही करेते रे !"
"ऊ सब वहरेवाली अलमरिया मे रक्खा है।"
और सारी चीजें एकत्र करके नजबुनिया खाना पकाने बैठ गयी। पहले उसने गेहूँ की गुरी का हलुवा बनाया, फिर आटा गूँथकर गोश्त भूनने के लिए बैठ गयी।
"देख हम गोस भूजे जाइला, पिसान सान दिया है। तै तावा चढ़ा के रोटी पकाव। देख मजे की रोटी पकइवे। खूब फुल्ली-फुल्ली रहै।" उसने बिबिया को आदेश दिया और गोश्त भूनते-भूनते बिबिया का रोटी पकाना भी वह देखती रही। इ पढ़ाई-लिखाई से यही तो खराबी है कि लड़कियाँ घर-गिरस्ती में एकदम कमजोर हो जाती हैं। नजबुनिया को लगा कि बिबिया फुल्ली-फुल्ली रोटियाँ नही पका रही है तो वह गोश्त छोड़कर रोटी पकाने बैठ गयी।
"ला दे, हट तै, अब हम रोटी पकावै। देख गोस पक जइये न ओकी देगची चूला पर से उतार के, धरतरी रख के, वही पर रख देवे। अउर देख, ऊ बर्तन जुट्ठा है, ओके जोइना लेके माँज देवे।"
तभी सीढ़ियो पर किसी की आहट हुई और नजबुनिया तेजी के साथ बेलना चलाने लगी। बिबिया दौड़कर झाँक आयी। मतीन हैं।
"हलुवा पक गोवा ?"
"हाँ पक गोवा।"
इसके अलावा मतीन ने और कोई बात नही की। वह बधना मे पानी लेकर वजू बनाने लगा।
बिबिया ने एक प्लेट मे हलुवा निकालकर उसे नीचेवाली कोठरी मे करघे के पास रख दिया और एक अगरबत्ती जलाकर वही जमीन में उसे गाड़ दिया।
मतीन दोनो हाथ उठाकर फ़ातेहा करने के लिए उकड़ूँ बैठ गया।
बिबिया दरवाजे पर खड़ी रही।
फ़ातेहा करके मतीन जब तुरन्त ही बाहर जाने लगा तो बिबिया से नही रहा गया। वह पूछ बैठी, "इकबाल भाई कहाँ हैंन ?"
"ऊ आज अनसन पर बइठा है।" मतीन ने जवाब दिया और झटके के साथ बाहर निकल गया। बिबिया हलुवा उठाकर धीरे-धीरे सीढ़ियाँ चढ़ने लगी।

आसमान साफ है, लेकिन हवा बिल्कुल नहीं चल रही है। कई रोज से बारिश न होने के कारण गर्मी फिर बढ़ गयी है।

बिबिया अपने घर चली गयी है। नजबुनिया छत पर लेटी हुई है। खाना ज्यों-का-त्यों रसोईघर में ढँका हुआ रखा है।

नजबुनिया के हाथ में बांस का एक पंखा है, जिसे वह धीरे-धीरे डुला रही है और आसमान के तारों को लगातार देखे जा रही है। नींद उसकी आंखों से कोसों दूर है। यह रात न जाने कब खत्म होगी ?

उसका फूला हुआ पेट उसे करवट भी नहीं लेने दे रहा है। भीतर रह-रहकर हुड़र-हुड़र हो रहा है।

"बच्चा डोल रहा है शायद !" नजबुनिया सोचती है और सिहर उठती है।

वह रात-भर कुछ-न-कुछ सोचती रहती है और सिहरती रहती है।

फिर अचानक उसे लगता है कि छतों पर एक ठण्डा उजाला फैलने लगा है। तारों की फौज शिथिल पड़ गयी है और चांद अपने रथ से नीचे गिर गया है। पड़ोस की छत पर, इण्टर में पढ़नेवाला अंसारी स्कूल का लड़का जोर-जोर से पढ़ने लगा है—

'सन्तो आयी ग्यान की आंधी रे
भ्रम की टाटी सबै उड़ानी माया रहै न बांधी रे...